

देशभक्ति काव्य परम्परा में मैथिलीशरण गुप्त का योगदान: समीक्षात्मक अध्ययन

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़
की पी-एच० डी० (हिन्दी)
उपाधि हेतु प्रस्तुत
शोध-प्रबन्ध सार

निर्देशक

डॉ० आरिफ़ नज़ीर

रीडर, हिन्दी विभाग

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय

अलीगढ़

THESIS

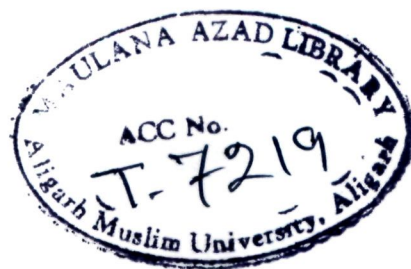
प्रस्तुतकर्ता

खुशीद आलम खान

शोध-छात्र (हिन्दी विभाग)

1105 64M 20

हिन्दी विभाग
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय
अलीगढ़



शोध-प्रबंध-सार

देशभक्ति काव्य परम्परा में मैथिलीशरण गुप्त का योगदान :

समीक्षात्मक अध्ययन

देशभक्ति की भावना किसी भी देश की आत्मा होती है। इसकी सुदृढ़ता तथा व्यापकता में ही देश की समृद्धि एवं प्रगति निहित है। जो देश आंतरिक रूप से जितना अधिक सघन और एक है वह उतना ही सशक्त और प्रभावशाली भी होता है। जिस देश के जन-समुदाय में जितनी ही अधिक सद्भावना, सहिष्णुता एवं बलिदान-भावना है, वह देश उतना ही प्राणवंत एवं निरापद है। इसके विपरीत देश-द्रोह, देश के प्रति आंतरिक दुर्भावना, तनाव तथा वैमनस्य की घातक ज्वाला में जलता हुआ देश मरणोन्मुख होता है। वह फूटे जलपात्र की तरह रिसता है, रीतता है और अंततः अपना अस्तित्व ही खो देता है, अर्थात् देशभक्ति को देश के प्राण तत्त्व की संज्ञा से अभिहित करना सर्वथा संगत ही है। वस्तुतः देशभक्ति की आधारशीला पर ही तो देश की समृद्धि, प्रगति एवं क्षमता की अट्टालिका खड़ी होती है।

आज स्वाधीन भारत के सम्मुख देशभक्ति एवं देश-प्रेम की समस्या अपनी समस्त विकरालता के साथ मुँह बाएँ खड़ी है। इसने मायाविनी दानवी की तरह अपने को एक साथ अनेक रूपों में प्रकट किया है।

सांप्रदायिकता, भाषावाद, क्षेत्रीयता, आर्थिक विषमता, पृथक्तावाद, जातीयता, नस्लवाद, सामाजिक शोषण तथा संकुचित राजनीति इसके कतिपय प्रमुख रूप हैं। ये वस्तुतः राष्ट्रघाती विघटकारी तत्त्व हैं। जिनकी उपस्थिति ने देश के भीतर में विष फैला दिया है। लगता है, देशभक्ति का अस्तित्व ही खतरे में पड़ गया है।

मैथिलीशरण गुप्त जी राजनीतिक दृष्टि से बहुत प्रबुद्ध तथा जागरूक लेखक थे। 19 वीं शती के अंत तथा 20 वीं शती के प्रथम दशक में जब ब्रिटिश साम्राज्य का आतंक सर्वत्र व्याप्त था, उस समय भी गुप्त जी ने निर्भीकतापूर्वक अपनी सजीव लेखनी से तत्कालीन भारत की राजनीतिक दासता का यथार्थ की भूमिका पर बड़ी मार्मिकता से चित्रण किया। 'भारत-भारती' (1912) गुप्त जी की सुप्रसिद्ध रचना है। प्रचार की

दृष्टि से यह मैथिलीशरण गुप्त जी की सर्वाधिक सशक्त रचना है। यह काव्य भारतीय जनता के उद्बोधन के लिए लिखा गया है। इसमें भारत के प्राचीन गौरव, वर्तमान विनम्रता, और भविष्य के उद्बोधन का समावेश काव्यात्मक ढंग से किया गया है। देशभक्ति की भावना को जागृत करने में इस काव्य का महत्वपूर्ण योगदान है। उत्तर-भारत में इसका इतना अधिक प्रचार हुआ कि स्कूलों में इसके पद्य गाये जाते थे, इसके पद्यों का गान करते हुए सत्याग्रही आन्दोलनों में भाग लेते थे।

देशभक्ति की दृष्टि से मैथिलीशरण गुप्त जी की प्रत्येक रचना में देशभक्ति, वीरता, राष्ट्रीयता और राष्ट्र के लिए समर्पण व बलिदान का भाव है।

मैथिलीशरण गुप्त जी अपने समय के सभी पत्र-पत्रिकाओं के साथ जुड़े रहे। गुप्त जी का काव्यारंभ भारत-मित्र, वैश्योपरक, राघवेन्द्र, पाटलिपुत्र, मोहनी, प्रताप, प्रभा, सैनिक और 'सरस्वती' जैसी पत्रिकाओं के माध्यम से हुआ, इन पत्र-पत्रिकाओं में काव्य, नाटक, जनजागरण, स्त्री-सुधार तथा समाज सुधार आदि से सम्बन्धित लेख प्रकाशित होते रहते थे। मैथिलीशरण गुप्त जी का यही प्रयास था कि देश के निवासी अपनी दीन-हीन दशा को पहचान कर अपनी उन्नति के लिए प्रयत्न करें।

देशभक्ति आन्दोलन में मैथिलीशरण गुप्त जी का महत्वपूर्ण योगदान है। किन्तु देशभक्ति काव्य-परम्परा में मैथिलीशरण गुप्त का योगदान समीक्षात्मक अध्ययन से सम्बन्धित कोई शोध-कार्य नहीं हुआ है। इस अभाव को पूरा करने के उद्देश्य से प्रस्तुत शोध-कार्य किया गया है। हिन्दी काव्य धारा में द्विवेदीयुगीन काव्य में मैथिलीशरण गुप्त का नाम राष्ट्रीय कवियों में अग्रसर है। इन्होंने देशभक्ति से संबंधित कविताओं की रचना कर देशवासियों से परतंत्रता से मुक्त होने का आह्वान किया था। राष्ट्रीय काव्य से हमारा तात्पर्य उस काव्य से है जिसमें किसी राष्ट्र की महिमा का गुणगान किया जाता है तथा उसके अतीत के गौरव को चित्रोपमता भाषा द्वारा जनता के सम्मुख प्रस्तुत किया जाता है। उस युग में मैथिलीशरण गुप्त जी ही केवल एक ऐसे कवि थे जिन्होंने कि देशभक्ति से सम्बन्धित अनेक कविताओं की रचना कर देश की महिमा का वर्णन किया था। भारत की दुर्दशा के सभी पक्ष, अंग्रेजों के अत्याचार, पुलिस के दुराचार अनाचार आदि वर्णन उनकी कविताओं में मिलता है। देशभक्ति की दृष्टि से मैथिलीशरण गुप्त

जी का काव्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। उनकी रचनाओं में देशभक्ति, देशानुराग, और समाज-सुधार की भावनाएँ समाहित हैं। उन्होंने अपनी रचनाओं द्वारा अज्ञानता के अंधकार में डूबे जन-जीवन को नवीन स्फूर्ति प्रदान की। अपने काव्य के माध्यम से गुप्त जी ने अंग्रेजी सरकार और उसकी शोषण नीति पर तीखे प्रहार किये हैं।

मैथिलीशरण गुप्त जी ने साहित्य के माध्यम से अपने विचारों को जनता में फैलाने का कार्य किया। जनता में नई स्फूर्ति, नया जागरण, देश-प्रेम एवं एकता की भावना जगाने में उनका काव्य बड़ा ही सहायक सिद्ध हुआ।

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त हिन्दी साहित्य के ऐसे कीर्तिस्तम्भ हैं, जिनके सहारे हिन्दी-जगत टिका हुआ है। उनके जैसे उदार, समाजसेवी, राष्ट्र को सर्वस्व समर्पण करने वाले कवि पर इस भारत को ही नहीं बल्कि विश्व को भी गर्व है। हिन्दी जगत में सदैव उनका नाम अमर रहेगा।

प्रस्तुत शोध-प्रबंध कुल मिलाकर सात अध्यायों में विभाजित किया गया है। शोध प्रबन्ध का प्रारम्भ प्रस्तावना से किया गया है, जिसमें विषय की उपयोगिता तथा अध्ययन की रूपरेखा का विवेचन किया गया है।

प्रथम अध्याय में देशभक्ति का स्वरूप तथा उसके प्रधान तत्त्वों का समीक्षात्मक अध्ययन किया गया है। संस्कृत आचार्यों, पाश्चात्य विद्वानों द्वारा हि

दिये गये देश की परिभाषा तथा देशभक्ति की परिभाषा तथा देशभक्ति के स्वरूप का समीक्षात्मक अध्ययन इसी अध्याय में किया गया है।

द्वितीय अध्याय में हिन्दी काव्य में देशभक्ति की परम्परा का समीक्षात्मक अध्ययन किया गया है। आदिकालीन, भक्तिकालीन, रीतिकालीन तथा आधुनिक कालीन हिन्दी-साहित्य में देशभक्ति का विवेचन इस अध्याय में किया गया है।

शोध प्रबंध के तीसरे अध्याय में मैथिलीशरण गुप्त जी के व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाश डाला गया है। व्यक्तित्व पक्ष में मैथिलीशरण गुप्त जी के जन्म एवं बाल्यकाय भाई-बहन, एवं बच्चे, शिक्षा, स्वभाव आदि के बारे में वर्णन किया गया है।

कृतित्व पक्ष में मैथिलीशरण गुप्त जी की देशभक्ति परक कविता, भक्तिभावना प्रधान कविता तथा प्रकृति विषयक कविता पर प्रकाश डाला गया है।

चतुर्थ अध्याय में युगीन काव्य परम्परा के संदर्भ में मैथिलीशरण गुप्त जी के काव्य की पृष्ठभूमि का समीक्षात्मक अध्ययन किया गया है। मैथिलीशरण गुप्त जी के युग की धार्मिक पृष्ठभूमि, सामाजिक पृष्ठभूमि, राजनैतिक तथा आर्थिक पृष्ठभूमि आदि के संदर्भ में विवेचन इसी अध्याय में किया गया है।

पंचम अध्याय का शीर्षक मैथिलीशरण गुप्त जी के काव्य की प्रवृत्तियों का समीक्षात्मक अध्ययन है। मैथिलीशरण गुप्त जी द्वारा लिखित काव्य, निबंध, पत्रकारिता, अनुवाद एवं उपयोगी साहित्य आदि का समीक्षात्मक अध्ययन किया गया है। इसी अध्याय में मैथिलीशरण गुप्त जी के सम्पूर्ण साहित्य का नवीन दृष्टिकोण से मूल्यांकन किया गया है।

षष्ठ अध्याय में मैथिलीशरण गुप्त जी के काव्य में देशभक्ति की भावना का समीक्षात्मक अध्ययन किया गया है। मैथिलीशरण गुप्त जी के काव्य में भारत के प्रति-प्रेम, अतीत में देशभक्ति, वर्तमान में देशभक्ति, सामाजिक परिस्थिति और देशभक्ति, धार्मिक परिस्थिति और देशभक्ति, राजनैतिक परिस्थिति और देशभक्ति का समीक्षात्मक अध्ययन इस अध्याय में किया गया है।

सप्तम अध्याय का शीर्षक उपसंहार है। प्रस्तुत शोध में प्राप्त सभी तथ्यों का संक्षिप्त निरूपण इसमें प्रस्तुत किया गया है। शोध में सहायक ग्रंथों की सूची परिशिष्ट में दी गई है।

Forwarded
A11/N-4-41
(Lopes) 31-1-07

खुशीद
31-1-07
(खुशीद आलम खान)
शोध छात्र हिन्दी विभाग
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय
अलीगढ़

देशभक्ति काव्य परम्परा में मैथिलीशरण गुप्त का योगदान: समीक्षात्मक अध्ययन

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़
की पी-एच० डी० (हिन्दी)
उपाधि हेतु प्रस्तुत
शोध-प्रबन्ध

निर्देशक

डॉ० आरिफ़ नज़ीर

रीडर, हिन्दी विभाग

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय

अलीगढ़

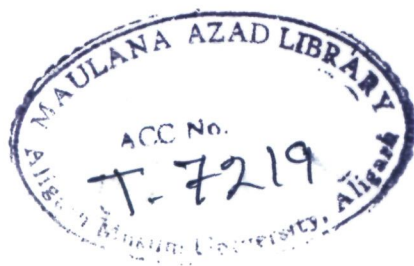
प्रस्तुतकर्ता

खुशीद आलम खान

शोध-छात्र (हिन्दी विभाग)

THESIS

हिन्दी विभाग
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय
अलीगढ़



Certificate

This is to certify that **Mr. Khursheed Alam Khan**, a candidate admitted to the course leading to the Ph.D. degree in Aligarh Muslim University, Aligarh under Enrolment No. CC-3338, Date of Admission 10.10.2003, Registration No. 210160 is eligible to submit his thesis entitled "देशभक्ति काव्य परम्परा में मैथिलीशरण गुप्त का योगदान: समीक्षात्मक अध्ययन" to the A.M.U. Aligarh.

The thesis and a brief abstract is forwarded to the Chairman, Dept. of Hindi, A.M.U. aligarh, for necessary action as per rules please.

Date : 31-1-07

Arif Nazir

ARIF NAZIR

(Supervisor)

Reader, Dept. of Hindi
Aligarh Muslim University
Aligarh, U.P.

Department of Hindi
Aligarh Muslim University
ALIGARH

प्रस्तावना

प्रस्तावना

देशभक्ति की भावना किसी भी देश की आत्मा होती है। इसकी सुदृढ़ता तथा व्यापकता में ही देश की समृद्धि एवं प्रगति निहित है। जो देश आंतरिक रूप से जितना अधिक सघन और एक है वह उतना ही सशक्त और प्रभावशाली भी होता है। जिस देश के जन-समुदाय में जितनी ही अधिक सद्भावना, सहिष्णुता एवं बलिदान भावना है, वह देश उतना ही प्राणवंत एवं निरापद है। इसके विपरीत देश-द्रोह देश के प्रति आंतरिक दुर्भावना, तनाव तथा वैमनस्य की घातक ज्वाला में जलता हुआ देश मरणोन्मुख होता है। वह फूटे जलपात्र की तरह रिसता है, रीतता है और अंततः अपना अस्तित्व ही खो देता है, अतएव देशभक्ति को देश के प्राण-तत्त्व की संज्ञा से अभिहित करना सर्वथा संगत ही है। वस्तुतः देशभक्ति की आधारशीला पर ही तो देश की समृद्धि, प्रगति एवं क्षमता की अट्टालिका खड़ी होती है।

आज स्वाधीन भारत के सम्मुख देशभक्ति एवं देश-प्रेम की समस्या अपनी समस्त विकरालता के साथ मुँह बाएँ खड़ी है। इसने मायाविनी दानवी की तरह अपने को एक साथ अनेक रूपों में प्रकट किया है। सांप्रदायिकता, भाषावाद, क्षेत्रीयता, आर्थिक विषमता पृथक्तावाद, जातीयता, नस्लवाद, सामाजिक शोषण तथा संकुचित राजनीति इसके कतिपय प्रमुख रूप हैं। ये वस्तुतः राष्ट्रघाती विघटनकारी तत्त्व हैं, जिनकी उपस्थिति ने देश के भीतर में विष फैला दिया है, लगता है, देशभक्ति का अस्तित्व ही खतरे में पड़ गया है।

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त हिन्दी साहित्य के ऐसे कीर्तिस्तम्भ हैं, जिनके सहारे हिन्दी जगत् टिका हुआ है। उनके जैसे उदार, समाजसेवी, राष्ट्र को सर्वस्व समर्पण करने वाले कवि पर इस भारत को ही नहीं बल्कि विश्व को भी गर्व है। हिन्दी जगत में सदैव उनका नाम अमर रहेगा।

मैथिलीशरण गुप्तजी राजनीतिक दृष्टि से बहुत प्रबुद्ध तथा जागरूक लेखक थे। 19वीं शती के अंत तथा 20 वीं शती के प्रथम दशक में जब ब्रिटिश साम्राज्य का आतंक सर्वत्र व्याप्त था, उस समय भी गुप्त जी ने निर्भीकतापूर्वक अपनी सजीव लेखनी से तत्कालीन भारत की राजनीतिक दासता का यथार्थ की भूमिका पर बड़ी मार्मिकता

से चित्रण किया। “भारती-भारती” (1912) गुप्त जी की सुप्रसिद्ध रचना है। प्रचार की दृष्टि से यह मैथिलीशरण गुप्त जी की सर्वाधिक सशक्त रचना है। यह काव्य भारतीय जनता के उद्बोधन के लिए लिखा गया है। इसमें भारत के प्राचीन गौरव, वर्तमान विनम्रता और भविष्य के उद्बोधन का समावेश काव्यात्मक ढंग से किया गया है। देशभक्ति भावना को जागृत करने में इस काव्य का महत्वपूर्ण योगदान है। उत्तर भारत में इसका इतना अधिक प्रचार हुआ कि स्कूलों में इसके पद्य गाये जाते थे, इसके पद्यों का गान करते हुए सत्याग्रही आन्दोलनों में भाग लेते थे।

‘भारत-भारती’ की परम्परा में मैथिलीशरण गुप्त जी के काव्यों में ‘वैतालिक’ और ‘स्वदेश-संगीत’ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। देशभक्ति की दृष्टि से मैथिलीशरण गुप्त जी की प्रत्येक रचना में देशभक्ति, वीरता, राष्ट्रीयता और राष्ट्र के लिए समर्पण व बलिदान का भाव है।

मैथिलीशरण गुप्त जी अपने समय के सभी पत्र-पत्रिकाओं के साथ लेखक तथा कवि के रूप में संबंधित रहे हैं। गुप्त जी का काव्यारंभ भारत मित्र, वैश्यांशुक, राघवेन्द्र, पाटलिपुत्र, मोहनी, प्रताप, प्रभा सैनिक और ‘सरस्वती’ जैसी पत्रिकाओं के माध्यम से हुआ। इन पत्र-पत्रिकाओं में काव्य, नाटक, जनजागरण स्त्री सुधार तथा समाज सुधार आदि से सम्बन्धित लेख प्रकाशित होते रहते थे। मैथिलीशरण गुप्त जी का यही प्रयास था कि देश के निवासी अपनी दीन हीन दशा को पहचान कर अपनी उन्नति के लिए प्रयत्न करें।

देशभक्ति आन्दोलन में मैथिलीशरण गुप्त जी का महत्वपूर्ण योगदान है। किन्तु देशभक्ति काव्य परम्परा में मैथिलीशरण गुप्त का योगदान : समीक्षात्मक अध्ययन से सम्बन्धित कोई शोध-कार्य नहीं हुआ है। इस अभाव को पूरा करने के उद्देश्य से प्रस्तुत शोध-कार्य किया गया है। हिन्दी काव्य धारा में द्विवेदी युगीन काव्य में मैथिलीशरण गुप्त का नाम राष्ट्रीय कवियों में अग्रसर है। इन्होंने देशभक्ति से संबंधित कविताओं की रचना कर देशवासियों से परतंत्रता से मुक्त होने का आह्वान किया था। राष्ट्रीय काव्य से हमारा तात्पर्य उस काव्य से है जिससे किसी राष्ट्र की महिमा का गुणगान किया जाता है तथा उसके अतीत के गौरव को चित्रोपमता भाषा द्वारा जनता के सम्मुख

प्रस्तुत किया जाता है। उस युग में मैथिलीशरण गुप्त जी ही केवल एक ऐसे कवि थे जिन्होंने कि देशभक्ति से सम्बन्धित अनेक कविताओं की रचना कर देश की महिमा का वर्णन किया था। भारत की दुर्दशा के सभी पक्ष, अंग्रेजों के अत्याचार, पुलिस के दुराचार, अनाचार आदि वर्णन उनकी कविताओं में किया गया है। देशभक्ति की दृष्टि से मैथिलीशरण गुप्त जी का काव्य अत्यन्त महत्वपूर्ण है। उनकी रचनाओं में देशभक्ति, देशानुराग और समाज-सुधार की भावनाएँ समाहित हैं। उन्होंने अपनी रचनाओं द्वारा अज्ञानता के अंधकार में डूबे जन-जीवन को नवीन स्फूर्ति प्रदान की। अपने काव्य के माध्यम से गुप्त जी ने अंग्रेजी सरकार और उसकी शोषण नीति पर तीखे प्रहार किये हैं।

मैथिलीशरण गुप्त जी ने साहित्य के माध्यम से अपने विचारों को जनता में फैलाने का कार्य किया। जनता में नई स्फूर्ति, नया जागरण, देश-प्रेम एवं एकता की भावना जगाने में उनका काव्य बड़ा ही सहायक सिद्ध हुआ।

प्रस्तुत शोध-प्रबंध कुल मिलाकर सात अध्यायों में विभाजित किया गया है। शोध-प्रबंध का प्रारम्भ प्रस्तावना से किया गया है, जिसमें विषय की उपयोगिता तथा अध्ययन की रूपरेखा का विवेचन किया गया है।

प्रथम अध्ययन में देशभक्ति का स्वरूप तथा उसके प्रधान तत्वों का समीक्षात्मक अध्ययन किया गया है। संस्कृत आचार्यों, पाश्चात्य विद्वानों द्वारा हि दिये गये देश की परिभाषा तथा देशभक्ति की परिभाषा तथा देशभक्ति के स्वरूप का समीक्षात्मक अध्ययन इसी अध्याय में किया गया है।

द्वितीय अध्याय में हिन्दी काव्य में देशभक्ति की परम्परा का समीक्षात्मक अध्ययन किया गया है। आदिकालीन, भक्तिकालीन, रीतिकालीन तथा आधुनिक कालीन हिन्दी-साहित्य में देशभक्ति का विवेचन इस अध्याय में किया गया है।

शोध-प्रबंध के तीसरे अध्याय में मैथिलीशरण गुप्त जी के व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाश डाला गया है। व्यक्तित्व पक्ष में मैथिलीशरण गुप्त जी के जन्म एवं बाल्यकाय, भाई-बहन एवं बच्चे, शिक्षा, स्वभाव आदि के बारे में वर्णन किया गया है।

कृतित्व पक्ष में मैथिलीशरण गुप्त जी की देशभक्ति परक कविता, भक्तिभावना प्रधान कविता तथा प्रकृति विषयक कविता पर प्रकाश डाला गया है।

चतुर्थ अध्याय में युगीन काव्य परम्परा के संदर्भ में मैथिलीशरण गुप्त जी के काव्य की पृष्ठभूमि का समीक्षात्मक अध्ययन किया गया है। मैथिलीशरण गुप्त जी के युग की धार्मिक पृष्ठभूमि, सामाजिक पृष्ठभूमि, राजनैतिक पृष्ठभूमि आदि के संदर्भ में विवेचन इसी अध्याय में किया गया है।

पंचम अध्याय का शीर्षक मैथिलीशरण गुप्त जी के काव्य की प्रवृत्तियों का समीक्षात्मक अध्ययन है। मैथिलीशरण गुप्त जी द्वारा लिखित काव्य, निबंध, पत्रकारिता, अनुवाद एवं उपयोगी साहित्य आदि का समीक्षात्मक अध्ययन किया गया है। इसी अध्याय में मैथिलीशरण गुप्त जी के सम्पूर्ण साहित्य का नवीन दृष्टिकोण से मूल्यांकन किया गया है।

षष्ठ अध्याय में मैथिलीशरण गुप्त जी के काव्य में देशभक्ति की भावना का समीक्षात्मक अध्ययन किया गया है। मैथिलीशरण गुप्त जी के काव्य में भारत के प्रति-प्रेम, अतीत में देशभक्ति, वर्तमान में देशभक्ति, सामाजिक परिस्थिति और देशभक्ति, धार्मिक परिस्थिति और देशभक्ति, राजनैतिक परिस्थिति और देशभक्ति का समीक्षात्मक अध्ययन इस अध्याय में किया गया है।

सप्तम अध्याय का शीर्षक उपसंहार है। प्रस्तुत शोध में प्राप्त सभी तथ्यों का संक्षिप्त निरूपण इसमें प्रस्तुत किया गया है। शोध में सहायक ग्रंथों की सूची परिशिष्ट में दी गई है।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध मैंने स्वयं लिखा है। यह मेरा मौलिक कार्य है। मेरी जानकारी के मुताबिक अभी तक किसी विश्वविद्यालय में इस विषय पर शोध कार्य नहीं हुआ है। जहाँ कहीं अन्य विद्वानों के ग्रंथों एवं कार्यों से सहायता ली गई है, उसका उल्लेख पाद टिप्पणी में कर दिया गया है। शोध में सहायक ग्रंथों की सूची परिशिष्ट में दी गई है। अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ द्वारा शोध-छात्रों हेतु निश्चित किये गये सभी नियमों एवं कर्तव्यों का मैंने पालन किया है तथा अध्यक्ष हिन्दी विभाग,

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के कार्यालय में रखी गयी उपस्थिति पंजिका (अटेन्डेस रजिस्टर) में मेरी दो वर्ष की उपस्थिति दर्ज है, मैं इस दौरान अलीगढ़ में उपस्थित था, मैंने स्वयं उपस्थिति पंजिका में हस्ताक्षर किये हैं। मेरा कार्य और कनडक्ट भी सन्तोषजनक रहा है। मेरे पी-एचडी में दाखिले की तारीख 10.10.2003, रजिस्ट्रेशन नं० 210160 और पंजीकरण सं० CC - 3338 है।

‘देशभक्ति काव्य-परम्परा में मैथिलीशरण गुप्त का योगदान’ समीक्षात्मक अध्ययन की शोध यात्रा में मुझे आशा निराशा के द्वन्द्वात्मक क्षणों का भी सामना करना पड़ा। परन्तु ईश्वर की कृपा से परम आदरणीय गुरुदेव एवं ज्ञानी डॉ० आरिफ़ नज़ीर, रीडर हिन्दी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के दिशा निर्देशन का सौभाग्य प्राप्त होने के कारण निराशा का तिमिर गुरुज्ञान के दिव्य प्रकाश से परास्त हो गया। अध्ययन एवं अन्वेषण के क्रम में मुझे डॉ० आरिफ़ नज़ीर से अदम्य प्रेरणा, स्नेह और प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। उन्होंने विभागीय दायित्व का निर्वाह करते हुए अपनी अत्यन्त व्यस्त दिनचर्या में से बहुमूल्य समय देकर मेरी कठिनाइयों को दूर किया।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध की प्रेरणा मुझे अपने निर्देशक डॉ० आरिफ़ नज़ीर, रीडर, हिन्दी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय से मिली और उन्हीं के दिशा निर्देशन एवं अथक परिश्रम के परिणाम स्वरूप मैं इस कार्य को सम्पन्न कर सका। उनकी दृष्टि की व्यापकता ने मेरे लेखन कार्य को गतिशील बनाया। उनका प्रेम मुझे कठिनाइयों से जूझने का नित्यनवीन आत्मविश्वास देता रहा। उनका अन्तेवासी शिष्य होना मेरे लिए गौरव की बात है। मेरा यह परम सौभाग्य है कि मुझे उन जैसे मनीषी के निकट स्पर्श में रहकर शोध कार्य करने का अवसर प्राप्त हुआ। डॉ० आरिफ़ नज़ीर का आभार शब्दों में व्यक्त कर पाना मेरे सामर्थ्य से परे है, मैं उनका हृदय से आभारी हूँ, और मैं आजीवन आज्ञाकारी शिष्य की भाँति उनके चरणों में रहना चाहता हूँ।

अध्ययन पिपासा का मंत्र देने वाले अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के हिन्दी विभागाध्यक्ष प्रो० प्रदीप सक्सेना का भी मैं हृदय से आभारी हूँ, जो इस शोध कार्य को पूर्ण करने के लिए मुझे निरन्तर प्रोत्साहित करते रहे हैं।

प्रो० कृष्ण मुरारी मिश्र, अधिष्ठाता कला संकाय अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़, डॉ० अब्दुल अलीम, डॉ० मेराज अहमद, डॉ० निरंजन कुमार, डॉ० तस्नीम सुहेल तथा अन्य गुरुजनों के प्रति मैं अपना हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ। प्रस्तुत शोध कार्य को सम्पन्न करने में मेरे गुरुजनों का स्नेह और आशीर्वाद मेरे साथ रहा जो मेरे भीतर निरन्तर ऊर्जा का संचार करता रहा।

मैंने डॉ० नगेन्द्र, आचार्य रामचन्द्र शुल्क, डॉ० श्याम सुन्दर दास, डॉ० शिवकुमार शर्मा, ठाकुर राज बहादुर, रामचन्द्र वर्मा, पूनमचन्द्र तिवारी, मन्मथनाथ गुप्त, डॉ० आरिफ नजीर, डॉ० आनन्द प्रकाश दीक्षित, डॉ० कमलाकान्त पाठक, दान बहादुर पाठक 'वर' जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी, डॉ० उदयभानु सिंह, डॉ० उमाकान्त, अयोध्या सिंह, ए०आर० देसाई, इत्यादि विद्वानों की कृतियों से विशेष सहायता ली है। मैं उन समस्त वरेण्य रचनाकारों एवं प्रबुद्ध समीक्षकों के प्रति श्रद्धावनत हूँ जिनकी पुस्तकों से मैंने इस शोध कार्य में सहायता ली है। मेरे शोध कार्य में मौलाना आज़ाद लाइब्रेरी की महत्वपूर्ण भूमिका है।

मेरे पिता श्री अब्दुल रशीद खान की स्नेहमयी छवि सदैव मेरे साथ रही। मेरे पिता का गौरवमयी व्यक्तित्व मेरा आदर्श बनकर सदैव मुझे कार्यरत रहने हेतु प्रेरित करता रहा है।

मैं श्रद्धावान् हूँ। अपनी माता श्रीमती नौशाबा खानम जी के प्रति जिनका वात्सल्य व सहयोग मुझे निरन्तर मिलता रहा है। बचपन से ही मेरी माता जी (अम्मी) ने शिक्षा के प्रति मेरे मन में जो प्रेम भरा और हर प्रकार का सहयोग देकर जो मेरा उत्साहवर्द्धन किया उसका ऋण चुकाने की शक्ति मुझमें नहीं है।

शोध कार्य को पूरा कराने में मेरे मामा जावेद अख्तर और बड़े भाई तनवीर अहमद का भी महत्वपूर्ण योगदान है। जिन्होंने मेरी हर तरह से सहायता की है। जिसकी वजह से ही यह शोध कार्य सम्पन्न हुआ है। मैं उनका अभार प्रकट करते हुए अत्यधिक गौरव अनुभव करता हूँ।

मैं अपने परिवार के सभी सदस्यों के प्रति भी आभारी हूँ जिनका स्नेह मुझे अपने शोध कार्य को पूर्ण करने के लिए उत्साहित करता रहा है।

मैं अपने विभाग के सभी सहपाठियों के प्रति आभारी हूँ जिनमें से डॉ० जहाँआरा जैदी, मो० अजहर, साईमा हसन खान, मो० खालिद, मुसैब अहमद और ज़रार अहमद के प्रति मैं विशेष रूप से कृतज्ञ हूँ। जिन्होंने यथासामर्थ्य पूर्ण निष्ठा के साथ समर्पित भाव से मुझे पग पग पर सहयोग दिया। ईश्वर से उनके सुखमय, उज्ज्वल एवं स्वर्णिम भविष्य की कामना करता हूँ।

मेरी ज्ञान सीमा इतनी व्यापक नहीं है कि मैं कोई बड़ा दावा कर सकूँ विश्वास इतना ही है कि यह अनुसंधानात्मक प्रयास विद्वज्जन से प्रोत्साहनपरक संस्तुति प्राप्त करेगा।

फिर अन्त में ईश्वर (अल्लाह) को नमन करता हूँ जिसने मुझे शोध कार्य करने में शक्ति प्रदान की।

खुशीद
विनयावनत 31-1-07

दिनांक :

खुशीद आलम खान
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय
अलीगढ़

विषयानुक्रमिका

पृष्ठ सं०

प्रस्तावना

i-vii

विषय का स्वरूप एवं सीमा, विषय का महत्त्व एवं उपयोगिता
विषय पर अद्यावधि हुआ कार्य और उसका परीक्षण, शोध प्रविधि,
धन्यवाद ज्ञापन आदि ।

1 - 21

अध्याय एक -

देशभक्ति का स्वरूप तथा उसके प्रधान तत्त्व : समीक्षात्मक अध्ययन।
देश की परिभाषा, देश और राज्य, देशभक्ति के प्रमुख
तत्त्व, भौगोलिक एकता, ऐतिहासिक एकता, सांस्कृतिक एकता,
धार्मिक एकता एवं सद्भावना, भारत देश आदि ।

22 - 50

अध्याय दो -

हिन्दी काव्य में देशभक्ति की परम्परा : समीक्षात्मक अध्ययन।
देशभक्ति आन्दोलन, आदिकालीन हिन्दी साहित्य में देशभक्ति,
भक्तिकालीन हिन्दी साहित्य में देशभक्ति, रीतिकालीन हिन्दी साहित्य
में देशभक्ति, आधुनिक कालीन हिन्दी साहित्य में देशभक्ति, द्विवेदी
युगीन हिन्दी साहित्य में देशभक्ति, छायावाद एवं छायावादोत्तर
कालीन हिन्दी साहित्य में देशभक्ति।

51 - 104

अध्याय तीन -

मैथिलीशरण गुप्त का जीवन परिचय (व्यक्तित्व एवं कृतित्व)
मैथिलीशरण गुप्त- जन्म एवं बाल्यकाल, भाई-बहन एवं बच्चे,
शिक्षा, गुप्त जी की मित्रता, गुप्त जी के पत्र, गुप्त जी की
पत्रकारिता बीमारी तथा निधन।
कृतित्व - देशभक्ति परक कविता, भक्तिभावना प्रधान कविता,
प्रकृति विषयक कविता

105 - 144

अध्याय चार -

युगीन काव्य परम्परा के सन्दर्भ में मैथिलीशरण गुप्त जी के
काव्य की पृष्ठभूमि: समीक्षात्मक अध्ययन।
राजनैतिक पृष्ठभूमि, आर्थिक पृष्ठभूमि, सामाजिक तथा धार्मिक
पृष्ठभूमि - राजाराम मोहन राय, दयानन्द सरस्वती, स्वामी विवेकानन्द,
श्रीमती ऐनी बेसेन्ट, साहित्यिक पृष्ठभूमि।

अध्याय पाँच -

145 - 201

मैथिलीशरण गुप्त जी के काव्य की प्रवृत्तियाँ : समीक्षात्मक अध्ययन-काव्य, निबंध, पत्रकारिता, अनुवाद एवं अन्य साहित्य, मैथिलीशरण गुप्त जी के सम्पूर्ण साहित्य का नवीन दृष्टिकोण से मूल्यांकन।

अध्याय छः -

202 - 233

मैथिलीशरण गुप्त जी के काव्य में देशभक्ति की भावना : समीक्षात्मक अध्ययन- भारत के प्रति प्रेम, अतीत में देशभक्ति, वर्तमान में देशभक्ति, सामाजिक परिस्थिति और देशभक्ति, धार्मिक परिस्थिति और देशभक्ति, राजनैतिक परिस्थिति और देशभक्ति।

अध्याय सात-

234 - 241

उपसंहार- प्रस्तुत शोध में प्राप्त तथ्यों का संक्षिप्त निरूपण ।

परिशिष्ट -

242 - 250

सहायक ग्रन्थ की सूची, पत्र-पत्रिकाएँ एवं कोश आदि ।

प्रथम अध्याय

देशभक्ति का स्वरूप तथा उसके प्रधान तत्त्व समीक्षात्मक अध्ययन

- ▶ देश
- ▶ देश की परिभाषा
- ▶ देश और राज्य
- ▶ देशभक्ति का स्वरूप एवं परिभाषा
- ▶ देशभक्ति के प्रमुख तत्त्व
- ▶ भौगोलिक एकता,
- ▶ ऐतिहासिक एकता
- ▶ सांस्कृतिक एकता
- ▶ धार्मिक एकता एवं सद्भावना,
- ▶ भारत देश आदि

“देशभक्ति का स्वरूप तथा उसके प्रधान तत्त्व समीक्षात्मक अध्ययन”

‘देश’ शब्द अंग्रेजी के ‘फोक’ शब्द का समानार्थक है। इसी तरह भाषा अथवा शब्द के अर्थ में भी ‘देशी’ शब्द का तात्पर्य उस प्राकृत वाग्व्यापार तथा उसकी निजी शब्दावली से है, जिसका प्रयोग जनसामान्य में पाया जाता है।¹

देश शब्द का संधि करने पर यह अर्थ प्राप्त होता है। (दिश्+अच्) - कोई विशिष्ट भू-भाग।²

देश शब्द का अनेक अर्थों में प्रयोग किया जाता है। इस शब्द के कुछ प्रमुख अर्थ - राष्ट्र, राज्य, मण्डल प्रान्त, अनेक लोग, जन समुदाय आदि हैं।

मानक हिन्दी कोश में देश की व्याख्या करते हुए देश के लिए एक विशिष्ट भू-भाग तथा उसके प्रति श्रद्धा रखने वाले जन-समुदाय पर विशेष बल दिया गया है।

देश -

देश को उर्दू में मुल्क कहा जाता है। लुगाते किशवरी में मुल्क का अर्थ जमीन और हमवार दिया है।³

देश शब्द की व्याख्या मानक हिन्दी कोश में इस प्रकार दी है-

पु० (सं०-दिश् (बताना) + अच्)

1. सब ओर फैला हुआ वह विस्तृत अवकाश जिसके अन्तर्गत दिखाई देने वाली सभी चीजे रहती हैं।
2. उक्त का कोई परिमित या सीमित अंश या भाग। जैसे- तारों का देश।
3. जगह, स्थान।
4. किसी अंब या पदार्थ के आस-पास का स्थान। जैसे- उदर देश, कटि देश, ललाट देश।
5. कोई विशिष्ट भू-भाग या खण्ड जिसका प्राकृतिक या कृत्रिम आधारों पर विभाजन हुआ हो तथा जहाँ कुछ विशिष्ट जातियाँ, कुछ विशिष्ट भाषा-भाषी तथा कुछ विशिष्ट परम्पराओं और संस्कृतियों वाले लोग रहते हैं।⁴

हिन्दी शब्द-सागर में देश की व्याख्या इस प्रकार की गयी है-

देश - संख्या (पु० (सं०) 1- विस्तार, जिसके भीतर सब कुछ है। दिक् - स्थान।

विशेष-

1. न्याय का वैशेषिक के अनुसार जिसके आगे पीछे, ऊपर-नीचे, उत्तर-दक्षिण आदि का प्रत्यक्ष होता है। वह देश या दिग्द्रव्य है। काल के समान संख्या, परिणाम, पृथक्त्व संयोग और विभाग देश के भी गुण है। देश के विभु और एक होने पर भी उपाधि भेद से उत्तर-दक्षिण, आगे-पीछे आदि भेद मान लिए गए हैं। देश सम्बन्धी 'पूर्व' और 'पर' का विपर्यय हो सकता है, पर काल सम्बन्धी पूर्वापर का नहीं। पश्चिमी दार्शनिकों में कांट आदि ने देश और काल को मन से बाहर की कोई वस्तु नहीं माना है, अन्तःकरण का आरोप मात्र कहा है। जो वस्तु सम्बन्ध ग्रहण के लिए वह अपनी ओर से करता है।
2. पृथ्वी का वह भू-भाग जिसका कोई अलग नाम हो, जिसके अन्तर्गत कई प्रान्त, नगर, ग्राम आदि हों तथा जिसमें अधिकांश एक जाति के और एक भाषा बोलने वाले लोग रहते हों।
3. वह भू-भाग जो एक ही राजा या शासक के अधीन अथवा एक शासनपद्धति के अन्तर्गत हो। राष्ट्र कहलाता है।⁵

हिन्दी भाषा कोश में देश शब्द की व्याख्या इस प्रकार की गई है-

देश- संज्ञा पु० (सं०) महाद्वीप का वह भाग जहाँ एक ही जाति के लोग रहते हो, एक शासक एवं शासन विद्यान वाला कई प्रान्तों और नगरों वाला भू-भाग।⁶

इस प्रकार कहा जा सकता है कि देश उस जनसमुदाय का नाम है, जिसका अपना एक भू-भाग हो अपनी परम्परा संस्कृति हो, अपनी वेश भूषा विदेशी आक्रामकों से सामूहिक रूप से स्वरक्षा की अनुभूति हो, रीति-रिवाज हो, अपनी मातृभूमि के प्रति अगाध प्रेम-भावना तथा श्रद्धा की भावना हो। संक्षेप में देश का तात्पर्य मुल्क, वतन, मातृभूमि तथा देश में बसने वाला जनसमुदाय आदि है।

देशभक्ति-

अपने राष्ट्र-राज्य के प्रति अनन्य निष्ठा और प्रति बद्धता की भावना। इसके अन्तर्गत व्यक्ति अपने देश की धरती, प्राकृतिक वातावरण और संस्कृति से प्रेम करता

है और उसकी परम्परा और इतिहास में महानता की झलक देखते हुये उस पर गर्व करता है। वह अपने राष्ट्र के हित में अपने सुख और स्वार्थ का त्याग करने को सदैव तत्पर रहता है।⁷

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी जी देश भक्ति के अर्थ को इस प्रकार से व्यक्त करते हैं-

- * अगर देशभक्ति का मतलब व्यापक मानव मात्र का हित चिन्तन नहीं है, तो उसका कोई अर्थ ही नहीं है।
- * जिस तरह देशभक्ति हमें यह सिखाती है कि व्यक्ति परिवार के लिए, परिवार गांव के लिए, गांव जिले के लिए जिला प्रान्त के लिए और प्रान्त देश के लिए मरे, उसी प्रकार किसी भी देश को आज़ाद इसलिए होना चाहिए कि वह जरूरत पड़ने पर संसार के हित के लिए मर सके।
- * उस देशभक्ति का त्याग करना चाहिए, जो दूसरे राष्ट्रों को आफत में डालकर बड़प्पन पाना चाहती है।
- * देशभक्ति मनुष्य का पहला गुण है। इसके बिना वह संसार में सिर उठकार नहीं चल सकता है।
- * मनुष्य में सच्ची देशभक्ति तब उपजती है, जब वह अपने देश से दूर जा पहुँचता है।
- * संसार के देशभक्तों ने ही आज़ादी के मार्ग को प्रशस्त किया है।
- * देशभक्तों की चरण-रज माथे पर लगाने को मिले तो अहोभाग्य। संसार के गुलाम देशों को आज़ाद करने में उन्होंने नींव के पत्थर का काम किया है।⁸

इसमें सन्देह नहीं कि देशभक्ति की वर्तमान भावना हमने पाश्चात्य देशों से सीखी है। हमारी पुरानी देशभक्ति स्थानीय और अपेक्षाकृत संकीर्ण ढंग की हुआ करती थी।

देश और राज्य-

राज्य शब्द का अंग्रेजी रूपान्तर स्टेट (State) है। स्टेट शब्द लैटिन भाषा के (Status) शब्द से विकसित हुआ है स्टेटस का शब्दिक अर्थ किसी व्यक्ति का सामाजिक स्तर होता है। स्टेटस के अन्तर्गत सम्पूर्ण समाज के स्तर पर विचार किया जाने लगा।

देश और राज्य एक दूसरे के अत्यन्त निकट हैं। दोनों के लिए निश्चित भू-भाग होना अनिवार्य है। देश और राज्य में विभिन्न समानताएँ होते हुए कुछ विषमताएँ भी हैं।

देश आध्यात्मिक है। जबकि राज्य भौतिक है राज्यों में केवल चार तत्व अनिवार्य हैं- भूमि, आबादी, सरकार तथा राजसत्ता। देश में अनेक सांस्कृतिक तत्व होते हैं तथा उन्हीं के आधार पर देश का निर्माण होता है। देश की भाँति राज्य का सम्बन्ध आवश्यक रूप से मनुष्य के अध्यात्म अथवा उसकी आमूर्त भावनाओं से नहीं होता है। राज्य पूर्णतः राजनैतिक व्यवस्था है।

राजनीति शास्त्र के प्रसिद्ध विद्वान गार्नर ने “पॉलिटिकल साइंस एण्ड गवर्नमेंट” नामक पुस्तक में कहा है “यदि राज्य को हम नस्ल सम्बन्धी जनसमूह के रूप में मान लें तो राज्य की सीमाएँ उनकी सीमाओं से बाहर फैल सकती हैं। तथा इसी प्रकार देश की सीमाएँ राज्य की सीमाओं से अधिक विस्तृत हो सकती हैं। वस्तुतः वे कहत कम एक होती हैं। ग्रेट ब्रिटेन के अंग्रेजी राज्य में स्काट वेल्स, तथा पहले के आइरिश लोग सम्मिलित हैं जबकि इसके विरुद्ध फ्रांसीसी देश नस्ल की दृष्टि से फ्रांस के राज्य से बाहर तक फैला हुआ है और बेल्जियम, इटली तथा स्विजरलैंड इसका विस्तार हैं। आजकल की प्रवृत्ति देश तथा राज्य को एक करने की अर्थात् राज्यों का संगठन देशों की सीमाओं के अनुसार मानने की है। किन्तु ऐसा परिवर्तन सम्भव नहीं हो सका है।”

प्रसिद्ध विद्वान जिमेरिन ने देशभक्ति तथा राज्य के अन्तर को बहुत सुन्दर ढंग से बताया है। जिमेरिन का कथन देश तथा राज्य के अन्तर को भी सुन्दर ढंग से उद्घाटित करता है। उनका कथन है देशभक्ति धर्म की भाँति आत्मगत होती है और राज्यत्व वस्तुगत होता है, देशभक्ति मनोवैज्ञानिक होती है, और राज्यत्व राजनैतिक होती है। देशभक्ति मनः स्थिति होती है और राज्यत्व कानूनी स्थिति होती है, देशभक्ति एक आध्यात्मिक सम्पत्ति होती है, राज्यत्व होता है एक अनिवार्य उत्तरदायित्व, देशभक्ति एक भावना, विचार तथा जीवन का मार्ग होती है और राज्यत्व समस्त सभ्यतापूर्ण जीवन दर्शन की एक अविच्छेद दशा।¹¹⁰

उपरोक्त विवचेन से स्पष्ट है कि देश की शक्ति नैतिक एवं आध्यात्मिक है, राज्य की शक्ति पुलिस शक्ति होती है। राज्य में सरकारी अनुशासन की प्रधानता रहती है।

देशभक्ति का स्वरूप एवं परिभाषा-

विश्व में प्रत्येक देश का पृथक् एवं स्वतंत्र स्थान होता है। देश के सरूप और अरूप दो प्रकार के तत्त्व हैं। सरूप में देश की भूमि, नदी, समुद्र, सरोवर, वन, पर्वत उपवन आदि स्थूल वस्तुएँ आती हैं तथा अरूप के अन्तर्गत देश के चिंतन धारा का समावेश होता है।

देशभक्ति के स्वरूप का विवेचन निम्न प्रकार से किया जाता रहा है। देशभक्ति का अनिवार्य तत्त्व देश प्रेम है। देशप्रेम, देश की स्वतंत्रता, देश की एकता और अखण्डता को मजबूत बनाने का भाव भी देशभक्ति के अन्तर्गत आता है।

“हिन्दी शब्द सागर”- भाग-7 में देशभक्ति की व्याख्या इस प्रकार दी गई है-
देशभक्ति - स्त्री० - देश के प्रति अनुराग, देशप्रेम।¹¹

“मानक हिन्दी कोष” खण्ड तीसरे में देश भक्ति का अर्थ इस प्रकार दिया है।
देशभक्ति - देशभक्ति होने की अवस्था गुण या भाव¹²

अमीर खुसरो ने देशभक्ति को इस प्रकार कहा है-

“रसूल में फरमाया है कि हुस्बुल वतन, मिनल ईमान” अर्थात् देशप्रेम ईमान में दाखिल है।

प्रतापनारायण मिश्र देशभक्ति को सुकर्म मानते थे।¹³

देशभक्ति तथा देश से बढ़कर उनके लिए और कोई धर्म नहीं था।¹⁴

डा० नगेन्द्र ने देशभक्ति को रागात्मक स्वरूप कहा है-

“देश के साथ रागात्मक सम्बन्ध दो रूपों में सम्भव है। इनमें सहज रूप तो वह है जिसमें देश का अर्थ होता है देशवासी। इसके अनुसार देशप्रेम का अर्थ है देशवासियों के प्रति प्रेम, देश की पराधीनता और शोषण का अर्थ है देशवासियों की पराधीनता और शोषण, और देश की मुक्ति का अर्थ है राजनीतिक और आर्थिक शोषण से देशवासियों की मुक्ति। भारत की दीन-दुखी, अशिक्षित और असहाय जनता के प्रति करुणा जगाने वाली अनेक कविताएँ इसी वर्ग में आती हैं।

रागात्मक सम्बन्ध का दूसरा रूप वह है, जिसमें देश जड़ प्रतीक सजीव एवं मूर्तिमन्त हो जाता है। सजीव मूर्त रूप धारण किए बिना केवल भौगोलिक मानचित्र प्रेम अथवा भक्ति का विषय कैसे बन सकता है? स्वभावतः, एक ओर भारत की दिव्य मातृरूप में कल्पना की गयी, दूसरी ओर उसके हिमालय, गंगा, प्रयाग, दिल्ली, चित्तौड़, हल्दीघाटी आदि से सम्बद्ध परम्परागत मानव-संस्कारों को उद्बुद्ध किया गया। भारत की दिव्य मातृभूमि के शत-शत भव्य चित्र हमारी राष्ट्रीय सांस्कृतिक कविता की अमूल्य निधि है। मैथिलीशरण गुप्त, सियारामशरण गुप्त, नवीन, निराला, पन्त, दिनकर आदि सभी प्रमुख कवियों ने मातृभूमि के दिव्य चित्रों का अंकन कर अपनी कल्पना को पवित्र किया है।¹⁵

मैथिलीशरण गुप्त जी ने 'भारत-भारती' में इन चित्रों को और भी वृहत्तर भौगोलिक विराटता प्रदान की है-

भू-लोक का गौरव, प्रकृति का पुण्य लीला-स्थल कहाँ ?
 फ़ैला मनोहर गिरि हिमालय और गंगाजल जहाँ।
 सम्पूर्ण देशों से अधिक किस देश का उत्कर्ष है ?
 उसका कि जा ऋषिभूमि है, वह कौन ? भारतवर्ष है।¹⁶

देशभक्ति से तार्क्य देश की एकता तथा देश के प्रति प्रेम भाव है। देशभक्ति तथा देश के प्रति प्रेमभाव के बिना कोई भी देश समुन्नत नहीं हो सकता। देशभक्ति के लिए देश की संस्कृति से प्रेम अनिवार्य है। देशभक्ति अपने देश का उत्कृष्ट प्रेम है। देश के तत्त्वों में निश्चित भू-भाग एक प्रमुख तत्त्व है। देश भक्ति भू-भाग के प्रति प्रेम, अनुराग तथा श्रद्धा का भाव उस देश की जनता को रखना चाहिए। देश की समृद्धि के लिए देश में देश की सद्भावना एवं भावात्मक एकता बनाए रखना अनिवार्य है।

देशभक्ति के प्रमुख तत्त्व-

देश से अनुराग तथा देश से प्रेम की भावना देशभक्ति है। तथा स्वदेश प्रेम को सुदृढ़ बनाने वाले तत्त्वों के द्वारा मानव - सहनिवास से किसी जनसमूह में जो एकत्वानुभूति उत्पन्न हो जाती है, वो देशभक्ति है। देशभक्ति को मजबूत बनाने के

लिए भौगोलिक इकाई के साथ उस भू-भाग में निवास करने वाले अधिकांश लोगों की संस्कृति, भाषा, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, सामाजिक आचार व्यवहार, प्रशासनिक प्रणाली आदि अंशों में समानता एवं एकरूपता की आवश्यकता होती है। ये सभी देशभक्ति के आवश्यक तत्त्व हैं, अनिवार्य नहीं।

भौगोलिक एकता-

भौगोलिक एकता मातृभूमि का ऐसा तत्त्व है जो देशभक्ति को जन्म देने वाले तत्वों में सदैव महत्वपूर्ण रहा है। भूगोल की परिभाषा विभिन्न भूगोलविदों ने दी है- कार्लरिटर के अनुसार- “भूगोल वह विज्ञान है जिसमें पृथ्वी का मानव के घर के रूप में अध्ययन किया जाता है।”

स्टैम्थ के अनुसार - “भूगोल संसार और उसके निवासियों का वर्णन है।”

हार्ट शोर्न के अनुसार - “भूगोल पृथ्वी तल की विभिन्न घटनाओं के परिवर्ती तथा जटिल अंतर्सम्बन्धों को इस दृष्टि से देखने का प्रयास करता है जिससे पृथ्वी तल का यथार्थ क्रमबद्ध तथा मुक्तिसंगत वर्णन और परिवर्ती रूप का विश्लेषण किया जा सके।”

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि भूगोल पृथ्वी पर पाये जाने वाले भौतिक लक्षणों, इनके स्थानिक वितरण इनके आपसी सम्बन्धों तथा मानव के साथ इनकी पारस्परिक क्रियाओं का अध्ययन है।

भूगोल अपने निम्न योगदान कि लिए महत्वपूर्ण है -

(1) संसाधन नियोजन (Resource Planing)

भूगोल के अन्तर्गत संसाधनों का अध्ययन किया जाता है जिसके परिणामस्वरूप हम इन संसाधनों के उचित प्रयोग को नियोजित कर सकते हैं।

(2) मानव जिज्ञासा की तुष्टि (Satisfaction of Human Curiosity)

मानव की जिज्ञासा की तुष्टि करने में भूगोल विशेष रूप से उपयुक्त है। भूतल पर विभिन्न प्रकार की भौतिक तथा विभिन्न क्षेत्रों की विशिष्टता के बारे में भूगोल विस्तृत अध्ययन करता है। यही कारण है कि भूगोल का महत्व दिन-प्रतिदिन बढ़ रहा है।

(3) अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में सहायक (Helpful in International relations)

विश्व के देश एक दूसरे को समझे, इस दिशा में भूगोल की भूमिका उल्लेखनीय है। भूगोल के अध्ययन से राष्ट्रों की एक-दूसरे पर निर्भरता स्पष्ट रूप से उभरकर सामने आ जाती है जिससे अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को मधुर बनाने में सहायता मिलती है।

(4) देश की सुरक्षा में सहायक (Helpful in National Security)

युद्ध के समय भूगोल का ज्ञान देश के नेताओं तथा सैनिक कमांडरों को सुरक्षा पग उठाने में अति सहायक सिद्ध होता है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि भूगोल किसी देश के आर्थिक विकास, उसकी सुरक्षा अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में सुधार, संसाधनों के नियोजन आदि में बहुत सहायक सिद्ध होता है। यदि यह कहा जाए कि भूगोल देश के लिए जागरूक नागरिक बनाने में सहायक है तो कोई अतिशयोक्ति न होगी।

मौलाना हाली में देश-प्रेम की भावना इतनी बलवती हो उठी कि वह अपने देश की एक मुठी धूल के बदले में स्वर्ग को त्यागने के लिए तत्पर हैं-

“तेरी एक मुश्ते खाक के बदले,
लूँ न हरगिज़ बहिश्त मिले।”

इकबाल को अपने देश से बड़ा प्रेम था। यही कारण है कि देश की मिट्टी का एक-एक कण उनको देवता जैसा प्रतीत होता था।

“पत्थर की मूर्ति को समझा है तू खुदा है,
खाके वतन का मुझ को हर ज़र्ग देवता है।”¹⁷

सुरुर जहानावादी के काव्य का अधिकांश देशप्रेम का घोटक है। उनका एक-एक शब्द मातृभाव और देश प्रेम की सुगन्ध से सुवासित है। वह भी अपने देशवासियों के हृदय को एक करना चाहते हैं-

“हुब्बे वतन का मिलकर सब एक राग गायेँ,
नक्शा जुड़ा गर्चे मुगाने नरमा खां का ।।”¹⁸

मैथिलीशरण गुप्त जी की ओजस्वी हुंकार निम्न शब्दों में प्रकट हुई -

“धरती हिलकर नीद भगा दे।
ब्रजनाद से व्योम जगा दे।
दैव, और कुछ लाग लगा दे।।”¹⁹

आत्माभिमान एवं देशाभिमान की प्रेरणा प्रदान करने में कवि समुदाय पीछे नहीं था।
इस सन्दर्भ में श्रीधर पाठक का मन्तव्य पठनीय है-

“वन्दनीय वह देश जहाँ के देशी निज अभिमानी हो।
बान्धता में बँधे परस्पर परता के अज्ञानी हो ।।”²⁰

मातृभूमि की महिमा का गान भी देशभक्ति का अंग है। द्विवेदी युग के सबसे श्रेष्ठ राष्ट्रगायक मैथिलीशरण गुप्त जी थे। वे राष्ट्रकवि थे। उन्होंने देश की परिस्थिति के अनुरूप समय को वाणी दी। मातृभूमि के सन्दर्भ में वे कहते हैं-

“जय-जय भारत भूमि भवानी।
अमरों ने भी तेरी महिमा बारम्बार बखानी।”²¹

सांस्कृतिक एकता

संस्कृति का अर्थ है भूषणभूत सम्यक् चेष्टा। ‘सम्’ उपसर्ग पूर्वक ‘कृ’ धातु से भूषण अर्थ में सुट का आगम करके ‘क्तिन’ प्रत्यय करने से ‘संस्कृति’ शब्द बनता है।

‘संस्कृति’ शब्द का उद्गमन विद्वान वैयाकरण सम+कृ से भूषण अर्थ में ‘सुट’ आगम पूर्वक क्तिन लेकर सिद्ध करते हैं, जिससे उनका अभिप्राय संस्कृति से भूषण भूत सम्यक् चेष्टायें होगी, वही स्थान संस्कृति वाला क्षेत्र कहा जायेगा। विश्व में ऐसा स्थान आज भी भारतवर्ष ही है।

संस्कृति की परिभाषा विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न प्रकार से दी है-

श्री रामधारी सिंह ‘दिनकर’ का कथन है - “असल में संस्कृति जिन्दगी का एक तरीका है और वह तरीका सदियों में जमा होकर उस समाज में छाया रहता है जिसमें हम जन्म लेते हैं।”

महात्मा गाँधी जी ने लिखा है कि - “संस्कृति ही मानव जीवन की आधारशीला और मुख्य वस्तु है। यह आप के आचरण और व्यक्तिगत व्यवहारों की छोटी से छोटी बातों में व्यक्त होनी चाहिए ।”

पाश्चात्य समाजशास्त्री एच० रग का कथन है कि 'संस्कृति' का अर्थ मनुष्य का पूर्ण जीवन है, जो समूह में गतिमान होता है, किसी एक समाज में व्यक्ति क्रिया, चिन्तन-अनुभव विश्वास, इच्छा तथा भय करता है।''

इस परिभाषा से तीन बातें स्पष्ट होती हैं। प्रथम - व्यक्ति का प्राकृतिक जीवन, द्वितीय - व्यक्ति की सामाजिक संस्थाएँ और तृतीय - व्यक्ति का मनोवैज्ञानिक पक्ष।

अमेरिकन प्रयोगवादी शिक्षाशास्त्री जान डी वी के अनुसार 'संस्कृति किसी भी व्यक्ति के अपने अभिप्रायों के ज्ञान की यथार्थता और श्रेणी के निरन्तर विस्तार की क्षमता है।''

श्री देवगुप्त ने लिखा है कि - "समाज का अध्ययन करते समय व्यक्ति की अनन्यता की तरफ ध्यान जाता है, जो उसकी संस्कृति से सम्बन्धित है। संसार के सभी प्राणियों में मनुष्य श्रेष्ठ है क्योंकि उसकी अपनी संस्कृति है।"

अंग्रेजी में संस्कृति को कल्चर कहते हैं। कल्चर की परिभाषा ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी में इस प्रकार दी गयी है-

" The Training and refinement of mind tastes and manners, the condition of being thus trained and refined, the intellectual side of civilization, the acquainting ourselves with the best."

संस्कृति देशभक्ति के निर्माण में अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान देती है। संस्कृति से जीवन के ढंग का बोध होता है और इसकी व्यापकता में मानव-जीवन के अनेक पहलू आ जाते हैं।

संस्कृति और राजनीति में जो अविच्छिन्न सम्बन्ध है उसको सम्राट अकबर ने भली-भाँति समझ लिया था। संस्कृति से राजनीति प्रभावित होती है। संस्कृति पर बल देने पर ही लोग अपनी राजनीति में शक्ति ले आते हैं।

एक देश में अनेक भाषाएँ होती हैं। भारतीय संविधान में ही अट्ठारह भाषाओं को स्वीकृति दी गई है, जिनके नाम हैं - असमिया, हिन्दी, तेलगु, बंगाली, उर्दू, मराठी, उड़िया, गुजराती, कन्नड़, मलयालम, सिन्धी, पंजाबी, नेपाली, संस्कृत, मणिपुरी, कश्मीरी, कॉनकनी। इन सभी भाषाओं का अपना अपना महत्व है। सभी भाषाओं के होते हुए भी भारत की राष्ट्र भाषा हिन्दी है।

सांस्कृतिक एकता का दूसरा पक्ष धार्मिक एकता एवं सद्भावना है। धर्म शब्द 'धृ' धातु से (बनाए रखना, पृष्ट करना, धारण करना) बना है-

धारणात् धर्ममित्याहुः धर्मेण विधुताः प्रजाः।

विश्व को धारण करने वाला धर्म ही है।

डॉ० इकबाल, धर्म (मजहब) के बारे में कहते हैं-

“मजहब नहीं सिखाता आपस में बैर रखना।

हिन्दी है हम वतन है हिन्दुस्तान हमारा ॥”

स्वामी विवेकानन्द ने कल्पना की थी कि भारत का भावी धर्म वह है जिसमें वेदान्त का मन और इस्लाम का शरीर एकाकार होंगे। यही वह दृष्टि है जिसे पाकर कविगुरु रवीन्द्र नाथ ने कहा था, धर्म को पकड़े रहो, लेकिन धर्मों को छोड़ कबीर से लेकर मलूकदास तक भारत के सभी सन्तों ने जिस परम धर्म का आख्यान किया था, उसी धर्म को डॉ० राधाकृष्णन् आज की भाषा में “रिलीजन ऑफ स्पिरिट” अथवा आत्मा का धर्म कहते हैं।

आर्थिक जीवन में समानता देशभक्ति का एक अन्य महत्वपूर्ण पक्ष है। आर्थिक जीवन में सामान्यतया अर्थात् पारस्परिक आर्थिक निर्धरता के द्वारा देशभक्ति की भावना मजबूत होती है।

ऐतिहासिक परम्परा की एकता -

देशभक्ति के विकास में एक समान अतीत भी सहायक होता है। एक से अतीत के लोगों में प्रायः परस्पर सहानुभूति तथा सद्भावना अधिक होती है। समान धरोहर तथा समान प्रथाएँ लोगों को देशभक्ति में बाँध देती हैं।

देश के गौरवपूर्ण अतीत के उल्लेख धार्मिक सुधारों तथा पाश्चात्य विद्वानों की खोजों के फलस्वरूप मिलते हैं।

किशोरीलाल गोस्वामी ने 'तारा' उपन्यास की कथा शाहजहाँ के काल में की है। इस उपन्यास में गौण रूप से देश-प्रेम की भावना व्यक्त होती है।

भारत देश-

भारत एक विस्तृत एवं विशाल देश रहा है। भारत का अतीत अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रहा है। इतना महत्त्वपूर्ण सम्भवतः संसार के किसी देश का न होगा। भारत एक उन्नत और अत्यन्त सभ्य देश रहा है। सुखी और सबल देश के रूप में स्वयं रहना और अपने पड़ोसी देशों को अपने ज्ञान-विज्ञान से लाभ पहुँचाना ही इसका ध्येय रहा है। भौगोलिक रूप में इसका क्षेत्रफल 2006 में इस प्रकार है।

2006- 3287.263 वर्ग किलोमी०

भारत देश विश्व का सातवाँ विशालतम देश है तथा यह शेष एशिया से पर्वतों ओर समुद्र द्वारा अलग है जिससे इसका स्वतंत्र भौगोलिक अस्तित्व है। भारतवर्ष के उत्तर में पर्वतराज हिमालय है जो पश्चिम में अरब सागर के बीच हिन्द महासागर से जा मिलता है। विष्णु पुराण में कहा गया है कि समुद्र के उत्तर और हिमालय के दक्षिण का जो भूखण्ड है वह भारत है और इसमें रहने वाली जनता भारती प्रजा है-

उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्च वै दक्षिणम् ।

वर्ष तद भारतं नाम भारतीय यत्र सन्तति ।।

विष्णु 2/3-1

दादाभाई नौरोजी ने देश में ही नहीं इंग्लैण्ड जाकर भी स्वराज्य के लिए यत्न किया। उनके इन शब्दों में देश के लिए कितना अनुराग और कितनी वेदना छिपी हुई है- “स्वराज्य प्राप्त करके ही दम लो जिससे उन लाखों प्राणियों की रक्षा हो जो आज दरिद्रता, दुर्भिक्ष और महामारियों की भेंट हो रहे हैं, उन करोड़ों व्यक्तियों को रोटी मिले जो पेटभर अन्न भी न मिलने के कारण भूखों मर रहे हैं और भारत अपने प्राचीन गौरव और अभिमान को प्राप्त करने में समर्थ हो।”

इन शब्दों से ऐसा मालूम पड़ता है जैसे भारत के प्राण स्वयं मुखरित होकर झंकृत हो उठे हैं।

महादेवी वर्मा, जयशंकर प्रसाद, सूर्यकान्त त्रिपाठी ‘निराला’ सुमित्रानन्दन पंत आदि ने भारत देश का गुणगान किया। प्रसाद ने अपने गीतों में भारत देश का गुणगान इस प्रकार से किया है।

“अरुण यह मधुमय देश हमारा,

जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।”

हमारा भारत देश विश्व का सबसे बड़ा लोकतन्त्र है। किन्तु अशिक्षा, जातिगत और साम्प्रदायिक भेद-भाव, राजनीतिक दलों के अनुन्तरदायित्वपूर्ण व्यवहार आदि के कारण हम अभी प्रजातन्त्र का वह आदर्श रूप प्रस्तुत नहीं कर सके हैं, जो जन-जन के लिए मंगलकारी हो। हमारा भारत देश विविधताओं का देश है। यह भावी भारत फिर से 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का मधुर नाद कर रहा है। सुनो हर प्रभात की प्रथम रश्मि के साथ ही भारत-भूमि से मानव-मंगल की कामना के लिए ये स्वर उठ रहे हैं-

“सर्वे भवन्तु सुखिन, सर्वे सन्तु निरामया।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, या कश्चिद् दुःख भाग्भवेत् ॥”

भारत जैसे विकासशील एवं विशाल जनसंख्या वाले और कृषि प्रधान देश में तो लघु एवं कुटीर उद्योगों का और भी अधिक महत्त्व है। महात्मा गाँधी ने कहा था - “भारत का मोक्ष उसके कुटीर उद्योगों में निहित है।” इसीलिए उन्होंने विदेशी को त्यागकर स्वदेशी का आह्वान किया था।

भारत देश के अन्तर्गत अट्ठाईस राज्य हैं। जिनके नाम हैं - आन्ध्र प्रदेश, अरुणाचल प्रदेश, असम, विहार, गोवा, गुजरात, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, जम्मू और कश्मीर, कर्नाटक, केरल, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, मणिपुर, मेघालय, मिज़ोरम, नागालैण्ड, उड़ीसा, पंजाब, राजस्थान, सिक्किम, तमिलनाडु, त्रिपुरा, उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल, झारखंड, छत्तीसगढ़, उत्तरांचल,

सात केन्द्र शासित प्रदेश हैं - चण्डीगढ़, अंडमान-निकोबार द्वीप समूह, दादरा और नागर हवेली, दिल्ली, दमन और दीव, लक्षद्वीप और पांडिचेरी।

वर्ष 1981 की गणनानुसार अंडमान तथा निकोबार द्वीप समूह और दादरा तथा नागर हवेली प्रत्येक में एक-एक नगर है जब की दिल्ली में 30 नगर हैं। उत्तर प्रदेश में 1,12,566 बसे हुए और 11,680 गैर बसे हुए गाँव हैं। मध्यप्रदेश में 71,352 तथा सिक्किम में 440 बसे हुए गाँव हैं।

भारतवर्ष के सीमावर्ती देशों में उत्तर-पश्चिमी में पाकिस्तान और अफ़ग़ानिस्तान हैं। इसके उत्तर में चीन, नेपाल और भूटान हैं। पूर्व में बर्मा तथा पश्चिमी बंगाल के पूर्व में बंगला देश है।

भारत देश में फैली पर्वतमल्लायें तथा नदियाँ हैं। इन नदियों का एक बहुत बड़ा दोष भी है। वह यह है कि यह देश को विभिन्न भागों में विभाजित करती हैं, किन्तु देश की सभी नदियाँ श्रेष्ठ एवं महत्त्वपूर्ण मानी गयी हैं।

विश्व के लगभग सभी देशों में धर्म, जाति एवं भाषा का भेद है। हमारे भारत-देश में भेद और अभेद दोनों हैं। भारतवर्ष प्रारम्भ से ही धर्मपरायण देश है। यहाँ के जीवन की अत्यन्त प्रशंसा की गयी है। हमारे पूज्य महापुरुषों के सामीप्य के कारण सम्पूर्ण देश में फैले अनेक नगर मोक्ष दायी स्थल के रूप में स्मरणीय माने जाते हैं।

मैथिलीशरण गुप्त जी भारतीय संस्कृति की क्षेष्ठता का उद्घोष करते हुये कहते हैं कि अंततः समस्त संस्कृतियाँ इसी संस्कृति में विलीन हो जायेंगी-

आर्य-भूमि अंत में रहेगी आर्य-भूमि ही,
आकर मिलेंगी यही संस्कृतियाँ सबकी,
होगा एक विश्व तीर्थ भारत ही भूमि का।²²

जयशंकर प्रसाद जी के ऐतिहासिक नाटकों का उद्देश्य देशवासियों के सम्मुख प्राचीन इतिहास का उज्ज्वल और समृद्ध रूप प्रस्तुत किया जाये, जिससे उसके मन में जमी अंग्रेजी की क्षेष्ठता और अपनी हीनता की भावना को दूर किया जा सके। प्रसाद जी के ऐतिहासिक नाटकों में 'चन्द्रगुप्त' का विशेष ऐतिहासिक महत्त्व है। प्रसाद जी के 'चन्द्रगुप्त' नाटक में देश प्रेम पर आधारित गीत की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं-

अरुण यह मधुमय देश हमारा ।
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिजको ।
मिलता एक किनारा ।।²³

भारत देश में भिन्न-भिन्न प्रकार की जलवायु है। देश के उत्तरी छोर पर कश्मीर है, जिसकी जलवायु मध्य एशिया की जलवायु जैसी है। देश में एक स्थान है, चेरापूँजी जहाँ वर्ष में पाँच सौ इंच से अधिक वर्षा होती है, दूसरा स्थान है, धार की मरूभूमि जहाँ वर्षा होती ही नहीं अथवा नाममात्र की होती है। पहाड़ और रेगिस्तान का जीवन कठिन होता है इसीलिए यहाँ के लोग स्वभाव के बलिष्ठ होते हैं। नदियों और पठारों के इलाके में रहने वाले लोग स्वभाव के सरल होते हैं। जलवायु तथा क्षेत्रीय परिस्थितियों के अनुसार व्यक्तियों के पहनावे तथा खानपान में भी अन्तर होता है। खादी की धोती तथा कुर्ता देश का आदर्श पहनावा माना गया है, किन्तु उसे बरफीले इलाके के रहने वाले कश्मीरी आसानी से नहीं पहन सकते।

पं० श्रीधर पाठक ने भारत के गौरव और महात्म्य का गान करते हुए उसके सदैव स्वतंत्र रहने की कामना की है। उनकी इन पंक्तियों से स्वतन्त्रता सेनानियों को अवश्य ही प्रेरणा प्राप्त हुई होगी-

जय-जय प्यारा भारत देश ।
जग में कोटि जगहु जीवै ।
जीवन सुलभ अभी रस पीवै ।
सुखद वितान सुकृत का सोवै ।
रहे स्वतंत्र हमेशा ।
जय-जय प्यारा भारत देश ॥²⁴

भारतेन्दु भारत भूमि के अनन्य सेवक ज्ञान, संवेदन और कर्म की अभिन्नता को मूर्त रूप देने वाले महापुरुष थे। भारतेन्दु देश प्रेम के अग्रदूत थे। भारतेन्दु भारतवासियों की विवशता का उल्लेख पुरी ईमानदारी के साथ करते थे। उन्होंने अनेक प्रकार से भारतमाता की दुर्दशा के चित्र खींचे। कवि का विवाद युक्त मन इन पंक्तियों में उमड़ आया है-

“लखौं किन भारतवासिन की गति।
मदिरामत मएसे सोअत व्है अचेत तजि सब मति ॥
धन गरजै जल बरसे इन पर बिपति परैकिन आई।
ये बजकारे तनिक न चौकत ऐसी जड़ता छाई॥”²⁵

सोहन लाल द्विवेदी जी मातृभूमि की गरिमा का गान करने के साथ-साथ स्वदेशवासियों को स्वतंत्र होकर जीने की प्रेरणा अपनी कविताओं के माध्यम से देते रहें हैं-

भीम और अर्जुन के पुत्रों, बने हुए हो दास ।
ऐसे पराधीन जीवन से मधुर मृत्यु का पाश ॥²⁶

भारत की पृष्ठभूमि देखने पर पता चलता है कि भारत पर कभी मुसलमानों ने आधिपत्य जमाया और कभी अंग्रेजों ने इसी कारण देश में विविध प्रकार के आन्दोलन चल रहे थे। मध्यकाल में विक्टोरिया शासन की स्थापना बंग-भंग आन्दोलन, ईसाई मिशनरियों का आना, वहाबी आन्दोलन इस प्रभाव से अंग्रेजों का भारत में छा जाना, जिनके कारण देशभक्ति आन्दोलन को गति मिली।

अमीर खुसरो की सर्वधर्म स्वभाव की भावना का एक महत्वपूर्ण आधार यह भी था कि उन्हें अपने देश के लोगों से बेहद प्यार था। उन्होंने साफ-साफ लिखा था कि-

“हिन्द अपना मौलिद- ओ मादा ओ वतन”²⁷

अर्थात् ‘भारत मेरी जन्मभूमि है। मेरी माता और मेरा देश है’ एक अन्य स्थान पर उन्होंने भारत और प्रेम के बारे में अपनी जो उदान्त भावनाएँ व्यक्त की हैं, उन्हें मैं यहाँ के दोहराना चाहूँगा अमीर खुसरो लिखते हैं - “यह आसमानी सूरज हिन्दुस्तान की वफादारी के इश्क में गरम हो गया है।”²⁸

इसका अर्थ यह है कि सूरज में गरमी हिन्दुस्तान से इश्क करने की वजह से पैदा हुई है, उसके बाद उससे सारे आलम की हवा गरम हुई है।

स्वामी रामतीर्थ की कविता की कुछ पंक्तियाँ उद्धृत हैं, जिसमें देशप्रेम के साथ-साथ विश्व प्रेम की भावना है और प्रेम की इसी भावना को उन्होंने व्यवहारिक वेदांत भी कहा है। उन्होंने लिखा है-

मैं सम्पूर्ण-समूचा भारतवर्ष हूँ।

मेरा प्रेम सर्वभौमिक है।

X X X

मेरी अमंरात्मा विश्वात्मा है।

मैं जब चलता हूँ, मैं सोचता हूँ कि भारत चल रहा है।

X X X

मैं भारतवर्ष हूँ। मैं शंकर हूँ। मैं शिव हूँ।

यही देशभक्ति का सर्वोन्तम साक्षात्कार है।

यही है व्यवहारिक वेदांत ।।²⁹

भारतीयजीवन में अनेक प्रकार की विविधता मिलती है। भेदों से यहाँ के व्यक्ति विचलित नहीं हुए। उन्होंने भेदों के बीच एकता के तत्त्व ढूढ़ निकाले। पुरातन काल से ही हमारा भारत वर्ष राष्ट्रीय चेतना से परिप्लावित था। हमारे वेद-साहित्य में ‘पृथ्वी सूक्त’ मिलते हैं जिनमें मातृभूमि की वन्दना की गयी है-

“उपस्थास्ते अनमीया अभक्ष्मा अस्मभ्यंसन्तु पृथिवि प्रसूताः।
दीर्घन आयुः प्रतिबध्यमाना वयं तुम्यं बलिहतः स्याम।।”³⁰

‘अथर्ववेद’ का ऋषि कहता है कि मैं अपनी मातृभूमि के लिए उसका दुख दूर करने के लिए हर तरह की कठिनाइयाँ सहने के लिए तैयार हूँ। वे कठिनाइयाँ चाहे जिस ओर से आएँ और चाहे जब आएँ मुझे इसकी चिन्ता नहीं-

“ अहमस्मि सहमान उत्तरो नाम भूम्याम्।
अभीषाउस्म विश्रवाषाडाशामाशां विससिहिः।। ”³¹

हमारे ऋषियों ने ही नहीं अपितु विदेशी पर्यटकों ने भी भारत-भूमि की मुक्त-कण्ठ से सराहना की है। प्राचीन भारत के प्रख्यात यात्री हयून्सांग ने लिखा था कि धन्य है वह भारतभूमि जहाँ न्यायालय तो है किन्तु कोई अपराधी नहीं, कारावास है कोई बंदी नहीं, घर हर तरह की श्री-सम्पदा से सम्पन्न और समृद्ध है, पर ताले नहीं।

भूषण का काव्य देश प्रेम की भावना से ओतप्रोत था। भूषण मुस्लिम विरोधी नहीं थे। भूषण ने मुसलमान मात्र की भर्त्सना न कर कुशासन की भर्त्सना की है। भूषण ने बाबर, हुमायूँ, अकबर, शाहजहाँ आदि कमिषय मुसलमान राजाओं की अवश्य ही स्तुति की है-

और पातसाहन के हुती चाह हिंदुन की अकबर शाहजहाँ कहैं साख तब की।
दौलत दिल्ली की पाय आलमगीर बब्बर, अकब्बर के बिरद बिसारे तैं।।³²

मैथिलीशरण गुप्त की रचनाओं में राष्ट्रीय भावना की झलक मिलती है। अपनी प्रथम सुख्यात कृति ‘भारत-भारती’ में ही कवि ने यह घोषित किया था कि हमारा आदर्श अपने राष्ट्र के अतीत वर्तमान और भविष्य पर विचार करना है-

“हम कौन थे, क्या हो गये और क्या होंगे अभी,
आओ विचारे आज मिलकर ये समस्यायें सभी ।।”³³

गुप्त जी को भारत के उज्ज्वल अतीत और भारतीय परम्पराओं पर गर्व रहा है। इन पर निष्ठा रखते हुए गुप्त जी ने अपने काव्य में इनका निरूपण किया है। गंगा, यमुना, सरयू, हिमालय हमारे लिए केवल नदी और पर्वत ही नहीं है बल्कि ये हमारे गौरव के प्रतीक और हमारे जीवन के प्रेरक बन गये हैं। हमारी इनमें विशेष श्रद्धा है। इसलिए गंगा को देखकर सीता श्रद्धा और हर्ष से पुलकित हो उठती हैं जिसको कवि ने साकेत की इन पंक्तियों में चित्रित किया है -

“जय गंगे, आनंद -तरंगे, कलरवे,
अमल-अंचले, पुष्पजले, दिव- सम्भवे।
सरस रहे यह भारत-भूमि तुमसे सदा,
हम सकबी तुम एक चलाचल सम्पदा।”¹³⁴

सन् 1909 में श्री मैथिलीशरण गुप्त ने ‘मातृभूमि’ और ‘स्वर्ग-सहोदर’ की रचना की। वास्तव में मातृभूमि के प्रति इतनी आत्मीयता और गरिमापूर्ण अभिव्यक्ति हिन्दी में कम कवियों ने की है। मातृभूमि की वन्दना करते हुए कवि ने बड़े मनोयोग से गया है-

“अवलम्ब न और कहीं इसको,
तनिए, हरि, हाय नहीं इसको,
खलता दुःख दैन्य सहोदर है,
यह भारत स्वर्ण सहोदर है”¹³⁵

प्रताप नारायण मिश्र अनन्य देश भक्त थे। वे सदैव देशोन्नति की बात सोचते रहते थे। समाज सुधार के जितने काम, बाल-विवाह का विरोध, विधवा विवाह का समर्थक आदि चल रहे थे, मिश्र जी उन सबका समर्थक इसीलिए कर रहे थे कि इन सबसे देशोन्नति होगी। श्रामिकों की दुरावस्था का वर्णन उन्होंने अपनी ‘बेगारी विलाप’ नामक कविता में विस्तार से किया है-

“बोध धरत खैंचत लड़ा, बीतत दिन चहुं याम।
मानुष है करनौ परै हमें बैल को काम ।।”¹³⁶

मिश्र जी बड़े नम्र शब्दों में देश की दुर्दशा का वर्णन करके अपनी देशभक्ति का परिचय देते हैं-

“सजि सजि भूषण वसन जुआवहि निकट तुम्हारे।
वे भारत की सत्य दशा न दिखावहिं प्यारे।।”¹³⁷

स्वतंत्रता की बात करने वाले संभवतः मिश्र जी अपने युग के पहले कवि हैं। मिश्र जी का संदेश है कि गाने बजाने से ही स्वतंत्रता प्राप्त नहीं होगी। स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए त्याग की आवश्यकता है-

“ सब तजि गहो स्वतंत्रता नहिं चुप लाते खाव,
राजा करे सो न्याय है, पांसा परे सो दाव।।”¹³⁸

उर्दू के प्रसिद्ध शायर (कवि) जोश-मसीहा-आबादी सच्चे देश भक्त थे। उनकी शायरी (काव्य) में देशभक्ति की भावना दिखाई देती है। जिस जमाने में जोश ने यह नज़्म (कविता) लिखी उस जमाने में भारत में चारों तरफ देशभक्ति की भावना जाग्रत थी। भारतीय देशभक्ति आन्दोलन में लगे हुये थे। जोश की कविता 'शिकस्त-ए-जिन्दाँ का ख्वाब' देशभक्ति परक कविता है। कवि और लेखक भी अपने-अपने ढंग से इस मिशन में हिस्सा ले रहे थे। इस समय देशभक्ति को उभारने के लिए बहुत सी कविताएँ और कहानियाँ लिखी गयी, जिसमें से कई कविताओं और कहानियों की बिक्री पर अंग्रेजी शासन ने रोक लगा दी और उन्हें ज़ब्त कर लिया, लेकिन अंग्रेजी सरकार की तमाम रुकावट के बावजूद ये सिलसिला जारी रहा। जोश की यह प्रसिद्ध कविता भी इसी सिलसिले की एक कड़ी है। इस कविता में जोश ने दर्शाया है कि भारतीय अंग्रेजों की गुलामी से परेशान हो गये हैं। और अब आन्दोलन के लिए तैयार हो गये हैं। कविता की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं -

“क्यों हिन्द का जिन्दाँ काप रहा है, गूँज रही है तकबीरें,
उकताए हैं कुछ कैदी और तोड़ रहे हैं जंजीरें।।”⁴⁰

इन पंक्तियों में कवि एक जोशीले शोर की आवाज़ सुनकर कहता है कि भारत का कै दखना भरी रहा है। और ये आवाज़ एक साथ निकलती है कि कुछ कैदी इस कैद की जिन्दगी से उकता गये हैं और उससे आज़ादी हासिल करना चाहते हैं और बहुत से तंग आकर अपनी जंजीरें तोड़ रहे हैं। जिसका ये शोर है। अर्थात् भारतीय अंग्रेजों की गुलामी से तंग आ चुके हैं और आन्दोलन करने के लिए तैयार हैं। किस प्रकार जल्द से जल्द गुलामी की जंजीरें तोड़ डालें और स्वतंत्रता मिल जाये। जोश की इस कविता में स्वतंत्रता हासिल करने का जोश झलकता है। भारतीयों के हृदय में स्वतंत्रता पाने का जोश बिजली की तरह कौंध रहा है। भारतीयों की आँखों में अंग्रेजों के खिलाफ गुस्सा भरा पड़ा है। भारतीय जगह-जगह इकट्ठे होकर यह बातें कर रहे हैं कि अंग्रेजों की गुलामी से किस तरह छुटकारा पाया जाए और किस तरह अंग्रेजों को भारत से बाहर खदेड़ा जाए।

1. हिन्दी विश्वकोश खण्ड घ - सम्पा० फुलदेव सहायक वर्मा, प्रधान सम्पा० - राम प्रसाद त्रिपाठी पृ० - 122।
2. शब्द परिवार कोश सम्पा० - डॉ० बदरीनाथ कपूर
3. समीना वहाब - देशभक्ति आन्दोलन के परिप्रेक्ष्य में बालमुकुन्द गुप्त के साहित्य का मूल्यांकन शोध-प्रबन्ध से अवतरित पृ०-1
4. मानक हिन्दी कोश-खण्ड तीसरा -सम्पादक-रामचन्द्र वर्मा।
5. हिन्दी शब्द सागर भाग-5 मूल सम्पा० श्यामसुन्दर दास।
6. हिन्दी भाषा कोश-सम्पा० रामशंकर शुक्ल रसाल। भ 11क 491.433।
7. ओम प्रकाश गावा-समाज विज्ञान कोश -पृ०- 175.
8. गांधी जी की सूक्तियाँ-सम्पा० ठाकुर राजबहादुर सिंह पृ० - 53-54 संस्करण-2001
9. डॉ० आरिफ़ नजीर-राष्ट्रीयता और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र पृ०- 5
10. वही, पृ०-5
11. हिन्दी शब्द सागर -भाग-5- मूल सम्पा० श्यामसुन्दर दास, नागरी प्रचारणी सभा वाराणसी।
12. मानक हिन्दी कोश (खण्ड तीसरा) सम्पा० रामचन्द्र वर्मा।
13. समीना वहाब देशभक्ति आन्दोलन के परिप्रेक्ष्य में बालमुकुन्द गुप्त के साहित्य का मूल्यांकन पृ० -5
14. वही पृ० -5
15. डॉ० नगेन्द्र- मैथिलीशरण गुप्त पुनर्मूल्यांकन पृ०-18-19
16. भारत-भारती (अतीत खण्ड) मैथिलीशरण गुप्त पृ० -14
17. समीना वहाब देशभक्ति आन्दोलन के परिप्रेक्ष्य में बालमुकुन्द गुप्त के साहित्य का मूल्यांकन पृ० 8
18. वही, पृ० -8
19. मन्मथनाथ गुप्त-राष्ट्रीय आन्दोलन का इतिहास -पृ० 105

20. वही, पृ० 105।
21. पूनमचन्द्र तिवारी- द्विवेदीयुगीन काव्य पृ०- 166
22. सिद्धराज (पंचाम-सर्ग) मैथिलीशरण गुप्त पृ० - 136.
23. पत्रिका- राष्ट्रभारती पृ० सं-174 अप्रैल 1967 प्रकाशन तिथि 2.4.1967 राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा।
24. अतएव- पत्रिका-संम्पा० - विनोद चन्द्र पाण्डेय लेख- भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में हिन्दी कवियों की भूमिका।
25. पत्रिका -राष्ट्रवाणी सम्पा० - गो.पे. नेने- पृ० - 163 अंक-5 नवंबर - 1966।
26. अतएव-पत्रिका-अगस्त-सितम्बर-1994 लेख-भारतीय स्वतंत्रता संग्राम एवं राष्ट्रकवि पं० सोहन लाल द्विवेदी की कविताएँ लेखक- सुमित्र पाण्डेय।
27. देशमणि - डॉ० शंकर दयाल शर्मा - पृ० 17
28. वही, पृ० -17।
29. समीना वाहब- देशभक्ति आन्दोलन के परिप्रेक्ष्य में बालमुकुन्द गुप्त के साहित्य का मूल्यांकन पृ०-17।
30. पत्रिका-राष्ट्रवाणी -संम्पा० गो०पे०नेने-पृ० 160 अंक-5 नवंबर-1966।
31. वही,
32. रसवंती-पत्रिका-संम्पा० प्रेमनारायण टंडन पृ०-7 अंक-3 मार्च 1964।
33. भारत-भारती-मैथिलीशरण गुप्त -पृ० 14
34. साकेत-मैथिलीशरण गुप्त - पृ०-71
35. सम्मेलन-पत्रिका (त्रैमासिक) सम्पा०-डा० प्रेमनारायण शुक्ल पृ०-316
36. भगवती प्रसाद शर्मा - नव जागरण और प्रतापनारायण मिश्र पृ०-157
37. वही,
38. वही,
39. जोश मलीहाबादी-शिकस्ते-जिंदों-पृ०-44 सम्पा०-प्रकाश पंडित,

द्वितीय अध्याय

हिन्दी काव्य में देशभक्ति की परम्परा : समीक्षात्मक अध्ययन

- ▶ देशभक्ति आन्दोलन
- ▶ आदिकालीन हिन्दी साहित्य में देशभक्ति
- ▶ भक्तिकालीन हिन्दी साहित्य में देशभक्ति
- ▶ रीतिकालीन हिन्दी साहित्य में देशभक्ति
- ▶ आधुनिक कालीन हिन्दी साहित्य में देशभक्ति
- ▶ द्विवेदी युगीन हिन्दी साहित्य में देशभक्ति
- ▶ छायावाद एवं छायावादोत्तर कालीन हिन्दी साहित्य में देशभक्ति

देशभक्ति आन्दोलन

1857 की क्रांति की असफलता के बाद देश की सार्वभौम सत्ता को कमजोर होते हुए देखकर अंग्रेजों के मुँह में पानी भर आया। उन्होंने इसके लिए भीतर ही भीतर योजना बनाई कि यहाँ साम्राज्य कायम किया जाए। अंग्रेज भारत आये थे व्यापार करने, पर जब उन्होंने महसूस किया कि भारत की सत्ता कमजोर हो रही है, यहाँ पर साम्राज्य आसानी से कायम किया जा सकता है तो उन्होंने षड़यन्त्र करना शुरू कर दिया। तथा अपनी कूटनीति के बल पर भारत के सम्राट बन गये।

देश की जनता अंग्रेजों को सदैव विदेशी समझती रही और कभी भी अंग्रेजों से अपनत्व का नाता न जोड़ सकी। इस भावना ने देशभक्ति आन्दोलन के उभार में बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। भारत की जनता ने देखा कि अंग्रेज भारत का कच्चा माल अपने देश में ले जाकर अपना औद्योगिक विकास कर रहे हैं और भारत के उद्योग धन्धों को नष्ट कर रहे हैं। इससे हमारा देश आर्थिक रूप से कमजोर होता जा रहा था। अंग्रेजों ने ऐसी शर्तें पेश करनी शुरू कर दी जो सही नहीं थी। लेकिन इन सब शर्तों को नबाव ने मंजूर कर लिया। “एक शर्त के अनुसार अंग्रेजों को यह भी अधिकार दिया गया था कि वे जहाँ भी चाहें, जैसा भी चाहें किलाबन्दी करें अंग्रेजों ने भारत आकर किसी भी वर्ग को कोई फायदा नहीं पहुँचाया। अंग्रेजों के पैर दिन-पे-दिन मजबूती से जम रहे थे अंग्रेज अपने स्वार्थों के लिए नये सुधार कर रहे थे जैसे- डाक, तार, रेल, पुल, सड़को, आदि का निर्माण करना किन्तु अंग्रेजों द्वारा किये जा रहे अपने सावर्थ साधन से भारत में एकता को बल मिला। इस आवागमन के साधनों से देश का एक भाग दूसरे भाग के सम्पर्क में आया। इन सब साधनों से भारत ने भी लाभ उठाया। भारतीय जनता एकजुट हो गयी तथा भारत में अंग्रेजी शासन को समाप्त करने के लिए भारतीय जनता एकजुट होने लगी।

सन् 1857 ई० के असफल होने के बाद देश में बदहाली का इतिहास शुरू होता है। अकाल, महामरी और सरकारी टैक्सों ने भारतीय जनता के जीवन को झकझोर दिया। अंग्रेजी शासन भारत का औद्योगिक विकास नहीं चाहते थे लेकिन भारत का पुँजी पति वर्ग भी देशभक्ति आन्दोलन का एक प्रबल अंग बन गया। अंग्रेजों को भारत से उखाड़ फेंकने के लिए विद्रोह और आन्दोलन चल रहे थे। सन् 1857 का विद्रोह सिपाही विद्रोह था। इस विद्रोह के नेता भी मुस्लिम थे। 1857 का जो विद्रोह हुआ वह सब

अंग्रेजों के अत्यधिक अत्याचार के कारण हुआ। कम्पनी ने एक के बाद एक पुराने राजकुलों को खत्म कर अपने में मिला लिया। यहाँ के उद्योग-धन्धों को ज़बरदस्ती कुचल कर हजारों लोगों को या तो खेती करने पर मजबूर किया था, जबकि खेतों पर यो ही बहुत भारी बोझ था या उन्हें मर जाने के लिए बाध्य किया था। उन्होंने मामूली डाकुओं की तरह राज घराने के खजाने को लूटकर उनके स्वामियों को दर-दर का भिखारी बना दिया था, सौकड़ों सन्धि-पत्रों को तोड़ डाला था।¹¹

इन सब अत्याचारों के कारण ही अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह किया गया। विद्रोहियों द्वारा समय-समय पर घोषणाएँ निकाली जाती थी। विद्रोहियों के द्वारा प्रचलित बरेली की घोषणा में यह बताया गया - “ईश्वर की दी हुई वस्तुओं में सबको आजादी है, जिसने हमसे इन्हें अलग कर दिया है क्या वह हमेशा हमको इससे अलग रख पायेगा? क्या ईश्वर की इच्छा के विरुद्ध ऐसा ही होता रहेगा ? नहीं, फिरंगियों ने अब इन्तना अत्याचार किया है कि अब उनका प्याला भर चुका है। वह अब हमारे धर्म को भी बिगाड़ने पर उतारू है। क्या ईश्वर की यह इच्छा है कि तुम इसे बैठे-बैठे देखा करो ? उठो ईश्वर ने अंग्रेजों को निकाल बाहर करने के लिए जोश पैदा किया है। अतएव उठो। सभी भाई-भाई हैं उनमें किसी तरह का भेद नहीं रहेगा।”¹²

“भारतवर्ष के इतिहास में 1857 वह साल था जब भारत देश में देशभक्ति की भावना का उदय होने लगा था। जिस समय अंग्रेज भारत में आए थे उस समय यहाँ पर (भारत) कुछ भी ऐसा नहीं था, जिससे देशवासी परेशान होते। अंग्रेजों की कूटनीति के कारण भारतवासियों में देशभक्ति की भावना का उदय हुआ। कहा जाता है कि जब विद्रोह के लिए कहा गया है तो हजारों हिन्दू और मुसलमान सिपाहियों ने क्रमशः गंगाजल और कुरान हाथ में लेकर अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह में शिरकत करने का वचन दिया है।”¹³

अंग्रेज ऐसे अकथनीय अत्याचार करते थे - गाँव में आग लगा दी जाती थी। गाँव वालों को वहाँ से भागने का मौका भी नहीं मिलता था। सैकड़ों ग्रामवासी पेड़ों पर लटकाकर मार दिये जाते थे। ये सब अमानवीय अत्याचार भारतवासियों पर किये जाते थे। जिससे भारतवासी क्रुद्ध हो उठे।

मनमोहन वसु जो हिन्दू मेला के अन्यतम नेता थे। उन्होंने द्वितीय अधिवेशन में कहा- “हम सरलता और पारस्परिक प्रेम के द्वारा एकता नामक महाबीज को खरीदने

आये हैं। इसी को अपने देश के खेत में बोकर और उस पर यत्र रूपी पानी तथा उत्साह रूपी ताप देकर एक मनोहर पौधा उत्पन्न होगा यह पौधा इतना सुन्दर होगा कि उसमें राष्ट्रीय गौरव रूपी पुष्प लगेंगे और इससे भारत भूमि महक जायेगी इसी पेड़ में जो फल होगा, अभी उसके नाम लेने का साहस नहीं होता। दूसरे देश के लोग उसे स्वतंत्रता के नाम से पुकारते हैं। और उसके अमृत का स्वाद लेते हैं। हमने वह फल कभी नहीं देखा बस लोगो से सुना है कि उसमें बड़े-बड़े गुण हैं।”¹⁴

सन् 1905 ई० में बंगभंग के विरोध में सारे देश में रोष की लहर दौड़ गयी 7 अगस्त, 1905 को विदेशी माल के वहिष्कार की नीति का ऐलान किया गया। 1916 ई० में लखनऊ कांग्रेस अधिवेशन में गरम दल और नरम दल दोनों एक हो गये। 1917 ई० में रूसी सफलता ने देशभक्ति आन्दोलन में नई चेतना और शक्ति प्रदान की जिसके परिणाम स्वरूप देश के चप्पे-चप्पे में देशभक्ति की लहर दौड़ गई। इस लहर में एक बात विशेष रूप से देखने योग्य थी कि हिन्दुओं और मुसलमानों ने आपस में मिलकर भाई-चारा कायम किया। 1919 ई० में मुम्बई के एक लाख पच्चीस हजार संगठित मजदूरों ने रौलट एक्ट के विरुद्ध हड़ताल की। सारा देश एकता के दृढ़ सुत्र में बँध गया तथा आजादी के संघर्ष में प्रयत्नशील हो उठा। 1942 में सारे देश में क्रांतिकारी लहर दौड़ गयी और ‘अंग्रेज भारत छोड़ो’ का नारा दिया गया। राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय दबावों ने अंग्रेजी सरकार को भारत छोड़ने पर विवश किया। 15 अगस्त, 1947 को लगभग एक शताब्दी की अंग्रेजी दास्तों से देश स्वतंत्र हो उठा।

अपने देश के लिए दादा भाई नौरोजी ने भी आन्दोलन पर बल दिया बीस हजार जनता अधिवेशन देखने आई और सोलह सौ से अधिक प्रतिनिधि आये। तत्पश्चात् गाँधी जी ने अहिंसा पर बल देते हुये शान्ति का नारा दिया, जो कि कांग्रेस में विकास की प्रतिक्रिया के आधार पर अद्भुत हुई, यह इस बात से ज्ञात होगा कि इस अधिवेशन के सभापति पद में बोलते हुए प्रपितामह दादा भाई नौरोजी ने कहा-
 “आन्दोलन करो, निरन्तर आन्दोलन करो। लोकतांत्रिक ब्रिटिश जाति आन्दोलन के सामने जितना सिर झुकाती है। उतना किसी बात के सामने नहीं पर आन्दोलन सर्वप्रकार के उपद्रवों से वर्जित हो और लोकतांत्रिक हो।” हिन्दी साहित्य में देशभक्ति प्राचीन काल से ही विद्यमान है-

आदिकालीन हिन्दी साहित्य में देशभक्ति-

आदिकालीन हिन्दी साहित्य में देशभक्ति की भावना पर आधारित काव्य देखा जा सकता है। देश-प्रेम, देश की पुण्य भूमि समझकर उसकी पूजा वन्दना आदि देशभक्ति के अन्तर्गत आते हैं। उदाहरण स्वरूप कवि हेमचन्द का कथन द्रष्टव्य है।-

भल्ला हुआ जु मारिया बहिणि महारा कंतु।
लज्जेजं तु वयंसिअहु जइ भग्गा थरू अंतु।।⁵

इस दोहे में देशभक्ति की भावना दिखाई देती है। एक स्त्री से किसी स्त्री ने कहा कि तुम्हारा पति युद्ध में मारा गया। इस पर उस स्त्री ने कहा कि भला हुआ जो वह मारा गया, हे बहिन। हमारा कांत। यदि वह भागा हुआ घर आता तो मैं अपनी समवयस्काओं से लज्जित होती।

आदिकालीन कवि जगनिक ने 'परमाल रासों' में राजा परमर्दिदेव के वीर और शौर्य का गान किया है। देशभक्ति का पूर्ण परिपाक वीर रस में होता है। वीर रस पर आधारित काव्य आदिकाल में लिखा गया। वीर रस का इतना सुन्दर परिपाक हुआ है कि कदाचित् परवर्ती हिन्दी साहित्य में वीर रस का इतना पुष्ट रूप मिलना दुर्लभ है। उस समय चारों ओर युद्ध हो रहे थे। वृद्धों में युद्ध के लिए एक अदम्य उत्साह था। वृद्ध की वीरता जगनिक कृत परमाल रासों में द्रष्टव्य है-

बारह बरस लौ कूकर जीवै, अरू तेरह लौ जिवै सियार।
बरस अठारह क्षत्रिय जीवै, आगे जीवन को धिक्कार।।⁶

आदिकालीन रचनाओं में नरपति नाल्ह की 'बीसल देव रासों' अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यह 100 पृष्ठों का ग्रन्थ है जो वीरगति के रूप में है। ग्रन्थ में अजमेर के चौहान राजा बीसलदेव की वीरता का गान है। बीसल देव बड़े वीर और प्रतापी थे। बीसलदेव रासों की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं।

आठ सहस नेजा-धणी, पालकी बैठा सहस पचास।
हाथी चाल्या डोढसौ, असीय सहस चाल्या केकाण।।⁷

हिन्दी के प्रथम महाकवि माने जाने वाले कवि चंदबरदाई का 'पृथ्वीराज रासो' हिन्दी का प्रथम महाकाव्य है। इसमें पृथ्वीराज की वीरता का वर्णन है 'पृथ्वीराज रासो' ढाई हजार पृष्ठों का बहुत बड़ा ग्रन्थ है जिसमें 69 समय (सर्ग या अध्याय) हैं।

पृथ्वीराज रासों में वीर और शृंगार रस की अभिव्यक्ति अत्यन्त भव्य रूप से हुई है। वीर रस का एक दर्पपूर्ण चित्र फड़कती हुई ओजस्वी भाषा में देखिए-

“बज्जिय घोर निसान रान चौहान चहौ दिस।
सकल सूर सामंत समरि बल जंत्र मंत्र तिस।।
उट्टि राज प्रियिराज बाग मनो लग्ग वीर नट।
कढत तेग मनबेग लगत मनो बीज झट्ट घट्ट।।”⁸

वीरगाथा काल में नारी के दो रूप मिलते हैं - वीरमाता और वीरपत्नी। वीरमाता का जीवन उस समय धन्य माना जाता है जब उसका पुत्र शत्रु से युद्ध करता हुआ विजयी होकर लौटे या स्वयं वही अपना शरीर त्याग दे। वीर पत्नी का जीवन भी पति के साथ है तथा मरण भी। अर्थात् यहाँ दोनों ही रूपों में देशभक्ति की भावना दिखाई देती है। यथा-

हम सुख्य दुख्य वंटन समथ्य। हम सुरग बास छंडै न सथ्य।।
हम भूख प्यास अंगमै देव। हम सर समान पति हंस सेव।।⁹

कवि विद्यापति की “कीर्तिलता” और “कीर्तिपताका” नामक पुस्तकों में वीरता का वर्णन है। ‘कीर्तिलता’ में तिरहुत के राजा कीर्तिसिंह की वीरता, उदारता, गुणग्राहकता आदि का वर्णन किया गया है। कीर्तिलता की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं-

“मान बिहूना भोजना सतुक देवेल राज।
सरण पड़ुटे जीअना तीनू काअर काज।।”¹⁰

आदिकालीन प्रसिद्ध अरबी, फारसी के श्रेष्ठ कवि अमीर खुसरो ने हिन्दुस्तान को स्वर्ग कहा है-

किश्वरे हिंद अस्त बहिश्ती बजमी।
(हिन्दुस्तान दुनिया में जन्नत है)¹¹

‘नृप सिपहर’ में एक स्थल पर अमीर खुसरो ने भारत को सर्वश्रेष्ठ राष्ट्र सिद्ध किया है। वे राष्ट्र-प्रेम के द्योतक हैं। उनके मत में इस देश को महान मानने के कारण निम्न है - “इस देश का कोना-कोना विद्या और कला का केन्द्र है। दूसरे देश इसके ज्ञान-भण्डार से अज्ञान है।”¹²

अमीर खुसरो ने अपनी रचनाओं में राष्ट्र प्रेम भारत के प्रति जो श्रद्धा अर्पित की है, वे सात सौ वर्ष के उपरान्त आज भी और न जाने कितनी शताब्दियों तक भारत के नागरिकों में नवीन प्रेरणा देती रहेगी। आदिकालीन हिन्दी साहित्य में देशभक्ति के चिन्ह बहुत बारीक दिखाई देते थे जो भक्तिकालीन हिन्दी साहित्य में आकर कुछ गहरे हुए।

भक्तिकालीन हिन्दी साहित्य में देशभक्ति-

भक्तिकालीन कवियों के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि उन्होंने भारत की देशभक्ति एवं भावात्मक एकता को मजबूत बनाने के लिए सहारनीय कार्य किया।

भक्तिकाल में धार्मिक काव्यों के साथ-साथ वीर काव्यों की भी प्रमुखता रही है। तुलसी और जायसी ने वीर काव्यों का उल्लेख किया है। इस काल में भी आदिकाल की भाँति वीर काव्यों की निरन्तर रचना हुई, भले ही उसकी मात्रा कम है-

गोस्वामी तुलसीदास वीर के प्रसंग में ऐसी शब्दावली का व्यवहार करते हैं-

“प्रबल प्रचंड बरिबंड बाहुदंड बीर,
धाए जातुधान, हनुमान लियो घेरिकै।”¹³

भक्तिकाल के प्रसिद्ध कवि रसखान के ब्रजभूमि के सच्चे प्रेम से परिपूर्ण ‘सवैया’ अत्यन्त प्रसिद्ध है-

मानुष हों तो वही रसखान बसौ सँग गोकुल गाँव के ग्वारन।
जौ पसु हों तो कहा बसु मेरो चरौ नित नंद की धेनु मझारन।¹⁴

प्रसिद्ध सूफी सन्त मौलाना रूमी ने फरमाया था-

तू बराए बस्ल करदन आमदी ।
ने बराए फस्ल करदन आमदी।¹⁵

दुनिया में तुम मेल मोहब्बत करने के लिए आए हो। दंगा फिसाद फैलाने और अलग कराने के लिए नहीं।

गुरूनानक देव तत्कालीन सामाजिक, राजनैतिक एवं धार्मिक परिस्थितियों की झाँकी अपने काव्य में प्रस्तुत की है। विशेष रूप से तत्कालीन विषम राजनीतिक परिस्थितियों के प्रति गुरूनानक जागरूक थे। देश की दुर्दशा का उनके काव्य में मार्मिक चित्रण हुआ है। समय की भयावहता तथा तत्कालीन राजाओं और जागीरदारों की नृशंसता का एक चित्र देखिए-

कलि काती राजे कासाई, धरम पंरतु करि उडरिया।
कूडु अमावस सचु चन्द्रमा दीसै नाहिं कह चड़िया।¹⁶

गुरूनानक ने सामाजिक पाखण्डों का, बाह्यडम्बरों एवं धार्मिक संकीर्णताओं का खण्डन किया है। जातिगत प्रथा के विरोध में उनकी निम्नलिखित पंक्ति द्रष्टव्य है-

जाणहु जोति न पूछहु जाति आगे जाति न हे।¹⁷

सुन्दरदास के काव्य में शूरवीरों के सम्मान से सम्बन्धित रचनायें मिलती हैं। शूरवीर के सम्बन्ध में उनकी यह रचना प्रसिद्ध है-

सुनत नगारे चोट, बिगसै कमलमुख,
अधिक उछाह फूल्यो भान है न तन में।
फेरै सब साँग तब कोऊ नहिं धीर धरै,
कायर कम्पायमान होत देखि मन में।¹⁸

संत नामदेव ने कहा है कि भगवान के लिए सभी मनुष्य समान हैं। इन्होंने हिन्दू-मुस्लमान की मिथ्या रूढ़ियों का विरोध करते हुए कहा है-

हिन्दू अन्धा तुरकौ काना, दुवौ ते ज्ञानी सयाना।
हिन्दू पुजै देहरा, मुसलमान मसीत।।
नामा वही सेविये जहां दहेरा न मसीत।।¹⁹

कबीर दास के समय में विभिन्न सम्प्रदायों के कारण ही देश में कुरीतियों का जन्म हो रहा था। अतः कबीर ने अपने काल में प्रचलित सभी सम्प्रदायों को परख कर उनकी सारपूर्ण बातों को अपनाते हुए बाह्यचार आदि का खण्डन किया। उन्होंने जाति-पाँति, ऊँच-नीच का खण्डन करते हुए कहा है-

एक जोति से सब उत्पन्ना, का बामन का सूदा।²⁰

कबीर जी ने पूजा, तीर्थ, व्रतादि का भी खुलकर विरोध किया है-

पूजा, सेवा, नेम व्रत, गुडियन का सा खेल।
जब लग पिउ परसै नहीं, तब लग संसय मेल।।²¹

कबीरदास जी ने नैतिक आदर्शों की प्राप्ति का सन्देश दिया। दया, परोपकार, अहिंसा, शील, दान आदि की प्रशंसा तथा काम, क्रोध, लोभ, अहंकार आदि की निन्दा की। कबीर प्रेम की महिमा गाते हैं। उनके अनुसार सच्चा धर्म वही है। जो प्रेम की सीख देता है-

कबीर जिन घर प्रेम का, मारग अगम-अगाध।

सीस उतारि पगतलि धरै, तब निकटि प्रेम का स्वाद ।।²²

इस प्रकार कबीर ने समाज में फैले भ्रष्टाचार को दूर कर शान्ति स्थापित करने का प्रयास किया। वस्तुतः कबीर सच्चे समाज-सुधारक तथा धर्म-प्रवर्तक महापुरुष थे।

सन्त रविदास मूलतः भक्त हैं। भक्त होने के साथ-साथ वे चिन्तक व समाज-सुधारक भी थे। पाखंड विरोध, सामाजिक बुराइयों के निवारण तथा संकीर्ण सांप्रदायिकता की भावनाओं के निराकरण की प्रवृत्तियाँ सभी सन्तों में समान रूप से पाई जाती हैं-

वेद कुरान कोई न अन्तर करन एक ही संदेसा।
जाति धर्म व वर्ण विसेस का कोई न भेद विसेसा।।²³

जायसी ने नागमती के वियोग-वर्णन के समय असाढ़ का एक आक्रमणकारी वीर के रूप में चित्रण किया है-

चढ़ा अषाढ़ गगन घन गाजा। साजा विरह दुन्द दल बाजा ।
खड़ग-बीजू चमकै चहुँ ओरा। बूँद बान बरसहिं घन घोरा ।।²⁴

जायसी की 'अखरावट' एक लघु दार्शनिक रचना है। 'अखरावट' में आत्मा, परमात्मा, सृष्टि आदि का सैद्धान्तिक विवेचन सूफी मत के अनुकूल है। वे सभी धर्मों को परमात्मा तक पहुँचने का मार्ग मानते हैं-

विधना के मारग हैं तेते, सरग-नखत तन रोवाँ जेते ।।²⁵

जायसी ने भारतीय साधना तथा सूफी साधना का समन्वय किया है। यथा-

पै सुठि अगम पंथ बड़ बांका। तस मारग जस सुई का नाका।
बाँक चढ़ाव सात खंड ऊँचा। चारि बसेरे जाइ पहुँचा।।²⁶

जायसी ने 'पद्यावत' में इतिहास और कल्पना का अद्भुत संयोग किया है। एक लोक प्रचलित कहानी को इतिहास-प्रसिद्ध घटना से जोड़कर जायसी ने इस प्रबन्ध-काव्य का प्रणयन किया है। 'पद्यावत' में करुण, वीर, भयानक, रौद्र आदि रसों की व्यंजना भी मिलती है। गोरा-युद्ध प्रसंग वीर रस की दृष्टि से उत्तम है। इसमें गोरा की वीरता का प्रदर्शन किया गया है-

सबे कटक मिलि गोरहि छेका। गूँजत सिंघ जाइ नही टेका।
जेहि दिसि उठै सोइ जनु खावा। पलटि सिंघ तेहि ठाँव न आवा।।²⁷

तुलसी ने राम रसायन के पुटपाक द्वारा मुमूर्षु हिन्दू देश के जर्जर शरीर में अपार बल और अदम्य शक्ति का संचार किया, जिसके कारण वह समय के विकट से विकट थपेड़ों को खाकर भी तनिक विचलित नहीं हुआ। आज का हिन्दू धर्म तुलसीदास कृत धर्म है और आज का हिन्दू देश तुलसी निर्मित देश है। तुलसीदास जी ने मानवतावाद पर बल दिया है। वे सारे जग को आदरणीय मानते थे। मानवीय दृष्टिकोण से ही उसे देखते थे। यथा-

सियाराममय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी।²⁸

तुलसी ने दर्शन, धर्म, संस्कृति, भक्ति आदि सभी क्षेत्रों में समन्वयवादी दृष्टिकोण का परिचय दिया है। तुलसी ने ज्ञान और भक्ति में कोई अन्तर नहीं माना है-

ज्ञानहिं भक्तिहिं नहिं कछु भेदा। उभय हरहि भव-सम्भव खेदा।²⁹

तुलसीदास जी के युग में धार्मिक क्षेत्र में शैवों और वैष्णवों का संघर्ष चल रहा था। इस संघर्ष को शान्त करने के लिए उन्होंने राम के मुख से कहलवाया-

शिव-द्रोही मम दास कहावा। सो नर सपनेहु मोहिं नहिं भावा।।³⁰

तुलसी जी की यह समन्वय-भावना उनके विचारों, भावों तथा सिद्धान्तों तक ही सीमित नहीं है। उनकी यह समन्वय-भावना भावपक्ष के साथ-साथ कलापक्ष में भी देखने को मिलती है। उनकी भाषा और शैली में भी यह प्रवृत्ति पाई जाती है। भाषा-सम्बन्धी उदारता का परिचय देते हुए तुलसीदास जी कहते हैं-

का-भाषा का संस्कृत, भाव चाहिए सांच।

काम जो आवे कामरी, का ले करै कमांच।।³¹

भक्तिकाल के प्रसिद्ध कवि रसखान ने इन पंक्तियों में 'गदर' और दिल्ली के शमशान बन जाने का समय सूरवंशीय पठान शासकों से अपना खोया हुआ शासनाधिकार पुनः हस्तगत किया था। रसखान कृत 'प्रेमवाटिका' की ये पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं-

देखि गदर हित साहिबी, दिल्ली नगर मसान।

छिनहिं बादसा बंस की, ठसक छाँड़ि रसखान।।³²

कवि पृथ्वीराज के हृदय में भगवान् कृष्ण और ब्रज भूमि के प्रति बड़ी आस्था थी। राजभक्ति, देशभक्ति और ईश्वर भक्ति तीनों इनमें विद्यमान थी। ये कृष्णभक्त तो थे ही अबकर के प्रति इनमें राजभक्ति थी और देशभक्ति के कारण ये महाराणा

प्रतापसिंह के प्रति अपार श्रद्धाभाव रखते थे। अकबर के दरबारी कवि होते हुए भी इन्होंने महाराणा प्रताप का यशोगान किया है। यथा-

अकबर समद अथाह, सूरपण भरियो सजल।

मेवाड़ो तिण मांह, पोयण फूल प्रतापसी ।।³³

भक्तिकालीन हिन्दी कवियों ने लिपि एवं भाषा के भेद को भी मिटाकर भावात्मक एकता स्थापित करने का प्रयास किया है। रहीम ने संस्कृत और हिन्दी भाषा को मिलाकर काव्य रचना की। “खेटकौतुकम्” नामक रचना में रहीम ने संस्कृत और फारसी भाषाओं का समन्वित प्रयोग किया है। उदाहरण द्रष्टव्य है-

खेट कौतुक जातकमू फ़ारसी पद मिलित ग्रन्थः

खल पण्डितैः कृताः पूर्वैः।³⁴

भारत की एकता और अखण्डता में महत्त्वपूर्ण योगदान देने वाले अनेक काव्यों की रचना भक्तिकाल में हुई। धर्म दर्शन, समाज, विचार, लिपि एवं भाषा सभी क्षेत्रों में भावात्मक एकता की स्थापना का सफल प्रयास भक्तिकालीन कवियों ने किया।

रीतिकालीन हिन्दी साहित्य में देशभक्ति

रीतिकाल का साहित्य हिन्दी-साहित्य में एक नवीन प्रकार का साहित्य है। भक्तिकाल में पारलौकिकता की प्रधानता रही। हिन्दी साहित्य के आदिकाल में अनेक साहित्यिक गतिविधियों का सम्मिश्रण दृष्टिगोचर होता है, जबकि रीतिकाल के साहित्य में परलोक तथा मोक्षादि की चिन्ता नहीं।

इस काल के साहित्य का अपना ही महत्त्व था। रीतिकाल के साहित्य तथा काव्य का स्पष्टीकरण डॉ० भगीरथ मिश्र के शब्दों में - “रीतिकाव्य की परम्परा ने शुद्ध काव्य के लिए एक नया मार्ग खोल दिया। इसके बिना प्रबन्ध काव्यों में या तो इतिहास ग्रन्थ थे और वे राजा महाराजाओं अथवा वीरों की अतिशय गुण गाथा से ओत-प्रोत थे अथवा वे धार्मिक एवं आध्यात्मिक ग्रन्थ थे जिनमें धर्मगाथा कही गयी ।”³⁵

रीतिकाल के प्रतिनिधि कवि बिहारी महाराज जयसिंह के दरबार में रहते थे। जयसिंह अपनी नवविवाहिता में अत्यन्त अनुरक्त थे। ऐसे समय में बिहारी ने ही उन्हें देश-भक्ति एवं सेवा की ओर प्रवृत्त किया-

“नहिं पराग नही मधुर नहिं विकास इहि काल।

अली कली ही सों बँध्यों, आगे कौन हवाल।।³⁶

इसके बाद ही बिहारी महाराज जयसिंह को राष्ट्र (देश) के विभिन्न कार्यों की उचित शिक्षा देते हैं-

“स्वारथु, सुकृत न, श्रम वृथा, देखि बिहंग विचारि।
बाज पराए पानि परि, तू पच्छीनु न मारि।।”³⁷

भूषण, सूदन, पद्माकर आदि कवियों ने बड़ी ओजस्विनी भाषा में वीर रसात्मक काव्य की सृष्टि की। इन वीर रस के कवियों में देशभक्ति के स्वर प्रधान हैं। कुछ लोग इन कवियों की देशभक्ति पर आपत्ति उठाया करते हैं। उनका कहना है कि इनमें जातीयता है। अस्तु इस सम्बन्ध में हमें कहना है कि प्रत्येक युग की देशभक्ति के मापदण्ड भिन्न-भिन्न हुआ करते हैं। किसी युग की देशभक्ति का निर्धारण करते समय उस युग की परिस्थितियों को भुला देना असंगत है।

डॉ० टीकम सिंह तोमर ने अपने शोध-प्रबन्ध “हिन्दी वीर काव्य” (1700-1900) में 90 वीर काव्यों की सूची प्रस्तुत की है। जिनका रचनाकाल रीतिकाल में पड़ता है। इन रचनाओं में वीर रस के सभी भेदों- युद्धवीर, दानवीर, दयावीर तथा धर्मवीर का सफलतापूर्वक अंकन किया गया है। ये वीर काव्य रीतिकालीन परम्परागत श्रृंगारिकता के प्रभाव से मुक्त हैं।

भूषण हिन्दी के सर्वप्रथम और सर्वश्रेष्ठ वीर रस के कवियों में एक हैं। वस्तुतः ये वीर रस के उत्थापक कवि हैं। उन्होंने शिवाजी और छत्रसाल की वीरता की अत्यन्त प्रशंसामयी उक्तियाँ लिखी हैं और उनमें चापलूसी की गंध तक नहीं है।

आचार्य शुक्ल इस सम्बन्ध में लिखते हैं- “भूषण ने जिन दो नायकों के कृत्यों को अपने वीर काव्य का विषय बनाया वे अन्याय-दमन में तत्पर हिन्दू धर्म के रक्षक दो इतिहास प्रसिद्ध वीर थे। उनके प्रति भक्ति और सम्मान की प्रतिष्ठा हिन्दू जनता के हृदय में उस समय भी थी और आगे भी बनी रही या बढ़ती गई। इसी से भूषण के वीर रस के उद्गार सारी जनता के हृदय की सम्पत्ति हुए। भूषण की कविता कीर्ति सम्बन्धी एक अविचल सत्य का दृष्टान्त है जिसकी स्थापना को जनता का हृदय स्वीकार करेगा और उस कवि की कीर्ति तब तक बनी रहेगी जब तक स्वीकृति बनी रहेगी।”³⁸

हिन्दी साहित्य में भूषण का महत्त्व वीर रस के कवि के नाते है, आचार्य के नाते नहीं। आचार्य क्रम तो एक परम्परा-निर्वाह मात्र था। भूषण के कवि का महत्त्व तत्कालीन परिस्थितियों के आलोक में देखने से और भी अधिक बढ़ जाता है। उनकी कविता का उदाहरण द्रष्टव्य है-

साहि के शिवाजी गाजी करयो दिल्ली माँहि,
चंड पाँडवनहू ते पुरुषारथ सु बढ़िकै ।³⁹

कवि भूषण की कविता में देशभक्ति देखने को मिलती है। कविता की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार है-

वेद राखे विदित पुराण राखे सारयुक्त।

तथा

हिन्दुअन की चोटि राखी रोटी राखी रहै सिपाहिन की,
राख्यो हिन्दुआनी, हिन्दुआन की तिलक राख्यो।।⁴⁰

भूषण की कविता में आये हुए वेद, पुराण, हिन्दू, तिलक और चोटी आदि शब्दों को देखकर उन्हें राष्ट्रीय कवि के सम्मान से वंचित नहीं किया जा सकता, ऐसा करना उनके साथ सरासर अन्याय होगा। भूषण के युग की देशभक्ति के सम्यक् ज्ञान के लिए हमें आधुनिक युग की देशभक्ति के चश्मों को उतार कर परे रखना होगा। भूषण के समय व्यक्ति विशेष के द्वारा अधिकृत एक भू-भाग राष्ट्र समझा जाता था और उसके प्रति प्रेम और स्वार्थ त्याग देशभक्ति समझी जाती थी। भूषण ने उस युग की देशभक्ति का कतव्य निभाया।

रीतिकालीन कवि मतिराम के काव्य में वीरभाव की भी अभिव्यक्ति हुई है। नृपवंश के वर्णन में कवि ने युद्धोत्साह तथा दानवीरता का वर्णन किया है। यथा-

बाजत नगारे जहाँ गाजत गयंद तहाँ
सिंह सम कीन्हौ वीर संगर बिहार है।
कहै मतिराम कवि लोगन कौ रीझि करि
दीने ते दुरद जे चुवत मदधार है।।⁴¹

कवि सूदन वीर रस के एक उत्कृष्ट कवि है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी इनके सम्बन्ध में लिखते हैं -“चन्द के पृथ्वीराज रासों में जिस प्रकार घोड़ों और अस्त्रों आदि की उपमा देनेवाली सूची मिलती है उसी प्रकार सूदन के सुजान-चरित में भी है। काव्य

रूढ़ियों का इसमें जमकर सहारा लिया गया है, यद्यपि कथानक में रूढ़ियों की वैसी भरमार नहीं जैसी कि रसों में है। शब्दों को तोड़-मरोड़कर युद्ध के अनुकूल ध्वनिप्रसु वातावरण उत्पन्न करने में सूदन बहुत दक्ष हैं पर उसमें भाषा के प्रति न्याय नहीं हो सका है।⁴²

मथुरा निवासी कवि सूदन की लेखनी से दिल्ली की लूट का प्रभावशाली चित्र अंकित हुआ है-

चिक्कारनु पारे धावत रारे, आरे जारे ले जारे।
लैके तरवारे देत धवारे, दिल्लीवारे बेजारे।⁴³

कवि भूपति जो कि अमेठी के राजा थे। क्षत्रियों की वीरता भी इनमें पूरी तरह समाहित थी। इनका उल्लेख कवींद्र ने इस प्रकार से किया है-

समर अमेठी के सरेष गुरूदन्तसिंह,
सादत की सेना समरसेन सों भानी है।⁴⁴

घनानन्द का वृन्दावन भूमि के प्रति प्रेम इस कविता में झलकता है-

गुरनि बतायो, राधा मोहन हूँ गायो सदा,
सुखद सुहायो वृन्दावन गाढ़े गहि रे।⁴⁵

इस प्रकार रीतिकालीन हिन्दी साहित्य में राष्ट्रीयता की भावना कूट-कूट कर भरी है।

आधुनिक कालीन हिन्दी साहित्य में देशभक्ति-

हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल का प्रारम्भ 19 वी. शताब्दी अर्थात् भारतेन्दु काल से माना जाता है। देशकाल की स्थिति का प्रभाव साहित्य और साहित्यकारों पर पड़ता है। भारतीय जनता के मन में देश-हित देश प्रेम के भाव जागृत हुए। देशभक्ति एवं राष्ट्रीय साहित्य की अविरल धारा आधुनिक साहित्य में प्राप्त होती है। राजा राममोहन राय, अरविन्द, विवेकानन्द आदि दार्शनिकों विचारकों एवं समाज सुधारकों ने राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक जागरण का उपस्थापन किया।

भारतेन्दु, प्रताप नारायण मिश्र, बदरी नारायण चौधारी प्रेमधन, अम्बिका दत्त व्यास, बालमुकुन्द गुप्त, श्रीधर पाठक आदि हिन्दी के श्रेष्ठ साहित्यकारों ने देशभक्ति की भावना पर आधारित साहित्य लिखे।

भारत में विक्टोरिया का शासन काल आया। अंग्रेज शासन की दृढ़ता का यही काल है। अंग्रेज शासन भारत को बुरी तरह लूट रहे थे, जिसकी प्रतिध्वनिता हम भारतेन्दु कालीन साहित्य में सुन सकते हैं-

“अंग्रेज राज सुख साज, सजे सब भारी।

पै धन विदेश चलि जात यहै अति ख्वारी।।”¹⁴⁶

अंग्रेजी राज्य को उलटने के लिए भीतर ही भीतर क्रांतिकारी संस्थाओं का निर्माण होने लगा। इन संस्थाओं में सक्रिय भाग लेने वालों में तिलक, हरदयाल, अरविन्द घोष, भगत सिंह, चन्द्रशेखर आज़ाद, सुखदेव, राम बिहारी बोस आदि थे।

भारतेन्दु जी के काव्य में देशभक्ति देश प्रेम दिखाई देता है। भारतेन्दु जी बार-बार भारतीय जनता से यही कहते हैं कि भारत-भूमि की सेवा करो-

“फूट बैर को दूर करि बाँध कमर मजबूत,

भारत-माता के बनो भ्राता पूत सपूत।।”¹⁴⁷

भारतेन्दु मण्डल के कवियों में बदरीनारायण चौधरी ‘प्रेमघन’ का नाम भी प्रमुख है। प्रेमघन ने अपने काव्य में देशप्रेम को अभिव्यक्त किया है। प्रेमघन ने अपने काव्य में देश की दुरवस्था के कारणों और देशोन्नति के उपायों का वर्णन किया है।

प्रेमघन की रचनाओं में जातीयता, समाज-दशा और देशप्रेम की अभिव्यक्ति हुई है। देश की दुरवस्था के कारणों और देशोन्नति के उपायों का जितना वर्णन उन्होंने किया है, उतना भारतेन्दु की कविताओं में भी नहीं मिलता। नयी से नयी घटना को वे कविता का विषय बना लेते थे। उदाहरणस्वरूप दादाभाई नौरोजी को जब विलायत में काला कहा गया, तब उन्होंने इस पर क्षोभपूर्ण प्रतिक्रिया व्यक्त की थी-

अचरज होत तुमहुं सम गोरे बाजत कारे,

तासों कारे ‘कारे’ शब्दहु पर है वारे।

कारे कृष्ण, राम, जलधर जल-बरसनवारे

कारे लागत ताही सों कारन कौ प्यारे।¹⁴⁸

अंग्रेजों द्वारा भारत का आर्थिक स्तर पर शोषण भी किया जा रहा था। इसीलिए प्रेमघन ने कहा-

पै दुख अतिभारी इक यह जो बढ़त दीनता।

भारत में सम्पत्ति की दिन-दिन होत छीनता।¹⁴⁹

भारतेन्दु मण्डल के कवियों में प्रतापनारायण मिश्र का प्रमुख स्थान है प्रतापनारायण मिश्र देश दशा का वर्णन अधिक मनोयोग से किया है-

पढ़ि कमाय कीन्हो कहा, हरे देश कलेस।
जैसे कन्ता घर रहे, तैसे रहे विदेश।।⁵⁰

भारतेन्दु युग के प्रसिद्ध साहित्यकार प्रताप नारायण मिश्र ने भावात्मक एकता पर बल देते हुए कहा-

प्रीति परस्पर राखहु मीत,
जइहैं सब दुख सहजहिं बीत।⁵¹

प्रताप नारायण मिश्र ने भारतीय जनता को जगाने का प्रयत्न किया है। मिश्र जी ने देश की दुर्दशा का वर्णन किया है। बालकृष्ण भट्ट ने भी सामाजिक समस्याओं पर जम कर लिखा है। बालकृष्ण भट्ट के निबन्धों में बाल-विवाह, स्त्रियाँ और उनकी शिक्षा, राजा और प्रजा, देशसेवा महत्त्व आदि निबन्ध सामाजिक समस्याओं पर आधारित हैं।

हिन्दी का प्रथम उपन्यास 'परीक्षा गुरू' लाला श्री निवासदास ने लिखा। परीक्षागुरू उपन्यास देशभक्ति की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। भारत देश की उन्नति के उपाय करते हुए सन् 1882 में प्रकाशित इस उपन्यास में लेखक ने लिखा है-

“हिन्दुस्तान में अब तक कलों के कारखाने नहीं हैं। इससे हिन्दुस्तानियों को बड़ा नुकसान उठाना पड़ता है। मैं जानता हूँ कि इस समय हिम्मत करके जो कलों के कारखाने पहले जारी करेगा, उसको जरूर फायदा रहेगा।”⁵²

बालमुकुन्द गुप्त देशभक्त थे। श्री गुप्त ने स्फुट कविता में राम-विनय करते हुए लिखा कि हमारा वर्तमान अत्यन्त अंधकारपूर्ण है। देश का सभी वैभव धीरे-धीरे समाप्त हो रहा है। खेद की बात है कि ऐसे गम्भीर वातावरण में भी हम आपस में लड़ते हैं-

तौहू आपस में लड़ै निसदिन स्वान समान।
अहो। कौन गति होयगी आगे राम सुजान ⁵³

राधाचरण गोस्वामी ने अमरसिंह राठौर, सती चंद्रावली नाटक, राधाकृष्णदास ने 'महाराणाप्रताप' एवं 'असहाय हिन्दू' उपन्यास तथा जगमोहन सिंह ने श्याम स्वप्न द्वारा

राष्ट्रीयता की भावना को जागृत किया। बालकृष्ण भट्ट रायदेवी प्रसाद, श्रीधर पाठक आदि लेखकों एवं कलाकारों की रचनाओं में राष्ट्रीयता का पूर्ण प्रभाव दिखाई देता है। श्रीधर पाठक के वंदना गीतों में भारत-भूमि के प्रति असीम प्रेम एवं भक्ति की भावना कूट-कूट कर भरी है-

जय-जय भारत हैं।

जय भारत, जय भारत जय जय भारत हे।⁵⁴

द्विवेदी युगीन हिन्दी साहित्य में देशभक्ति-

द्विवेदी युगीन कविता में भारतेन्दु कालीन कविता की अपेक्षा देशभक्ति के स्वर और अधिक उभर आया। इस युग की देशभक्ति की संकीर्णता एवं साम्प्रदायिकता के सम्बन्ध में डॉ० शिवदान सिंह चौहान लिखते हैं-

“आश्चर्य की बात तो यह है कि उन्नीसवीं शताब्दी में ही नहीं बीसवीं शताब्दी के पहले दो दशकों तक अर्थात् छायावादी काव्यधारा के फूटने से पहले तक के हिन्दी कवि (महावीर प्रसाद द्विवेदी, मैथिलीशरण गुप्त और अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध) इस संकीर्ण घेरे का अतिक्रमण करने का साहस नहीं कर पाए। जातिगत, सम्प्रदायगत और भाषागत स्वार्थों से ऊपर उठकर वे अपनी वाणी में राष्ट्रीय एकता का वह उदात्त स्वर नहीं फूँक पाए जो रवीन्द्रनाथ ठाकुर और इक़बाल (पाकिस्तान की माँग से पहले के इक़बाल) के कंठ से निकलकर सारे देश में नया स्पन्दन भर दिया था।”⁵⁵

द्विवेदी युग में भारत स्वतंत्र नहीं था। स्वतन्त्रता आन्दोलनों की इस युग पर स्पष्ट छाप थी। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने ‘भारत-भारती’ कविता के मंगलाचरण में कहा-

मानस-भवन में आर्य्यजन जिसकी उतारें आरती
भगवान ! भारतवर्ष में गूजे हमारी भारती।
हो भद्रभावोद्भाविनी वह भारती हे भगवते।
सीतापते! सीतापते!! गीतामते! गीतामते।⁵⁶

द्विवेदी युग में सभी कवियों ने देशभक्तिपूर्ण कविताओं का प्रणयन किया। उन्होंने पराधीनता को सबसे बड़ा अभिशाप बताया। गुप्त जी ने अतीत की तुलना में वर्तमान काल की दुर्दशा की ओर संकेत करते हुए कहा-

हम कौन थे क्या हो गए हैं और क्या होंगे अभी।
आओ विचारे आज मिलकर ये समस्याएँ सभी।⁵⁷

मैथिलीशरण गुप्त ने 'भारत-भारती' में देश-प्रेम का भारतीय जनता के हृदय में संचार किया है, गुप्त जी ने 'भारत-भारती' में भारतवर्ष की श्रेष्ठता का गान किया तथा उसे भू-लोक का गौरव बताया है-

भू-लोक का गौरव, प्रकृति का पुण्य लीला-स्थल कहाँ ?
 फैला मनोहर गिरि हिमालय और गंगाजल जहाँ।
 सम्पूर्ण देशों से अधिक किस देश का उत्कर्ष है ?
 उसका कि जो ऋषिभूमि है, वह कौन ? भारतवर्ष है।⁵⁸

रामनरेश त्रिपाठी ने भी भारतीय-जनता को देशभक्ति का संदेश दिया है। द्विवेदी युगीन कवियों ने बड़ी श्रद्धा और भक्ति से अतीत के गौरव का गान किया है। रामनरेश त्रिपाठी ने अपने काव्यों द्वारा देशभक्ति आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया। भारतेन्दु काल से देश-प्रेमाभिव्यक्ति की जो परम्परा चली थी, त्रिपाठी जी ने उसे रसात्मक रूप दिया।

ठाकुर गोपाल शरण सिंह ने देश की हीन-दशा पर काव्य लिखा है। उनके काव्य की पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं-

वह धीरता कहाँ है गम्भीरता कहाँ है ?
 वह वीरता हमारी है वह कहाँ बड़ाई ?
 क्या हो गयी कलाएँ कौशल सभी हमारे ?
 किसने शताब्दियों की ली छीन सब कमाई? ⁵⁹

रायदेवी प्रसाद 'पूर्ण' ने अपने काव्य में भारतवर्ष में व्याप्त आलस्य, फूट, खुदगर्जी, कुलीनता आदि अभिशापों का वर्णन किया है-

भरतखण्ड का हाल जरा देखो है कैसा।
 आलस का जंजाल जरा देखो है कैसा।।
 जरा फूट की दशा खोलकर आँखे देखो।
 खुदगर्जी का नशा खोलकर आँखे देखो।।⁶⁰

रायदेवी प्रसाद पूर्ण ने स्वदेश-प्रेम विषयक कविताएँ लिखी हैं। इनकी कविताओं में देशभक्ति प्रतिध्वनित होती रही है। इनकी कविताएँ देशभक्ति और राजभक्ति से सम्बन्धित हैं। आलोच्य काल के कवियों ने दीनहीन कृषक तथा विधवा के दुखों की ओर संकेत किया है।

हरिऔध ने राधा के माध्यम से राष्ट्रीय जीवन की एक केन्द्रीय समस्या का उद्घाटन किया है। राधा अपने व्यक्तिगत स्वार्थों से ऊपर उठकर देश के लिए अपना सब कुछ उत्सर्ग करने वाली नारी है जो कि उस समय के देशभक्ति आन्दोलन में नारी को एकजुट करने की प्रेरणा है। राधा की निम्न उक्ति इस प्रकार है-

यह हृदय हमारा ब्रज से ही बना है।

यह तुरत नहीं जो सैकड़ों खण्ड होता है ।।⁶¹

द्विवेदी युग के प्रत्येक कवि ने देशभक्ति के सम्बन्ध में कुछ न कुछ अवश्य लिखा। इस युग की कविता में देशभक्ति की भावना की अभिव्यक्ति छोटी-छोटी कविताओं और प्रबन्ध काव्य दोनों रूपों में हुई। मैथिलीशरण गुप्त जी का साकेत, उपाध्याय जी का प्रिय-प्रवास, रामचरित उपाध्याय का रामचरित चिन्तामणि और सत्यानारायण कविरत्न का भ्रमरदूत जहाँ हिन्दी भाषा के गौरव ग्रन्थ है, वही देशभक्ति और अतीत की ज्वलंत विभूतियों के भी भव्य निदर्शन है।

डॉ० शिवदान सिंह चौहान इस काल की देशभक्ति सम्बन्धी कविता के सम्बन्ध में लिखते हैं - “उनकी दृष्टि मूलतः बहिर्मुखी है इसीलिए राष्ट्र जीवन की अगम गहराइयों में नहीं उतर पाई है। विशेषकर लोक प्रचलित पौराणिक आख्यानों, इतिहास वृत्तों और देश की राजनीतिक घटनाओं में इन्होंने अपने काव्य की विषयवस्तु को सजाया है। इन आख्यानों, वृत्तों और घटनाओं के चयन में उपेक्षितों के प्रति सहानुभूति, देशानुराग और सत्ता के प्रति विद्रोह का स्वर मुखर है। यह एक प्रकार से राजनीति में राष्ट्रीय आन्दोलन और काव्य में स्वच्छन्दतावाद की प्रवृत्ति के बीच चलने और बहने वाली कविता की बहुमुखी धारा है। जिसमें हिन्दी भाषी जनता को आधुनिक जीवन के व्यक्ति एवं समाज-सम्बन्धी गहरे तात्त्विक प्रश्नों के प्रति नहीं तो राजनीतिक पराधीनता और राष्ट्रीय संघर्ष के प्रति सचेत बनाने में बहुत बड़ा काम किया है।”⁶²

कवि श्रीधर पाठक ने देशभक्तिपूर्ण अनेक कविताएँ लिखी हैं। समाजसुधार के वे बड़े आकांक्षी थे। विधवाओं की वेदना, शिक्षाप्रचार आदि भी उनके काव्य के विषय बने। यथा-

इस भारत में बन पावन तू ही तपस्वियों का तप आश्रय था
जगतत्त्व की खोज में लग्न जहाँ ऋषियों ने अभग्न किया श्रम था ॥⁶³

श्रीधर पाठक ने देश की दयनीय अवस्था का चित्रण किया, तथा देशोद्धार करने के लिए भगवान से प्रार्थना करते हैं-

तुम अम्बुध जगजीवन, जीवन नाम तुम्हार ।
चाहत तुव पय पीवन, जीव नवीन उदार ॥⁶⁴

वियोगी हरि ने वर्तमान आवश्यकताओं के अनुकूल वीर रस सम्बन्धी 700 दोहे लिखकर बीर सतसई का निर्माण किया है, इस प्रकार ब्रजभाषा भी राष्ट्रीय भावों से वंचित न रही-

पावस ही में धनुष अब, सरित तीर ही तीर।
रोदन ही में लाल दृग, नौ रस ही में वीर ॥⁶⁵

सैयद अमीर अली मीर ने युवकों का आह्वान किया कि वे राष्ट्रीय एकता के लिए क्रियाशील हों-

उठो युवकगण उठो भेद का भंडा फोड़ो,
आड़े आये अगर रूढ़ि के बंधन तोड़ो।⁶⁶

बालमुकुन्द गुप्त देश की दयनीय अवस्था के माध्यम से वीरत्व को उभाड़ने का प्रयत्न किया है। उन्होंने देश की तथा देशवासियों की पतित अवस्था का चित्रण किया है-

तो हू आपस में लड़ै, निस दिन स्वान समान।
अहो । कौन गति छेयगी, आगे राम सुजान ॥⁶⁷

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त, बालमुकुन्द गुप्त, श्रीधर पाठक, अयोध्या सिंह उपाध्याय, वियोगी हरि आदि द्वारा लिखित साहित्य से हिन्दी साहित्य में देशभक्ति की भावना अत्यन्त सुदृढ़ हुई।

छायावाद एवं छायावादोत्तर कालीन हिन्दी साहित्य में देशभक्ति-

छायावाद युग में देशभक्ति की तथा प्रकृति प्रेम की कविताएँ लिखी गयीं। बालकृष्ण शर्मा नवीन ने अपनी कविताओं में देशभक्ति का महान संदेश दिया है। उनकी

कविताएँ राष्ट्रीय सांस्कृतिक कविताएँ होती हैं। इनकी कविताओं पर देशभक्ति आन्दोलनों, सामाजिक घात-प्रतिघात दिखाई देते हैं। बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ने देश के युवकों को स्वतंत्रता की बलिवेदी पर मर मिटने के लिए प्रेरित किया है-

हैं बलिवेदी, सखे प्रज्वलित मांग रही ईंधन क्षण-क्षण,
आओ युवक, लगा दो तो तुम अपने यौवन का ईंधन ।।⁶⁸

छायावादी कवियों में अत्यन्त सजग व्यक्तित्व सम्पन्न कलाकार कवि दिनकर की कविता पर देशभक्ति की छाप सबसे अधिक है। कवि दिनकर ने आज के मानव को शांति की ओर प्रेरित करके उसे आशावादिता का संदेश दिया है-

हार से मनुष्य की न महिमा घटेगी और
तेज न बढ़ेगा किसी मानव की जीत से ।।⁶⁹

छायावाद युग में देशभक्ति सांस्कृतिक और प्रकृति-प्रेम से उद्धेलित हो उठी। जय शंकर प्रसाद ने अपनी कविताओं और नाटकों द्वारा देशभक्ति का महान् संदेश दिया। स्वतंत्रता आन्दोलन को अधिक व्यापक बनाने के लिए प्रसाद जी ने चन्द्रगुप्त 'नाटक' की रचना की। प्रसाद जी कट्टर देशप्रेमी थे। चन्द्रगुप्त नाटक में कार्नेलिया द्वारा गाया गया गीत द्रष्टव्य है-

अरुण यह मधुमय देश हमारा,
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।⁷⁰

जयशंकर प्रसाद जी ने स्वतंत्रता संग्राम में सहयोग देने के लिए भारतीय जनता का आह्वान किया। अलका द्वारा 'चन्द्रगुप्त' नाटक में गाया गया गीत उद्धृत है-

हिमाद्रि तुंग शृंग से
प्रबुद्ध शुद्ध भारती-
स्वयं प्रथा समुज्ज्वला
स्वतंत्रता पुकारती-
अमर्त्य वीर पुत्र हो, दृढ़-प्रतिज्ञ सोच लो,
प्रशस्त पुण्य पंथ है-बढ़े चलो, बढ़े चलो।⁷¹

निराला जी ने जागरण गीत के रूप में भारतीय जनता का आह्वान करते हुए कहा-

क्या यह वही देश है-
भीमार्जुन आदि का कीर्ति क्षेत्र
चिरकुमार भीष्म की पताका ब्रह्मचर्य-दीप्त
उड़ती है आज भी जहाँ के वायुमण्डल में
उज्ज्वल अधीर और चिरनवीन ? ⁷²

प्रगतिवादी कवि भी देश के प्रति सजग है। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के दारूण निधन पर प्रगतिवादी कवि की आकुल अन्तरात्मा फूट निकली-

बापू मेरे-
अनाथ हो गई भारत-माता
अब क्या होगा।⁷³

श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान ने भारतीय युवकों तथा स्त्रियों की वीरता का वर्णन किया है। सुभद्राकुमारी चौहान ने असहयोग और बलिदान की प्रेरणा देते हुए कहा है-

विजयिनी माँ के वीर सुपुत्र पाप से असहयोग ले ठान।
गुंजा डालें स्वराज्य की तान और सब हो जावें बलिदान ।।⁷⁴

आलोच्य युग में लिखित नाटक, उपन्यास, कहानी, निबन्ध, एकांकी, पत्रिकाएँ तथा अन्य सभी साहित्यिक विधाएँ देशभक्ति की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं।

पंडित जवाहर लाल नेहरू ने देशभक्ति का तराना 'छोड़ो कल की बातें' लिखा है-

छोड़ो कल की बातें कल की बात पुरानी,
नये दौर में लिखेंगे, मिलकर नई कहानी,
हम हिन्दुस्तानी, हम हिन्दुस्तानी।⁷⁵

शहीद सुखदेव देश की आज़ादी के लिए शहीद हुए। देश की आज़ादी के लिए सुखदेव ने बहुत बड़ा योगदान दिया। उनका तराना इस प्रकार है-

सिकन्दर भी आए, कलंदर भी आए,
न कोई रहा है न कोई रहेगा,
है तेरे जाने की बारी विदेशी,
यो देश आज़ाद होके रहेगा,
न कोई रहा है, न कोई रहेगा।⁷⁶

सोहन लाल द्विवेदी जी स्वदेशी वस्तुओं के प्रचार में भी सक्रिय रहे 'खादीगीत' में खादी की महिमा गाते हुए उन्होंने लिखा-

खादी के धागे-धागे में, अपनेपन का अभिमान भरा।
भारत का इसमें मान भरा, अन्यायी का अपमान भरा।⁷⁷

छायावाद के बाद इस दिशा में गिरजाकुमार माथुर, डॉ० धर्मवीर भारती, शमशेर बहादुर सिंह, प्रभाकर माचवे के गीत मिलते हैं, जो प्रेरणा स्वरों को और तेज कर देते हैं। 'धूप के धान' में माथुर साहब ने लिखा है-

आज जीत की रात
पहरूए सावधान रहना,
खुले देश के द्वार
अचल दीपक समान रहना।⁷⁸

प्रभाकर माचवे ने भी देशभक्तिपूर्ण सुन्दर गीत गाये हैं। वह धरती के माँ रूप की उद्भावना का पोषण निर्माण के स्वर में करते हैं-

धरती पूजन में श्रम की चन्दन, अक्षत रोली
धरती के अर्चन में श्रम पुष्प आरती-थाली।⁷⁹

नागार्जुन राष्ट्रीयता के नाम पर मानव-मानव में सौहार्द जाग्रत करना चाहते थे। उनकी राष्ट्रीयता की पुकार मानवता की पुकार है-

हिम किरीटनी
जलधि पजनी
बने स्वर्ग यह भूमि हमारी।⁸⁰

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने हिन्दी भाषा एवं साहित्य में राष्ट्रीय भावना के महत्त्व को उजागर करते हुए सत्य की कहा है-

हिन्दी का उद्देश्य यही है,
भारत एक रहे अविभाज्य।
यों तो रूस और अमरीका
जितना है उसका जनराज्य।⁸¹

कवियों और साहित्यकारों ने देश-प्रेम की भावना भारत के नागरिकों में जगाई। इन कवियों ने अपनी देशभक्ति पूर्ण कविताओं के माध्यम से भारत के प्रत्येक नागरिक में देशप्रेम की भावना जाग्रत की। इस दृष्टि से देश को आज़ाद कराने में कवियों और साहित्यकारों की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है।

पं० श्रीधर पाठक ने स्वतंत्रता सेनानियों तथा भारत के प्रत्येक नागरिक के मन में भारत के प्रति श्रद्धा की प्रेरणा दी, उन्होंने मातृभाषा की उन्नति के लिए कामना की है-

निज भाषा बोलहु लिखहु पढ़हु गुनहु सब लोग।
करहु सकल विषयन विषै निज भाषा उपजोग ।।⁸²

पं० गया प्रसाद शुक्ल 'स्नेही' ने देशभक्ति की अनेक कविताएँ लिखी है-

असहयोग कर दो
असहयोग कर दो
कठिन है परीक्षा न रहने कसर दो
न अन्याय के आगे तुम झुकने सर दो
गँवाओ न गौरव नये भाव भर दो।
हुई जाति बेपर है, तुम उसको पर दो।।⁸³

पं० माखन लाल चतुर्वेदी ने अपनी कविताओं में देश प्रेम की भावना जाग्रत की है। 'एक फूल की चाह' शीर्षक कविता की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं-

मुझे तोड़ लेना बनमाली उस पथ पर देना तुम फेंक।
मातृभूमि हित शीश चढ़ाने जिस पथ जावें वीर अनेक।⁸⁴

चतुर्वेदी जी की प्रसिद्ध राष्ट्रीय कविता 'कैदी और कोकिला' है। जिसमें कोकिला को सम्बोधित करते हुए उनकी करुणा का दृश्य देखिए-

क्या ?- देख न सकती जंजीरों का गहना?
हथकड़ियाँ क्यों ? यह ब्रिटिश राज का गहना ।⁸⁵

पं० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ने स्वयं स्वतंत्रता आन्दोलन में भाग लिया है। देश को आज़ाद कराने में उन्होंने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। उनकी पंक्तियाँ इस प्रकार हैं-

कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ,
जिससे उथल-पुथल मच जाये।
प्राणों के लाले पड़ जाये।
एक हिलोर इधर से आये।
एक हिलोर उधर से आये।
नाश और सत्यानाशों का
धुआँधार जग में छा जाये।।⁸⁶

हिन्दी के अनेक कवियों ने राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त, पं० माखन लाल चतुर्वेदी, पं० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान, पं० रामनरेश त्रिपाठी तथा राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर, राष्ट्रकवि सोहन लाल द्विवेदी ने अपनी कविताओं के माध्यम से देशप्रेम की भावना जगाई।

अपने देश को आज़ाद कराने में नौजवानों का आन्दोलन उल्लेखनीय है। द्विवेदी जी ने मातृभूमि के प्रेम पर बल दिया है। कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं-

हम मातृभूमि के सैनिक हैं,
आज़ादी के मतवाले हैं,
बलिवेदी पर हँस-हँस करके,
निज शीश चढ़ाने वाले हैं।
हम मातृभूमि के सैनिक हैं,
आज़ादी के मतवाले हैं।⁸⁷

देश को आज़ाद कराने में देश की जनता के मन में भारत के प्रति अति गौरव, श्रद्धा और महिमा का गान द्विवेदी जी ने अपनी कविताओं में किया है। 'युगाधार' में संकलित 'भारतवर्ष' कविता की कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं-

वह महिमामय अपना भारत,
वह गरिमामय सुन्दर स्वदेश।
युग-युग से जिसका उन्नत सिर
है किये खड़ा हिमगिरि नरेश।⁸⁸

श्री रामनरेश त्रिपाठी ने 'मिलन' 'पथिक' और 'स्वप्न' तीन खण्ड काव्यों की रचना की है। 'स्वप्न' में देश-प्रेम और त्याग के उच्च आदर्श हैं, और आशावाद का एक अपूर्व सन्देश है-

विध्न समस्त करे पद पद पर, मेरे आत्म तेज को जाग्रत।
निष्फलता मुझको अधिकाधिक, करे सचेष्ट सतर्क दृढ़ व्रत ॥⁸⁹

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने 'भारत-भारती के माध्यम से देश की वर्तमान दशा से अतीत के गौरव की तुलना करके जनमानस को आन्दोलित करने का काम किया। भारत-भारती के अतीत, वर्तमान और भविष्यत् खण्डों में देश की दशा का यथातथ्य

चित्रण है। इसमें अपने देश की श्रेष्ठता का प्रतिपादन, पूर्वजों का गौरव-गान तथा प्राचीन की उदात्त वीरता का वर्णन बड़ी श्रद्धा, निष्ठा और तन्मयता से किया गया है। वर्तमान की स्थिति का यथातथ्य चित्रण इस ग्रन्थ में इस प्रकार किया गया है-

भारते, कहो तो आज तुम क्या हो वही भारत अहो।
हे पुण्यभूमि! कहाँ गयी है वह तुम्हारी श्री कहो ?
अब कमल क्या, जल तक नहीं, सर-मध्य केवल पंक हैं,
यह राज राज कुबेर अब हा! रंक का भी रंक है।⁹⁰

गुप्त जी की देशभक्ति के मूल में मातृभूमि के प्रति अनुराग तथा वहाँ के निवासियों के दुःखनाश का उत्साह है। गुप्त जी की प्रसिद्धि का मुख्य कारण ही उनकी देशभक्ति है।

1. मन्मथनाथ गुप्त-राष्ट्रीय आन्दोलन का इतिहास -पृ0 67,
2. वही, पृ0 - 72
3. वही, पृ0 - 78
4. वही, पृ0 - 129
5. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल -हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ0 - 13,
6. डॉ0 शिवकुमार शर्मा - हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ, पृ0 - 57
7. डॉ0 ओम प्रकाश - प्राचीन हिन्दी काव्य, पृ0 - 28
8. डॉ0 शिवकुमार शर्मा - हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ, पृ0 - 82
9. डॉ0 ओम प्रकाश -प्राचीन हिन्दी काव्य, पृ0 - 22
10. वासुदेवशरण अग्रवाल (सं0) कीर्तिलता, 2,9
11. डॉ0 आरिफ़ नजीर - राष्ट्रीयता और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र पृ0- 28
12. डॉ0 मलिक मोहम्मद (सम्पा0) अमीर खुसरो - भावात्मक एकता के अग्रदूत, -
पृ0 101
13. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल -हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ0 - 74,
14. वही पृ0 - 105
15. डॉ0 आरिफ़ नजीर - राष्ट्रीयता और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र पृ0- 29
16. डॉ0 रवेलचंद आनन्द/डॉ0 सुषमा रानी गुप्ता - प्राचीन प्रतिनिधि कवि, पृ0-34
17. वही पृ0 - 34
18. वही, पृ0 - 44
19. डॉ0 शिवकुमार शर्मा - हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ, पृ0 - 146
20. डॉ0 रवेलचंद आनन्द/डॉ0 सुषमा रानी गुप्ता - प्राचीन प्रतिनिधि कवि, पृ0-23
21. वही, पृ0 - 23
22. कबीर - हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ0 129

23. डॉ० शिवकुमार शर्मा - हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ, पृ० - 158
24. डॉ० द्वारिका प्रसाद सक्सेना - हिन्दी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि, पृ० 123
25. डॉ० शिवकुमार शर्मा - हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ, पृ० - 180
26. डॉ० रवेलचंद आनन्द/डॉ० सुषमा रानी गुप्ता - प्राचीन प्रतिनिधि कवि, पृ०-50
27. वही, पृ० - 57
28. विनय-पत्रिका-गोस्वामी तुलसीदास - डॉ० राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी, पृ० - 28
29. डॉ० रवेलचंद आनन्द/डॉ० सुषमा रानी गुप्ता - प्राचीन प्रतिनिधि कवि, पृ०-69
30. वही, पृ० - 69
31. वही, पृ० - 70
32. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल -हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० - 105,
33. डॉ० नगेन्द्र - हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० - 245
34. डॉ० आरिफ़ नजीर - राष्ट्रीयता और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र पृ०- 35
35. डॉ० शिवकुमार शर्मा - हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ, पृ० - 313
36. वही, पृ० - 385
37. डॉ० आरिफ़ नजीर - राष्ट्रीयता और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र पृ०- 40
38. डॉ० शिवकुमार शर्मा - हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ, पृ० - 376
39. डॉ० द्वारिका प्रसाद सक्सेना - हिन्दी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि, पृ० 326
40. डॉ० शिवकुमार शर्मा - हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ, पृ० - 377
41. डॉ० रवेलचंद आनन्द/डॉ० सुषमा रानी गुप्ता - प्राचीन प्रतिनिधि कवि, पृ०-174
42. डॉ० शिवकुमार शर्मा - हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ, पृ० - 426
43. डॉ० ओम प्रकाश -प्राचीन हिन्दी काव्य, पृ० - 26
44. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल -हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० - 155,
45. वही, पृ० - 185

46. डॉ० शिवकुमार शर्मा - हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ, पृ० - 474
47. डॉ० आरिफ़ नजीर - राष्ट्रीयता और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र पृ०- 45
48. डॉ० नगेन्द्र - हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० - 463
49. डॉ० आरिफ़ नजीर - राष्ट्रीयता और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र पृ०- 42
50. डॉ० नगेन्द्र - हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० - 464
51. डॉ० आरिफ़ नजीर - राष्ट्रीयता और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र पृ०- 43
52. श्री निवासदास - परीक्षागुरु, पृ० - 26
53. डॉ० आरिफ़ नजीर - राष्ट्रीयता और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र पृ०- 44
54. वही, पृ० - 46
55. डॉ० शिवकुमार शर्मा - हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ, पृ० - 463
56. भारत-भारती - मैथिलीशरण गुप्त, पृ० - 11
57. वही, पृ० - 14
58. वही, पृ० - 14
59. डॉ० नगेन्द्र - हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० - 490
60. वही, पृ० - 490
61. डॉ० सुरेन्द्र माथुर -आधुनिक हिन्दी साहित्य विश्लेषण और प्रकर्ष, पृ० -81
62. डॉ० शिवकुमार शर्मा - हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ, पृ० - 463-464
63. आचार्य रामचंद्र शुक्ल - हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० - 329
64. डॉ० रमेशकुमार शर्मा - रीतिकाल और आधुनिक हिन्दी कविता, पृ० - 124
65. बाबू गुलाबराय - हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, पृ० - 173
66. डॉ० आरिफ़ नजीर - राष्ट्रीयता और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र पृ०- 50
67. डॉ० रमेशकुमार शर्मा - रीतिकाल और आधुनिक हिन्दी कविता, पृ० - 124
68. डॉ० नगेन्द्र - हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० - 536

69. डॉ० शिवकुमार शर्मा - हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ, पृ० - 520
70. चन्द्रगुप्त (नाटक) द्वितीय अंक - डॉ० जयशंकर प्रसाद, पृ० - 72,
71. वही, चतुर्थ अंक, पृ० - 137
72. डॉ० नगेन्द्र - हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० - 535
73. डॉ० शिवकुमार शर्मा - हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ पृ० - 531
74. डॉ० नगेन्द्र - हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० - 536
75. विवेक निशु - भक्ति के तराने, पृ० -9
76. वही, पृ० - 24
77. सोहनलाल द्विवेदी (ग्रन्थावली) - सम्पा० राकेश गुप्त पृ० - 5
78. डॉ० सुरेन्द्र माथुर - आधुनिक हिन्दी साहित्य विश्लेषण और प्रकर्ष, पृ० - 38
79. वही, पृ० - 39
80. वही, पृ० - 33
81. डॉ० आरिफ़ नजीर - राष्ट्रीयता और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र पृ०- 63
82. डॉ० नगेन्द्र - हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० - 496
83. अतएव (पत्रिका) सम्पा० - विनोद चन्द्र पाण्डेय, अगस्त 1992 पृ० - 23
84. वही, पृ० - 24
85. डॉ० सुरेन्द्र माथुर - आधुनिक हिन्दी साहित्य विश्लेषण और प्रकर्ष, पृ० -82
86. अतएव (पत्रिका) - सम्पा० विनोद चन्द्र पाण्डेय, अगस्त - 1992 पृ० 25
87. वही, अगस्त-सितम्बर 1994, पृ० - 185,
88. वही, पृ० - 187
89. बाबू गुलाबराय - हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, पृ० 184
90. भारत-भारती (वर्तमान खण्ड) - मैथिलीशरण गुप्त, पृ० - 95

अध्याय तृतीय

मैथिलीशरण गुप्त का जीवन-परिचय (व्यक्तित्व एवं कृतित्व)

- ▶ मैथिलीशरण गुप्त - जन्म एवं माता-पिता
- ▶ भाई-बहन, विवाह एवं संतान
- ▶ मैथिलीशरण गुप्त विवाह और संतति
- ▶ शिक्षा
- ▶ गुप्त जी के सहयोगी और मित्रगण
- ▶ गुप्त जी की पत्रकारिता
- ▶ गुप्त जी के पत्र
- ▶ आदर - सम्मान
- ▶ कष्ट, यातनाएँ और निधन
- ▶ व्यक्तित्व
- ▶ कृतित्व
- ▶ देशभक्ति परक कविता
- ▶ भक्तिभावना प्रधान कविता
- ▶ प्रकृति विषयक कविताएँ

मैथिलीशरण गुप्त - व्यक्तित्व एवं कृतित्व

आधुनिक भारत वाङ्मय में मैथिलीशरण गुप्त का उद्भव एक महान पर्व के समान है। वह राष्ट्रभाषा हिन्दी के साधक थे। अतिशय विनम्र, सरल व हँसमुख प्रकृति के गुप्तजी आचार विचार, वेश-भूषा आदि से पक्के भारतीय थे। उनकी कविता में भारतीयता की छाप है।¹

बीसवीं शताब्दी के कवियों में श्री मैथिलीशरण गुप्त का स्थान सबसे ऊँचा है। पिछले पचास वर्ष के साधना कला में उन्होंने हिन्दी- जगत को चालीस काव्य- ग्रंथ दिये हैं। कविता के क्षेत्र में उनकी प्रतिभा निरन्तर नवीन रंगों के नव सुमन खिलाती रही है।

राष्ट्रकवि के रूप में उन्हें जो सम्मान मिला, जो प्रतिष्ठा प्राप्त हुई, वह शायद ही हिन्दी के किसी कवि को उसके जीवनकाल में मिली हो। राष्ट्रीय चेतना को जागृत करने, जन-भावनाओं को अभिव्यक्ति प्रदान करने एवं देशभक्ति तथा देश-प्रेम की भावना को बढ़ाने के लिए श्री मैथिलीशरण गुप्त ने भारत की जनता को पुकार-पुकार कर स्वदेश के उन्नत, समृद्ध एवं गौरवशाली अतीत के विषय में बताते हुए, भविष्य के लिए देश-सेवा एवं उसकी हित-रक्षा हेतु दिशा-निर्देश दिया। ऐसा नहीं है कि उनके पूर्व राष्ट्रीय रचनाएँ नहीं हुई - “ आधुनिक काल में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी ने हिन्दी साहित्य को राष्ट्रीय दृष्टि दी थी। परन्तु ‘भारत-जननी’ और ‘भारत-दुर्दशा’ में लिखी गयी उनकी राष्ट्रीय रचनाएँ ब्रजभाषा में होने के कारण कुछ पढ़े-लिखे लोगों तक ही सीमित रही। एक वर्ग-विशेष ही उन रचनाओं से प्रभावित हो सका। इसके विपरीत मैथिलीशरण गुप्त ने अपनी रचनाओं को बोलचाल की भाषा में राष्ट्रीयता का रंग भरकर उसे समस्त हिन्दी-भाषी क्षेत्र तक व्यापक बना दिया।”²

सन् 1912 ‘भारत-भारती’ के प्रकाशन काल से लेकर अब तक जो अटूट ख्याति मैथिलीशरण गुप्त जी को मिली, वह अन्य किसी कवि को नहीं। भारतवर्ष में वे ‘राष्ट्रकवि’ के नाम से विख्यात हैं। हिन्दी को इस बात का गर्व रहेगा कि उसने मैथिलीशरण जैसे महान और उत्कृष्ट साहित्यकार को उत्पन्न किया। प्रस्तुत अध्याय में मैथिलीशरण गुप्त जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डालने का प्रयास किया जा रहा है।

मैथिलीशरण गुप्त-जन्म एवं माता-पिता-

श्री मैथिलीशरण गुप्त का जन्म 3 अगस्त, सन् 1886 को चिरगाँव जिला झाँसी में हुआ। उनके पिता रामचरण जी बड़े उदार वैष्णव भक्त, कविता-प्रेमी सज्जन थे और माता काशीबाई धर्म-परायणता सती-साध्वी स्त्री थी। मैथिलीशरण के पिता कविता प्रेमी होने के साथ ही 'कनकलता' नाम से काव्य-रचना भी करते थे गुप्त जी की कवि-प्रतिभा उन्हें विरासत में मिली चीज थी।

गुप्त जी का प्रारम्भ का नाम 'मिथिलाधिपनन्दिनीशरण' था, किन्तु विद्यालय में पहुँचने पर कक्षा अध्यापक ने उसका संशोधन 'मैथिलीशरण' के नाम से कर दिया, और वही मैथिलीशरण हिन्दी साहित्य के इतिहास में हमारे कवि का अमर नाम बन गया। कवि को उपासना का एक नाम अयोध्या के श्री रामसखेजी महाराज ने दिया था, जिसके अंत में 'मणि' शब्द था पर वह कवि को विस्मृत हो गया है। काव्य में कवि का पहला उपनाम 'रसिकेश' था। राम-रसायन के कवि रसिक बिहारी का भी यही उपनाम था, अतएव गुप्त जी 'रसिकेन्द्र' बन गये।³

गुप्त जी लड़कपन में बड़े खिलाड़ी और विनोदप्रिय थे। उनको दिन के समय पानी में तैरना प्रिय था, धरती पर गेंद-बल्ला खेलना, आकाश में पतंग उड़ाना तथा रात के समय नाटक-चेष्टा देखना पसन्द था। आल्हा गाना भी उनके मनोविनोद का एक साधन था, जिसे सुनने के लिए भीड़ इकट्ठी होती थी। कसरत, कुश्ती का भी शौक उन्हें रहा था। चौसर और ताश खेलना भी उनके मनोविनोदों में था। महादेवी जी के शब्दों में - "वे स्वभाव से प्रसन्न और विनोदी हैं, पर इस प्रसन्नता और विनोद की चंचल सतह के नीचे गहरी सहानुभूति और तटस्थ विवेक का स्थायी संगम है। गुप्त जी स्वभाव के लोकसंग्रही कवि हैं, अतः उनके स्वभाव के तल में ऐसी गम्भीर स्थिरता आवश्यक है। जिस पर हास्य-विनोद की सौ-सौ चंचल लहरें मिटने के लिए बन सकें और बनने के लिए मिट सकें।"⁴

श्री मैथिलीशरण गहोई वैश्य थे। यह गहोई वंश अग्रवालों की ही कोई जाति होती है। इनके पूर्वज बुन्देलखण्ड की प्राचीन पुरी पद्यावती के, जो पचायँ कहलाती है, मूल निवासी थे। यही से वे भाण्डेर गये। यह स्थानान्तरण किसके द्वारा और कब हुआ, कुछ ठीक नहीं बताया जा सकता भाण्डेर चिरगाँव से कुल सात कोस दूर है। चिरगाँव में कवि की पाँच पीढ़ियाँ हो गयीं। मैथिलीशरण जी के पूर्वज राघव कनकने को यहाँ के राजवंशी चिरगाँव ले आये। मैथिलीशरण स्वयं चिरगाँव में ही पैदा हुए। इनके वंश के

लोग अपने नाम के आगे कनकने जोड़ा करते थे, किन्तु इन्होंने आरम्भ से ही कनकने का उपयोग न करके अपने नाम के आगे गुप्त लिखना शुरू कर दिया जिसका परिणाम यह हुआ कि अब श्री मैथिलीशरण का परिवार चिरगाँव में भी 'कनकने' न कहा जाकर गुप्त परिवार कहलाता है और सभी परिजन अपने को गुप्त कहना कहलाना पसन्द करते हैं।

गुप्त जी का परिवार प्रारम्भ से ही समृद्ध परिवार रहा है। इनके पितामह ललनजू दो भाई थे। दूसरे भाई के यहाँ कोई पुरुष-सन्तान नहीं थी। ललनजू के पुत्र श्री रामचरण जी हुए। उनके दो अनुज थे घनश्याम दास जी और भगवानदास जी। इन दोनों के यहाँ भी कोई पुरुष-सन्तान नहीं थी। श्री रामचरण जी के पाँच पुत्र हुए - महारामदास, रामकिशोर, मैथिलीशरण, सियारामशरण और चारुशीलाशरण।⁵

गुप्त जी के पिता का चरित्र अत्यन्त ही उच्च तथा पवित्र और शरीर स्वस्थ था। सेठ रामचरण न केवल नाम से बल्कि काम से भी भगवान राम के चरणों के दास थे। उनका अधिकांश समय भजन-पूजन और पाठ में ही व्यतीत होता था। गाँव के पंडित रोज आया करते थे और भगवत्चर्चा तथा रामायण पाठ का क्रम देर तक चलता रहता था। कभी-कभी जनकपुर, चित्रकूट और अयोध्या के भी साधु-महात्माओं का आगमन होता था और कई-कई दिनों तक भक्ति की गंगा में परिवार के सभी लोग अवगाहन करते रहते थे। पिता की इस सच्चरित्रता और स्नेहा तिथयता का गुप्तजी पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा। रामचरण जी अजीवन राम भक्ति में लीन रहे तत्पश्चात् सम्वत् 1903 ई० को इस असार संसार से विदा ले लिया।⁶

गुप्त जी की माता भी श्रद्धालु भक्त महिला थी। वे भी नियमित रामायण पाठ पढ़ा करती थी। माता का अपने पुत्र के प्रति कितना प्रेम था, बतलाने की आवश्यकता नहीं। प्रत्येक माँ का अपने पुत्र के लिए अगाध स्नेह-भंडार खुला रहता है। कवि की उन्नीस वर्ष की अवस्था तक माँ ने अपना वात्सल्य दान किया और रामनवमी सम्वत् 1962 को इस असार संसार से विदा ले लिया।⁷

काका भगवान दास जी रामचरण की मृत्यु के बाद कवि के अभिभावक रहे थे। वे बड़े सूझबूझ के व्यवसायी व्यक्ति थे। उनकी व्यवसायी सूझबूझ का प्रभाव भी बालक गुप्त पर पड़ा।

गुप्त जी ने स्वयं अपने पिताश्री स्वर्गीय श्री रामचरण जी के सम्बन्ध में 'साहित्यकार' में लिखा था - "वे मध्यवित्त गृहस्थ थे, किन्तु उनकी प्रकृति उदार और राजस थी। उनका अधिकांश समय भजन-पूजन और पाठ में ही व्यतीत होता था। दस-बारह गाँवों की जमींदारी थी। घर में चाँदी सोना भी यथेष्ट था। जब तक मेरे छोटे काका जी छोटे थे तब तक पिता जी घर का कुछ काम-काज करते भी थे। लेन देन का काम ही असल में पिताजी का काम कहा जा सकता है। मकान और दुकान भी बहुत से यहाँ और झाँसी में थे। छोटे काका जी जब काम करने योग्य हुए तब पिताजी ने सब काम छोड़ दिया। वे उन्हें सम्मति दे दिया करते थे। वह सम्मति अनुमोदन के रूप में ही हुआ करती थी। वे स्वजनों की रुचि का ही विशेष ध्यान रखते थे।"⁸

मुन्शी अजमेरी जी ने 'प्रताप' में कवि के पिता से अपने सम्बन्धों पर प्रकाश डालते हुए लिखा था- "सेठ रामचरण कनकने हमारे यहाँ के बड़े आदमी थे। जैसा बड़ा उनके मकान का फाटक था, वैसा ही बड़ा उनका मकान और घी का गोदाम था। उनके यहाँ रथ, सेजगाड़ी - बड़ी, मँझोली और कई प्रकार की बगियाँ थीं, बैल, घोड़े, ऊँट, हथियार और सिपाही थे और थे बहुत से नौकर-चाकर। वे डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के मेम्बर थे और थे लेफ्टिनेन्ट गर्वनर के दरबारी। ओरछा और दतिया के महाराजाओं से उनका मेल था। वे बड़े उदार और रईसी मिजाज के आदमी थे।"⁹

भाई-बहन, विवाह एवं संतान-

गुप्त जी पांच भाई हैं, दो गुप्त जी से बड़े और दो छोटे। श्री महारामदास जी और रामकिशोर जी बड़े भाई थे, सियारामशरण और चारूशीलाशरण जी छोटे भाई। दोनों बड़े भाई दिवंगत हो चुके हैं, पहले सन् 48 में और दूसरे सन् 56 में। महारामदासजी के दो पुत्र हैं, रघुवीरशरणजी और युगलकिशोर जी। युगलकिशोर जी दिवंगत हो चुके हैं। रघुवीरशरण जी सन् 1920-21 के राजनीतिक आन्दोलन में कारावास-दंड भोग चुके हैं। उनके दो पुत्र हैं, श्री आनन्द और श्री प्रमोद। रामकिशोरजी का रईसी स्वभाव था, वे जाति और गाँव के पंच रहे हैं। उनके पुत्र का नाम जन्मना तो वैदेहीशरण है, पर लोक व्यवहार में श्री निवास जी। इनके दो पुत्र हैं, श्री श्रीकंठ और श्री श्रीरंग। कवि की एक मात्र संतान है श्री ऊर्मिलाचरण, जिनका जन्म सम्वत् 1993 है इनका नामकरण श्री सुमित्रानन्दन पंतजी ने किया था।¹⁰

सियारामशरणजी मैथिलीशरण जी से नौ वर्ष छोटे थे। इनका जन्म सम्वत् 1952 को हुआ। ये निःसंतान हैं और दमे के रोगी पर गांधी-दर्शन का मूर्तिमंत स्वरूप इनमें प्रत्यक्ष होता है। अग्रज श्री मैथिलीशरण की भांति ही, ये भी उच्चकोटि के एक लब्धप्रतिष्ठ साहित्यकार थे। सियारामशरण का देहान्त मार्च 1963 में हो गया। ये संत-प्रवृत्ति के थे।

गुप्त जी के सबसे छोटे भाई हैं श्री चारूशीलाशरण। ये सर्वोदयी प्रवृत्तियों के व्यक्ति हैं और गांधी जी के रचनात्मक कार्यक्रमों का, विशेषतः चरखे और खादी का, कार्य करते हैं। इनके केवल एक पुत्र है - श्री सुमित्रानंदन। गुप्त जी का परिवार सम्मिलित कुटुम्ब के रूप में है और सभी व्यक्ति एकसूत्र में बँधकर परिवार की सुख-समृद्धि में योग देते हैं।

मैथिलीशरण गुप्त विवाह और संतति-

गुप्त जी का प्रारम्भिक गार्हस्थ्य जीवन आनन्दपूर्ण नहीं था। संवत् 1953 में गुप्तजी का नौ वर्ष की अवस्था में प्रथम विवाह हुआ। बरात दतिया गई थी। पाँच वर्ष पश्चात् संवत् 1957 में नववधू घर लायी गयी। किन्तु दुर्भाग्यवश संवत् 1960 में कवि की प्रथम पत्नी का प्रसव-पीड़ा में देहांत हो गया। इस दुर्घटना के दो मास पश्चात् उसके पिता दिवंगत हुए कवि के छोटे काका स्व० भगवानदास जी ने संवत् 1962 में उनका दूसरा विवाह कर दिया। द्वितीय पत्नी सात-आठ वर्ष तक जीवित रही और उससे कवि को एक पुत्र तथा कन्या प्राप्त हुई, पर दोनों संतानों की बाल-मृत्यु हुई। धर्मपत्नी के न रहने पर कवि दो तीन वर्ष तक तृतीय विवाह को अस्वीकार करता रहा। पर अन्त में छोटे काका का यह मर्म-वचन कि- “अब मैथिलीशरण विवाह न करेगे? उनकी खुशी, पर हम सुखी न मर सकेंगे”, तथ मुंशी आजमेरी जी का अनुरोध, कवि टाल न सका और संवत् 1971 में कवि का तीसरा विवाह श्रीमती सरयूदेवी के साथ संपन्न हुआ। इस विवाह से कवि को नौ संतानें हुई पर एक के अतिरिक्त सभी बाल्यावस्था में ही चल बसी। सन् 1936 में कवि के दो पुत्र सुदर्शन और सुमंत्र एक ही मास में दिवंगत हुए। सुदर्शन बड़ा होनहार बालक था। यह पाँच वर्ष की अवस्था में जलोदर रोग से ‘राम का प्यारा’ हो गया और दो वर्ष का सुमंत्र चेचक से। संवत् 1933 में कवि की अंतिम संतति, चिरंजीव ऊर्मिलाचरण का जन्म हुआ।¹¹

श्रीमती महादेवी वर्मा के शब्दों में- “यदि अपनी नौ-नौ संतानों को अपने हाथ से मिट्टी को लौटा देना पिता का दुःख है तो गुप्त जी दुःख के इस समुद्र को तैर आए हैं।” तथा “जिस संतान-विछोह की आवृत्तियों ने उनकी सरल सहधर्मिणी की हँसी को आँसुओं में बुझा सा दिया है उसीने उनकी दृष्टि को हँसी की दीप्ति दे दी है।”¹²

कवि और कवि पत्नी अपनी एकमात्र संतति की सुख-सुविधा का पूरा ध्यान ही नहीं रखते, उसे सुयोग्य बनाने की पूरी चेष्टा भी करते हैं। उसे उच्च शिक्षा दिलाने का सुप्रबंध किया गया और सन् 1955 में कवि के यहाँ पुत्र वधू का आगमन हुआ।¹³

शिक्षा-

गुप्त जी को विद्यालयीय शिक्षा बहुत कम मिली, मुख्यतः वे जीवन पाठशाला के ही विद्यार्थी रहे। वैसे उनकी शिक्षा का आरम्भ चिरगाँव में हुआ। प्राइमरी पाठशाला की पढ़ाई समाप्त होने पर वे झाँसी भेजे गये। चिरगाँव की पाठशाला में ही मुंशी अजमेरी जी से उनकी मित्रता हुई जो जीवनपर्यन्त बनी रही कवि को पं० दुर्गाप्रसाद मिश्र ने विद्यादान दिया। इन्हींने जब कवि 12-13 वर्ष की अवस्था का था उसे पढ़ने के लिए राजा लक्ष्मण सिंह कृत अभिज्ञान शाकुन्तल अनुवाद दिया था। इसे पढ़कर कवि की वही दशा हुई जैसा घोड़ागाड़ी में घूमने जाते समय के दृश्यों का गौतम बुद्ध पर पड़ा था। तात्पर्य यह है कि इस पुस्तक ने उनके भीतर नवीन चेतनागत परिवर्तन उपस्थित किया जिससे उनके जीवन की दिशा बदल गयी।

श्री गुप्त के पिता रामचरण जी की यह हार्दिक इच्छा थी कि मैथिलीशरण अंग्रेजी पढ़-लिखकर डिप्टी कलक्टर हो जाये इसी उद्देश्य से गुप्तजी को मैकडानल हाईस्कूल, झाँसी में पढ़ने के लिए भेजा गया। प्रारंभ में उनकी रुचि थोड़ी बहुत पढ़ने में रही, पर धीरे-धीरे उनका मन उधर से उचट गया।¹⁴ झाँसी में कवि की दिनचर्या बदल गयी। वह स्कूल न जाकर मित्रों के साथ खेल-कूद में व्यस्त रहने लगे। उसके व्यय भी बढ़ गये। उसने घर से चोरी-चोरी रुपये उड़ाये। परीक्षा के समय भी वह रामलीला की मंडली के साथ ओरक्षा गये। रामलीला और रासलीला आपको प्रिय लगने लगी पर आपका मन रामलीला से ही भरता था और सीता स्वयंवर आपका सार्वधिक प्रिय घटना-व्यापार था। आपने एकाध बार माली की असफल भूमिका भी अभिनीत की। कवि ने अपने झाँसी-वास के सम्बन्ध में लिखा है कि “मेरे भविष्य के हाथ में तो धरती पर था गेंद बल्ला पानी में था ताल चौपड़ों का तैरना और आकाश में थी उड़ती

हुई पतंग की डोर।” कवि के पिता को यह सब देखकर भय हुआ कि पुत्र-रत्न चोक होकर कहीं जार न हो जायँ अथवा भ्रष्ट होकर कहीं ईसाई न बन जाय। फलतः उसे घर लौट आना पड़ा। इस प्रकार कवि की अंग्रेजी शिक्षा यही समाप्त हो गयी।¹⁵

बाद में अनेक वर्षों के बीत जाने पर महामना पंडित मदनमोहन मालवीय जी के आदेश से कवि के मानस में पुनः अंग्रेजी पढ़ने की इच्छा बलवती हुई। इस संदर्भ में कवि ने अपने अनुज श्री चारूशीलाशरण की सहायता ली, किंतु आपको अधिक सफलता नहीं मिली कवि ने अपने इस कथन को ही चरितार्थ किया- “मैं पढ़ने के लिए नहीं जन्मा हूँ। मैंने इसी लिए जन्म लिया है कि लोग ही मुझे पढ़ें।” कवि ने अपनी शिक्षा को सरस बनाने के लिए हिन्दी अंग्रेजी का पद्यबद्ध कोष लिखने का असफल प्रयास किया।

“राम कहो या गाड कहो, नेम नाम, लव प्रेम लहो।
बैर इनमिटी, शहर सिटी, अंग्रेजी में दया पिटी।”¹⁶

वृद्धावस्था में अपने दिल्ली प्रवास में कवि ने अभ्यास से अंग्रेजी समाचार पत्रों को पढ़कर समझ लेने की क्षमता उत्पन्न कर ली थी। झाँसी में कवि ने अंग्रेजी के साथ उर्दू भी पढ़ी थी।

झाँसी से विद्याध्ययन के क्रम को समाप्त कर जब कवि घर वापस लौट आया तब उसकी कथा-साहित्य के प्रति अभिरुचि जागी, फलतः आपने चन्द्रकांता, चन्द्रकांता संतति, सहस्र रजनी चरित तथा बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय के उपन्यासों के हिन्दी अनुवादों का भी अध्ययन किया। धीरे-धीरे कवि का हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं तथा सामयिक साहित्य से भी अनुराग बढ़ा। मुंशी अजमेरी ने कवि को कहानियाँ और सवैये सुनाये जिनमें शृंगारिक सवैये कवि को विशेष भाये। अजमेरी जी ने ही संस्कृत के अनेक उत्कृष्ट श्लोक कंठस्थ कराये। धीरे-धीरे रुचि बढ़ने पर कवि ने रसराज, विद्यासुन्दर तथा पंचाशिका आदि संस्कृत ग्रन्थों का स्वाध्याय किया और उनके उत्तम अंशों को कंठस्थ भी किया। भूतहरि शतक, हितोपदेश तथा चाणक्य नीति आदि ग्रन्थ तो कवि ने बड़े चाव से पढ़े और उनके मर्मस्पर्शी स्थलों की भूरि-भूरि प्रशंसा की।¹⁷

वैद्यक सीखने के उद्योग में कवि ने ‘माधव-निदान’ का अर्द्धांश कंठस्थ किया तथा शुश्रुत का परायण भी किया। ‘मंत्रशास्त्र’ पढ़कर कवि के मन में सिद्धि प्राप्ति का विचार उठा और ‘इन्द्रजाल’ ने कवि को विस्मयकारी कार्यों की कल्पनाएँ दीं। कवि ने ‘वैद्यमहिमा’ शीर्षक एक व्याख्यान भी रचा, पर आयुर्वेद से शीघ्र ही कवि को विरक्ति हो गयी।

महाराष्ट्र के एक ब्रह्मण विद्यार्थी ने 'अमरकोष' के प्रथम दो काण्ड कवि को कंठस्थ कराए। वे प्रतिदिन दस श्लोक कवि को कंठस्थ कराते थे। पढ़ाते समय वे अपने बड़े सिर को बहुत हिलाया करते थे, अतएव गुप्त जी ने उनका नाम 'मुड़हल्ल गुरूजी' रखा। कुछ ही महीनों बाद वे चले गये तत्पश्चात् पंडित रामस्वरूप शास्त्री आए। वे कवि को 'लघुकौमुदी' पढ़ाने लगे। इसी समय कवि के पिता का देहन्त हो गया और नियमित अध्ययन समाप्त हो गया।

कवि ने श्री दुर्गादन्त पंतजीसे 'वृहत्त्रयी' और 'लघुत्रयी' के अनेक प्रसंग सुने और काशीप्रवासी पं० अयोध्यानाथ जी से उनके स्वरचित अनेक संस्कृत श्लोक। इसी समय प्रायः संवत् 1858 में सन् 1901 में, कवि को प्रथम बार काव्य, स्फुरण हुआ।¹⁶

पिता की मृत्यु के पश्चात् कवि का अध्ययन क्रम तो टूट गया, पर स्वाध्याय का काल आरंभ हुआ। कवि ने इतिहास, पुराण तथा भारतीय संस्कृति व रीति विषयक ग्रन्थों और प्राचीन कवियों के काव्यों का सम्यक् अध्ययन किया। तुलसी, सूर और नन्ददास तथा रहीम, बिहारी, घनानन्द, सेनापति, मतिराम, देव पद्माकर, ठाकुर और लाल आदि कवियों को स्वच्छन्द ढंग से पढ़ा इन कवियों में तुलसी ने उन्हें सर्वाधिक प्रभावित किया और वे उनके भक्त बन गये।

स्वाध्याय के सहारे तथा यदा-कदा किसी बंगाली महोदय के संसर्ग से उन्होंने बंगला भाषा का भी अध्ययन किया और माइकेल मधुसूदन दत्त, द्विजेन्द्रलाल राय, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, बंकिमचन्द्र, शरतचन्द्र और नवीन चन्द्रसेन आदि की काव्य व गद्यकृतियों को पढ़ा तथा उनसे यथेष्ट प्रभाव ग्रहण किया।

गुप्तजी मुंशी अजमेरी जी के संसर्ग से संवत् 1954-1955 में सितारा बजाना सीखने लगे और गाँव से बाहर जाकर गाने भी लगे। स्वर्गीय रामकिशोर जी भी इस संगीत शिक्षा में कवि के मित्र थे। गुप्त जी अकेले गा लिया करते थे, पर अपने पिता के सम्मुख आग्रह-आवेदन पर भी न गा सके। यह शिक्षा भी अधूरी रही। कवि ने अजमेरी जी को 'कोकिल-कंठ' कहा तथा अपने गले में 'कांग-काकली' का अनुभव किया।¹⁷

अपनी शैक्षिक सम्पत्ति पर प्रकाश डालते हुए श्री गुप्त जी ने स्वयं कहा है, "मैं आरंभ-शूर अवश्य था, पर महीने दो महीने में ही मेरा उत्साह समाप्त हो जाता था और मैं एक काम छोड़कर दूसरा करने लगता था। केवल छन्द रचना ही ऐसी निकली जिसने मुझे बाँध लिया।"¹⁸

गुप्त जी के सहयोगी और मित्रगण-

गुप्त जी के सहयोगी एवं मित्रगण की सूची काफी लम्बी है।

सियारामशरण गुप्त-

कवि अपने स्वजनों से अपनत्व बनाए रखता है, पर उसके जीवन में सर्वाधिक महत्व श्री सियारामशरण गुप्त का है। अपने सगे-सम्बन्धियों में सियाराम के प्रति उनकी आत्मीयता अत्यधिक हार्दिक थी, जिनकी मृत्यु पर आज वे अतीव दुःखी हैं। सियारामशरण जी साकेत के लक्ष्मण की भांति कवि के स्नेह बन्धन के कारण उमसे अपृथक् हैं-

“अनुज! मुझसे न तुम न्यारे कभी हो,
सुहृद् सहचर, सचिव, सेवक सभी हो।”²¹

कवि-पत्नी-

कवि-पत्नी श्रीमती सरयूदेवी जी ने अपना सम्पूर्ण व्यक्तित्व गुप्त परिवार के हेतु उत्सर्ग कर दिया है। उनका जैसे कुछ है ही नहीं जो है वह उनके पति का परिवार है। अतएव वे करुणामयी और गंभीर हैं। कवि ने उन्हें ‘द्वापर’ समर्पित किया है और कहा -

“कर्म-विपाक कंस की मारी, दीन देवकी-सी चिरकाल,
लो, अबोध अन्तःपुरि मेरी, अमर यही माई का लाल।”²²

मुंशी अजमेरी-

अजमेरी जी कवि के बाल्य-बन्धु ही नहीं थे, बल्कि वह गुप्त परिवार के एक अंग थे। कवि के पिता ने उन्हें अपना छठा बेटा मान लिया था। और महात्मा गांधी ने उन्हें कवि का शिष्य।

गुप्त जी के लिए वे मूर्तिमंत साहित्यिक वातावरण थे और वे उनके लिपिक, मित्र, परामर्शदाता, संशोधक, हितैषी तथा अग्रजतुल्य थे। गुप्त जी की साहित्यिक सुरुचि उनके संसर्ग में परिष्कृत हुई, कथा वार्ता में प्रेम बढ़ा तथा गोष्ठीवत् जीवन-चर्या आरम्भ हुई।²³

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी-

साहित्यिक क्षेत्र में आचार्य द्विवेदी जी कवि के लिए परम आराध्य थे। द्विवेदी जी के कृपा से ही गुप्त जी कीर्तिमान कवि बने।

गुप्त जी ने आचार्य द्विवेदी जी के और अपने संबंधों का विवरण दो निबंधों में दिया है, 'आचार्यदेव' तथा 'मेरे कवि का आरंभ'। इन निबंधों में निम्नलिखित ज्ञातव्य बातें स्पष्ट होती हैं।

- (1) "मैं जब कुछ न बन सका तब मैंने कवि बनने की ठानी।.... कोप, भाजन होने योग्य होने पर भी मैं पूज्य द्विवेदीजी महाराज का अनुग्रह भाजन हो गया।"
- (2) अपने आचार्य देव से उनके रेलवे की नौकरी छोड़ने के पूर्व ही प्रायः सन् 1903 के अन्त अथवा सन् 1904 के आरंभ में कवि ने अपने अग्रज के साथ झांसी जाकर भेंट की थी।
- (3) "अपने पद्यों के विषय में प्रत्यक्ष कुछ कहने की अपेक्षा पत्र-व्यावहार करने में ही मुझे सुविधा दिखाई पड़ी। वस्तुतः उनके प्रभाव से मैं अभिभूत हो गया।"
- (4) गुप्त जी कितनी ही बार द्विवेदी जी की सेवा में उपस्थित हुए हैं। और सं० 1963 वि० को आचार्य द्विवेदी जी चिरगाँव भी गए।
- (5) "अपने कर्तव्य में ही वे कठोर प्रतीत होते थे, आत्म-सम्मान का प्रश्न आ जाने पर उनमें उग्रता भी आ जाती थी, अन्यथा उनका-सा कोमल हृदय दुर्लभ ही है।"²⁴

तत्पश्चात् गुप्तजी निरन्तर आचार्य के सन्निकट आते गए और अन्त में उनके पट्टशिष्य सिद्ध हुए। आज वे 'महावीर के प्रसाद' माने जाते हैं।

रायकृष्णदास-

गुप्त जी का रायकृष्णदास जी के साथ सन् 1911 में मैत्री सम्बन्ध स्थापित हुआ। यह स्थायी स्नेह बंधन है। 'रूबाइयात उमर खय्याम' का अनुवाद करने में वे कवि के सहायक ही नहीं बल्कि गुप्त जी के समस्त साहित्यिक व्यक्तित्व के अभिन्न अंग भी बन गए। गुप्त जी के रचना-कार्य में वे परामर्शदाता हैं। और उनके साहित्यिक कार्यों के प्रशंसक भी हैं। रायकृष्णदास और गुप्त जी की मित्रता व्यक्तिगत, सामाजिक और साहित्यिक तीनों प्रकार की है।

जयशंकर प्रसाद -

प्रसाद जी गुप्तजी के घनिष्ठ मित्र थे, पर प्रसादजी के काव्य क्षेत्र में गुप्तजी से सौमनस्य नहीं था। प्रसाद जी, गुप्त जी को प्रतिष्ठित पद्यकार मानते थे। सन् 1914-15

में रायकृष्णदास जी द्वारा यह मित्रता स्थापित हुई थी। गुप्त जी का कथन है कि “प्रसाद जी के साथ जाने कहाँ-कहाँ की बातें हुआ करती थी परन्तु अपनी-अपनी रचनाओं के विषय में कभी भूले-भटके ही हम लोग चर्चा करते।”²⁵

मैथिलीशरण गुप्त जी हिन्दी में अर्द्धशताब्दी से भी अधिक समय तक सक्रिय रहे हैं, अतएव उनके संपर्क और संबंध अत्यन्त घनिष्ठ और व्यापक हैं। जिनका कवि के जीवन पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा।

अन्य विशिष्ट साहित्यिकों में राजारामपाल सिंह, श्री वृन्दावनलाल, श्री बालमुकुन्द गुप्त, श्री नवीन जी ‘ददा’, श्री माखनलाल चतुर्वेदी, श्रीमती महादेवी वर्मा, श्री गंगाप्रसाद पांडे आदि भी उनके सहयोगीगण हैं।

कवि के काशी के मित्रों में डॉ० श्यामसुन्दर दास, श्री केशव प्रसाद मिश्र, डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल, श्री पदमनारायण आचार्य, कृष्णदेव प्रसाद गौण आदि कवि के निकट संपर्क के व्यक्ति रहें हैं। डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल कोलकत्ता से प्रकाशित होने वाले गुप्त अभिनंदन-ग्रंथ के प्रधान संपादक हैं।

दिल्ली में डॉ० विश्वनाथ प्रसाद, डॉ० नगेन्द्र, श्री बनारसीदास चतुर्वेदी, श्री जैनेन्द्र, श्री दिनकर, डॉ० बच्चन, श्री नरेन्द्र शर्मा आदि से घनिष्ठ सम्बन्ध हैं। इस प्रकार गुप्त जी के मित्रों की संख्या अनगिनत है।²⁶

इस प्रकार गुप्त जी के सम्बन्धों और मित्रगणों की सूची काफी विशद है। जो कवि के जीवन-चरित, व्यक्तित्व तथा साहित्य में किसी ना किसी प्रकार का महत्त्व रखते हैं। उनकी उपेक्षा नहीं की जा सकेगी।

गुप्तजी की पत्र-पत्रिकाएँ-

गुप्त जी का लेखन कार्य 1903 से लेकर 1964 तक हिन्दी भाषा और साहित्य का गौरव रहा। गुप्त जी हिन्दी की सभी प्रमुख पत्र पत्रिकाओं के साथ लेखक तथा कवि के रूप में संबंधित रहे हैं। गुप्तजी का काव्यारंभ भारत-मित्र, वैश्योपकारक, राघवेन्द्र, पाटलिपुत्र, मोहिनी, प्रताप, प्रभा, सैनिक और सरस्वती जैसी पत्रिकाओं के माध्यम से हुआ।²⁷

सन् 1903 में द्विवेदी जी ने ‘सरस्वती’ का सम्पादन प्रारम्भ किया था। यह वर्ष आधुनिक हिन्दी, साहित्य की प्रगति में अत्यन्त महत्वपूर्ण है। द्विवेदी जी के सम्पादन

काल (1903-1920) में 'सरस्वती' स्वयं एक संस्था बन गई थी। उसने खड़ी बोली को काव्य का माध्यम बनाने के लिए इस बीच बड़े महत्त्व का कार्य किया।

वस्तुतः 'सरस्वती' देश का पहला मासिक पत्र था जो विदेशी मासिकों के स्तर का था। इतना सुरुचिपूर्ण, मुद्रण कला की सुन्दरता से ओत-प्रोत और साहित्यिक सामग्री से लब्ध कोई अन्य पत्र हिन्दी में इस समय देश में नहीं था जिस समय 'सरस्वती' का आविर्भाव हुआ वह समय सुधारवादी था।

मैथिलीशरण गुप्त जी की पहली कविता 1905ई० में कोलकत्ता से प्रकाशित मासिक 'वैश्योपकारक' में हुई थी। तत्पश्चात् वे 'सरस्वती' में आए। द्विवेदी जी ने इनकी पहली कविता लौटा दी और उसके साथ उन्होंने भाषा और विषय सम्बन्धी कुछ निर्देश लिख भेजे। मैथिली बाबू ने इन निर्देशों का पालन सुयोग्य शिष्य की भाँति किया और वे 'सरस्वती' के सदस्य बन गये।

गुप्त जी की कविताएँ सरस्वती में छपने लगीं। उन दिनों 'सरस्वती' में जो रंगीन चित्र छपते थे। उन पर सुकवियों से परिचायक कविताएँ भी लिखवाकर साथ ही साथ छापी जाती थी। ऐसी 46 रचनाओं का एक संग्रह 1909 ई० में 'कविता कलाप' नाम से इंडियन प्रेस इलाहाबाद ने छापा था।²⁸

इस प्रकार गुप्त जी 'सरस्वती' के माध्यम से जागरण सुधार-युग की चेतना के बीज बोते रहे। अन्य पत्रों में गुप्त जी यदा-कदा ही लिख सके, क्योंकि आचार्य द्विवेदीजी इसे अनुचित मानते थे। सुधा, माधुरी और विशाल भारत से उनका अपने जीवन के मध्य काल में संबंध रहा है। हिन्दी की प्रत्येक पत्र-पत्रिका गुप्तजी की रचना छापने के लिए उत्सुक रहती थी। इन दिनों भी गुप्तजी की रचनाएँ आजकल, नई धारा, नयासमाज, नवनीत, धर्मयुग आदि में जब तब दिखाई पड़ती है। 'प्रतीक' में भी उनकी कविताएँ छपी हैं।

गुप्तजी की हस्तलिखित कविताएँ, जो पुस्तकाकार नहीं छपीं, प्रायः त्यागभूमि, विशाल भारत, सुधा, हंस, विश्वमित्र, वैशाली, कल्याण, माधुरी, भारत, सीता, हरिजन कुमार आदि पत्रों में प्रकाशित हुई है।

गुप्तजी ने शहीद स्मारक भारत माता का मंदिर आदि संस्थाओं तथा सर्वोदय, नईधारा, स्वाधीन, सारथी, नवराष्ट्र, स्वतंत्र भारत आदि पत्रों के लिए नीति-सुक्तियाँ भी लिखीं।²⁹

गुप्त जी के पत्र-

राष्ट्रकवि ने विभिन्न व्यक्तियों को विभिन्न अवसरों पर जो पत्र लिखे, उनकी संख्या हजारों में होगी। अर्थात् इन पत्रों को गुप्तजी के समस्त पत्र संकलन का नमूना मात्र समझना चाहिए। ये सभी पत्र सन् 1912 से 1921 की कालावधि के हैं। इनमें से अधिकतर पत्र श्री रायकृष्ण दास को ही लिखे हुए हैं।

इन पत्रों से राष्ट्रकवि गुप्त जी की सहज स्निग्ध मित्र-वत्सलता का जो रूप प्रकट होता है, वह कितना हृदयाकर्षक है? कैसे सहज भाव से साहित्यिक प्रश्नों की चर्चा और रोजमर्रा घटने वाली घर-गृहस्थी की छोटी-छोटी बातें इनमें मिल गई हैं। कुछ पत्रों में उस समय की कतिपय महत्वपूर्ण राजनीतिक घटनाओं का बड़ा हृदयस्पर्शी वर्णन भी है।

(1)

प्रिय राय सहाब,

चिरगाँव,

29.11.12

जय जानकी जीवन। कृपा कार्ड पहुँचा आपके कई निकट संबंधियों की मृत्यु का हाल पढ़ कर खेद हुआ। संसार में स्वजन-वियोग ही तो सबसे बड़ा दुख है:

होता स्वजन-वियोग न यदि इस वसुधातल में,
बन जाता तो यही अमरपुर निश्चय पल में।

किन्तु जो ईश्वर को इष्ट होता है, वही होता है। अस्तु। हाँ, 'भारत-भारती' के जो पद्य -सरस्वती' में निकले हैं उनमें अधिकतर वही हैं जो आपने देखे थे। कुछ नये हैं। आपके उत्तर में विलम्ब देखकर 'भारत-भारती' की कापी मैंने पंडित पद्मसिंह शर्मा जी के पास भेज दी है। कई दिन हुए। शायद दो चार दिन में ही लौट आवे। आते ही सेवा में भेज दूंगा। आपको और वार्हस्पत्यजी को उसका दिखलाना बहुत जरूरी है।

तबीयत अच्छी न रहने के कारण कुछ समय के लिए मैंने लिखना बन्द कर दिया है। कोई तीन महीने में बहुत लिखे होंगे तो 20 पद्य। खंडवा (सी०पी०) से 'प्रभा' नाम की एक सचित्र मासिक पत्रिका निकलने वाली है। रंगढंग सरस्वती का सा होगा। बड़ी धूमधाम से तैयारियाँ हो रही हैं। उसके कवर पर जो चित्र रहेगा, उसके लिए आज कुछ लिखा है। पर 8-10 पद्यों से अधिक न लिखूँगा। लिखूँगा क्या नहीं, अधिक लिख

ही नहीं सकता । देखिए, कब तक तबीयत ठीक होती है। वैसे तो कोई बीमारी मालूम नहीं होती है, पर विचार करने से, मस्तिष्क को जोर देने से सिर में दर्द हो उठता है। बड़ी तकलीफ हो जाती है। फिर कुछ लिखते-पढ़ते नहीं बनता।

काशी आने के विषय में प्रार्थना है कि जिस समय मैंने 'भारत-भारती' का वह अंश वार्हस्पत्यजी को सुनाया था, जो आपने देखा था, उस समय सारी पुस्तक देखने के लिए मैंने उनसे प्रार्थना की थी। उन्होंने प्रार्थना स्वीकार कर ली थी, पर कहा था कि उस समय मैं भी वही (काशी में) रहूँगा तो अच्छा होगा, क्योंकि प्रत्यक्ष में जो बातें कही जा सकती हैं, वे लिखने में नहीं आ सकती। मैंने भी यही विचार किया था कि ऐसा ही करूँगा। पर तबीयत कुछ खराब हो जाने से अब पुस्तक ही भेजकर उनसे प्रार्थना करूँगा। मुझे विश्वास है कि आप तो देख लेने की कृपा करेंगे ही। कहीं वे भी इस प्रार्थना को स्वीकार कर ले तो बहुत अच्छा हो। इस समय न आ सकने के बदले में फिर किसी मौके पर हाज़िर हो जाऊँगा। पुस्तक के विषय में यदि कोई विशेष बात होगी तो वार्हस्पत्यजी आपसे कह सकते हैं। क्या एक दिन आप उनसे इस पुस्तक के विषय में भेंट करने की कृपा करेंगे? मेरा तो यही विचार है। फिर जैसी आपकी आज्ञा हो किया जाए। कृपा करके उत्तर ज़रा जल्द दीजिएगा। पहले मैं जानता था कि पं० देवीप्रसाद शुल्क ही पत्रोत्तर में बिलम्ब करते हैं। किन्तु आप तो ऐसे निश्चित रहते हैं। कि कभी-कभी आक्षेप करने को जी चाहता है। धृष्टता क्षमा कीजिएगा।

आप ने इस वर्ष शायद मेरी लिखी हुई "काव्य-प्रभाकर" की आलोचना 'सरस्वती' में पढ़ी होगी। हाल में दैनिक 'भारतमित्र' के तेरह अंको में उसकी प्रत्यालोचना निकली है। क्या उसे आपने पढ़ा है? न पढ़ा हो तो ज़रूर पढ़िए। पढ़कर यह भी लिखिएगा कि उसका उत्तर देने की ज़रूरत है या नहीं। आज यही तक। शेष कुशल। दया रखिए।³⁰

आपका,
मैथिलीशरण

(2)

प्रिय राय साहब,

चिरगाँव,

12.2.13

जय जानकी जीवन। कृपा कार्ड मिला। खुशी हुई। भला “राष्ट्रकवि” की योग्यता मुझमें कहाँ? मुझे तो आप लोगों का “गुप्तजी” ही रहना बहुत है:

मुझे आपका यही भाव है, शुभफल सारा
कि है मैथिलीशरण गुप्त भी एक हमारा।³¹

बस,

आपका,
मैथिलीशरण

(3)

प्रिय राय साहब,

चिरगाँव,

1.3.13

जय जानकी जीवन। कृपा कार्ड पहुँचा। बहुत अच्छा, शकुन्तला वाला निबन्ध पूरा करूँगा। पत्रावली के लिए निम्नलिखित पत्र ही मुझे मालूम है:

1. प्रताप सिंह का पत्र पृथ्वीराज के नाम।
2. रूपवती का पत्र राजसिंह के नाम।
3. रामदास का पत्र शिवाजी के नाम।
4. तुकाराम का पत्र शिवाजी के नाम।

तीन पत्र मैं लिख ही चुका, और हाँ, एक अहल्याबाई का पत्र भी है। और कौन है? अरविन्द बाबू का जो पत्र आपको मिला है, वह यदि इसके योग्य हो तो जरूर भेजिए। सुना है वर्नियर के कुछ पत्र भारत के सम्बन्ध में विलायत अपने मित्रों को लिखे थे। यह बात ठीक है? शेष कुशल ³²

आपका,
मैथिलीशरण

(4)

लीजिए सरकार,

चिरगाँव,

21.2.18

आपके “पलीत” ने दो दिन खाना पीना भुला दिया। अब जी हलका हुआ। मुंशी जी दिल्ली की तरफ भाग गये। इससे लिखने की बेगार मुझे भुगतनी पड़ी। आप देख लीजिए तो साफ कापी करा ली जायेगी। लिखने में मुझसे बहुत भूलें हुई होगी। अक्षर गायब कर जाना तो मेरे बाँये हाथ का खेल है। दो जगह टिप्पणी भी लगती है, लिखते समय भी कहीं-कहीं फेर-फार किये हैं। वे मूल कापी में नहीं हैं। मेरी राय में यह अच्छी है इस लायक है कि छपे। उपमायें बड़ी अच्छी हैं। प्रवाह भी है। अर्थ भी।

जहाँ-जहाँ उचित हो, और संशोधन कर दिये जायें। वे दो कविताएँ आपके उत्तर की प्रतीक्षा में रूकी हुई हैं।³³

अधीन - मैथिलीशरण

(5)

प्यारे भाई,

चिरगाँव,

8.7.18

तार मिला। खेद है, मैं इसी समय नहीं आ सकता। कोशिश करूँगा कि मेहताजी के जाने के एक आध दिन पहले पहुँचूँ। पर न पहुँच सकूँ तो उसके लिए क्षमा प्रार्थना करता हूँ।

कार्य आवश्यक है। मेरे भविष्य के सम्बन्ध में है। बाहरी नहीं भीतरी। तुम शायद विश्वास न करोगे, समझोगे कि टाल रहा हूँ, इसलिए मैं बता देना चाहता हूँ कि मैं अपना विल, ट्रस्ट या सेटिलमेन्ट करने जा रहा हूँ कल वृन्दावनलाल आयेंगे। सेटिलमेन्ट की ही राय होती है। उसकी रजिस्ट्री भी करानी होगी। इसी से विलम्ब होने की सम्भावना है। तुम न भी लिखते तो भी मैं शीघ्र ही तुम से मिलता। अपने कार्यक्रम के बारे में तुमसे सलाह करनी है। शायद मैं काशी में तुम्हारे पास रहकर ही कुछ काम करता, पर उसमें दो-तीन बधायें हैं। सब बातें मिलने पर होगी।

मेरा अनुरोध यही है कि तुम फिजूल तार में पैसे बरबाद न करना। जितनी जल्दी हो सकेगी, मैं खुद ही करूँगा।³⁴

विशेष क्या लिखूँ।

तुम्हारा
मैथिलीशरण

(6)

प्रियवर,

झाँसी

03.05.20

मैं आज यहाँ आया हूँ। चिरगाँव में एक भीषण काण्ड हो गया है और हो रहा है। कई आदमी गिरफ्तार हुए हैं। मेरा भतीजा रघुवीर शरण पकड़ा गया है। तुमने उसे खुद देखा है। कितना सीधा लड़का है। मेरी समझ में नहीं आता कि इन लोगों ने, जिनमें बच्चे ही अधिक हैं। क्या अपराध किया है जिससे ये पकड़े गये हैं। ठाकुर दास भी, जिन्होंने पुलिस के खिलाफ पारसाल मानहानि का मामला चलाया था, पकड़े गये हैं। शायद पुलिस की नाराज़गी का यह नतीजा है कि इस प्रकार बेइज्जती हो रही है।

पारसाल चिरगाँव स्टेशन पर से 3-4 मील पर तार कट गया था। सुना है कि एक आदमी ने बयान दिया है कि तार हमने काटा था। हमारी सभा में जिसमें तार काटने की बात तय हुई थी ये लोग शामिल थे। अभी ठीक नहीं मालूम क्या बात है। आज वर्माजी का वकालतनामा लग जायेगा फिर, सब हाल मालूम होगा।

आजकल हम लोग आफत में हैं। न मालूम क्या हो। पुलिस मुझ पर भी खड्गपाणि है। पर अभी तक कोई बात नहीं।

तुम्हें अपनी आफत की खबर देना आवश्यक समझा। और क्या लिखूँ।³⁵

तुम्हारा,

मैथिलीशरण

आदर सम्मान-कवि की दृष्टि में -

गुप्त जी को अपने जीवन में बहुत आदर-सम्मान प्राप्त हुए हैं। गुप्त जी अपनी प्रतिष्ठा को लेकर व्यस्त रहने वाले व्यक्ति नहीं हैं। अपने विशेष सम्मान के अवसर पर भी वे कह देते हैं-

“अरे महाराज, हमारा जो कभी आपने अपमान नहीं किया जो अब सम्मान की आवश्यकता हो। हमें बहुत सम्मान मिल चुका, अब किसी नए का सम्मान होना चाहिए।”³⁶

भारत-भारती की लोकप्रियता-

‘भारत-भारती’ ने गुप्त जी को राष्ट्रकवि के ऊँचे सिंहासन पर बिठाया। ‘साकेत’ ने उसको सार्थक किया। भारत-भारती की रचना के पश्चात् गुप्तजी हिन्दी साहित्य के स्वीकृत व्यक्तित्व बन गए और गुप्तजी की साहित्यिक संभावनाएँ स्पष्ट हो गई। आचार्य द्विवेदी जी और उनके अनुयायी ही नहीं, देश की नवयुवक मंडली भी ‘भारत-भारती’ की मुक्त कंठ से प्रशंसा करती थी।

जयंती और अभिनंदन -

‘साकेत’ के प्रकाशन के पश्चात् हिन्दी की कोई भी परीक्षा ऐसी नहीं रह गई जिसमें गुप्तजी की कोई न कोई रचना पाठ्यक्रम में न हो। 27 अक्टूबर 1936 को काशी में तुलसी-मीमांसा परिषद् की ओर से कवि को गांधी जी के कर-कमलों द्वारा ‘मैथिली-काव्य मान-ग्रंथ’ भेंट कराया गया। काशी में 23 अगस्त 1936 को दीन सुकवि-मंडल तथा साहित्य-मंडल द्वारा कवि की स्वर्ण-जयंती मनाई गई और अभिनंदन-पत्र भेंट किए गए। सन् 1946 में काशी की ‘नागरी प्रचारिणी’ सभा ने कवि की हीरक जयंती का आयोजन किया और उसे दस हजार रूपयें भेंट में दिये। स्वर्ण जयंती की तरह हीरक-जयंती भी जगह-जगह मनायी गयी थी।³⁷

पुरस्कार उपाधि और पद -

‘साकेत’ पर हिन्दुस्तानी एकेडमी ने सन् 1935 में पांच सौ रूपये का पुरस्कार और हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन ने सन् 1937 में बारह सौ रूपये का मंगलाप्रसाद प्रदान किया। मार्च 1952 में उत्तर प्रदेश शासन द्वारा ‘अंजलि और अर्घ्य’ ‘हिडिम्बा’ और ‘पृथ्वीपुत्र’ पर आठ सौ रूपए का पुरस्कार दिया गया, जिसे गुप्त जी ने स्वीकार नहीं किया।

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के करांची अधिवेशन में सन् 1946 में कवि को ‘साहित्य वाचस्पति’ की सम्मानित उपाधि प्रदान की गई। 20 नवम्बर 1948 को आगरा विश्वविद्यालय ने कवि को डी० लिट्० की सम्मानित उपाधि प्रदान की। भारत-सरकार ने सन् 1954 में कवि को ‘पद्मभूषण’ की सम्मानित उपाधि प्रदान की जिसकी सनद

राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्र प्रसाद द्वारा सन् 1955 के लोकतंत्र दिवस पर भेंट की गई। सन् 1952 में वे भारतीय राज्य सभा में राष्ट्रपति द्वारा छः वर्ष के लिए मनोनीत सदस्य हुए। उसकी अवधि की पूर्ति पर वे दुबारा भी मनोनीत हुए। फरवरी 1954 में वे काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग के सम्मानित प्रोफेसर बनाये गए। साहित्यकार संसद प्रयाग के उद्भवकाल से ही गुप्तजी उसके स्थायी अध्यक्ष हैं। थोड़े समय तक गुप्त जी नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी के सभापति भी रहे।³⁸

राष्ट्रकवि -

हिन्दी-साहित्य में गुप्त जी राष्ट्र-कवि के पद पर, निर्विरोध लोकमत से प्रतिष्ठित हैं। गुप्त जी एम०पी०, पद्मभूषण, डॉक्टर या प्रोफेसर के रूप में सुख्यात नहीं हैं, पर उनकी राष्ट्रकवि की पद-प्रतिष्ठा सर्वजन-सम्मत है।

कष्ट, यातनाएँ और निधन -

आर्थिक कष्ट -

गुप्त जी का पारिवारिक वैभव सन् 1900 के पश्चात् नष्टप्राय हो गया। उसे अपने पिता के समय का ऋणशोध करना पड़ा और उसमें कवि की काफी शक्ति लगी। गुप्त जी का कथन है कि उसे “कोई तीस-चालीस वर्ष तक उस संकट से जुझना पड़ा”। सियारामशरणजी का विवाह छोटी अवस्था में हुआ। उनके श्वसुर लखपती थे और कन्या के पश्चात् उनको कोई संतान नहीं हुई। पर आर्थिक संकट के समय उन्होंने कोई सहायता नहीं की। पाँच सात वर्ष पूर्व मेरे भतीजे चि० सुमित्रानन्दन का भी अपने मामा का एक गाँव मिला था, परन्तु हमारा संकट तो प्रभु की कृपा से ही कटा।³⁹

पारिवारिक क्लेश -

वृहत् कुटुम्ब का दायित्व भी बड़ा होता है। जन्म-मृत्यु, विवाहादि तथा व्यय और संचय लगे रहते हैं। गुप्त जी को सर्वाधिक कष्ट पिता और छोटे काका की मृत्यु पर, अपनी द्वितीय पत्नी तथा मुंशी अजमेरी जी के निधन पर तथा सियारामशरण जी की मृत्यु और उनके दो बच्चों के न रहने पर तथा अपने पुत्र सुदर्शन के काल कवलित होने पर हुआ।

रोग-

गुप्त जी सन् 1910-11 में शिरोरोग से पीड़ित थे और उसके पश्चात् अर्श से ग्रस्त हो गये। यह रोग उनका जीवन-संगी बन बैठा। काव्य रचना करते समय गुप्तजी की भूख प्यास चली जाती है और वह दुर्बल हो जाते हैं। गुप्त जी ने सन् 1928-29 में लम्बी बीमारी भोगी। दो-तीन वर्ष पूर्व गुप्त जी को मुम्बई में प्रोस्ट्रेट ग्लैंड्स (Prostrate Glands) की शल्य चिकित्सा करवानी पड़ी।⁴⁰

कारावास-

अचानक गुप्त जी को कारावास भी झेलना पड़ा। सन् 1941 में उन्हें भारत-रक्षा कानून के अन्तर्गत राजबंदी बनाकर झांसी जेल में डाल दिया गया। 10 जून को गुप्त जी को आगरा सेण्ट्रल जेल भेजा गया और यहीं से 14 नवम्बर 1941 को वह मुक्त हुए। जेल में रहकर खूब चर्खा चलाया और जयभारत, अजित, कुणाल-गीत जैसे काव्य ग्रंथ भी लिखे। जेल जीवन के दौरान प्रसिद्ध समाजवादी नेता आचार्य नरेन्द्र देव से उनकी भेंट हुई और इस भेंट ने स्थायी मित्रता का रूप पाया।⁴¹

निधन -

12 दिसम्बर को गुप्तजी ने दिन साधारण रूप से गुजारा। सायंकाल जैसे कि उनकी आदत थी, ताश खेले और परिवार के सदस्यों से बातचीत की। सवा दस बजे जब वे सोने गये तो गुप्त जी को दिल में दर्द उठा और उन्हें अनुभव हुआ कि उनका अन्त निकट आ रहा है। परिवार के सदस्य दौड़े-दौड़े शयनगृह में पहुँचे और झाँसी से पारिवारिक डाक्टर को बुलाया गया। रात को डेढ़ बजे डाक्टर आ गया, लेकिन कुछ कर नहीं सका। लगभग दो बजे राष्ट्रकवि ने राष्ट्र से विदा ली।⁴²

गुप्तजी की मृत्यु के पश्चात् उनके तकिए के नीचे एक कविता मिली थी, जो संभवतः उन्होंने उसी दिन लिखी थी। उस समय लग रहा था कि उन्हें अपने अतंकाल का अभास से गया था। उसमे उन्होंने कहा था-

प्राण न पागल हो तुम यो, पृथ्वी पर है वह प्रेम कहाँ?
मोहमयी छलना भर है, भटको न अहो अब और यहाँ।।
ऊपर को निरखो अब तो, मिलता बस है चिर मेल वहाँ।
स्वर्ग वही, अपवर्ग वही सुख स्वर्ग वही, निजवर्ग जहाँ।।⁴³

व्यक्तित्व -

साधारणतया व्यक्तित्व के दो पक्ष हैं - बाह्य और आन्तरिक। बाह्य पक्ष में रूप आकृति, वेश-भूषा, बोलचाल, रहन-सहन आदि का तथा आन्तरिक पक्ष में स्वभावगत विशेषताओं का समावेश होता है। गुप्त जी के व्यक्तित्व में ये दोनों पक्ष ही अत्यन्त आकर्षक एवं प्रभावशाली हैं।

गुप्त जी आदर्श मानवतावादी कवि हैं। अतः उनके व्यक्तित्व में उपर्युक्त तत्व भरे रहते हैं। गुप्तजी मर्यादा पुरुषोत्तम राम के अटल भक्त हैं। उनके सभी काव्यों का प्रारम्भ उन्हीं के मंगलाचरण से होता है। इस दृष्टि से गुप्त जी परम्परा प्रेमी हैं, 'सीधे-सच्चे पूर्वभाव' के उपासक हैं।

गुप्त जी का बचपन बड़ी ही शान-शौकत में व्यतीत हुआ था। उस समय गुप्त जी मोतियों के झुमके कानों में पहना करते थे। पैरों में चाँदी के कड़े, तोड़े, हाथों में सोने के कड़े, पोहचियाँ और गले में गोप, गुंज एवं कंठ भी समय-समय पर धारण किया करते थे। सिर पर मंडली भी बँधवाते थे। परन्तु सन् 1942 से आपकी वेश-भूषा के अन्तर्गत टोपी आ गई और पगड़ी सदैव के लिए विदा हो गई। पहले कुछ दिनों तक आपने पारिवारिक शोक-चिन्ह के रूप में दाढ़ी भी रख ली थी। मूँछे तो गुप्त जी पहले भी रखते थे। परन्तु जब आप गया गये, वहाँ दाढ़ी और मूँछ दोनों को सदैव के लिए भेंट कर आये। गुप्त जी अत्यंत सरल और सादा जीवन व्यतीत करते थे। आप भारतीय वेश-भूषा के अनन्य पुजारी थे। अतः आप धोती, कुरता और गांधी टोपी पहनना ही पसन्द करते थे। गुप्त जी मझोले कद के व्यक्ति थे और बड़े ही भावुक, उदार एवं मृदुभाषी थे।

गुप्त जी का शारारिक गठन, आकृति एवं वेश-भूषा का प्रतिबिम्ब महादेवी जी के शब्दों में द्रष्टव्य है- "गुप्त जी के बाह्य दर्शन में ऐसा कुछ नहीं है जो उन्हें असाधारण सिद्ध कर सके। साधारण मझोला कद, साधारण पगड़ी, अंगरखा, धोती या उसका आधुनिक संस्करण गांधी टोपी, कुर्ता-धोती और इस व्यापक भारतीयता से सीमित साम्प्रदायिकता का गठबन्धन सा करती हुई तुलसी कंठी। अपने रूप और वेश में वे इतने अधिक राष्ट्रीय हैं कि भीड़ में मिल जाने पर शीघ्र ही नहीं खोज निकाले जा सकते। उनके चौड़े ललाट पर क्रोध और दुश्चिन्ताओं की लिखावाट नहीं है। सीधी भृकुटियों में असहिष्णुता का कुँचन नहीं है। जो विशेषताएँ उन्हें सबसे भिन्न कर देती हैं वे हैं उनकी बंधी दृष्टि और मुक्त हँसी।"¹⁴⁴

गुप्त जी प्रायः कविता लिखते समय फर्श पर गद्दी बिछाकर बैठा करते थे और गुनगुनाते हुए पहले स्लेट पर पेंसिल से कविताएँ लिखा करते थे। जब तक मुन्शी अजमेरी जी जीवित थे, तब तक आप उन्हें सुनाकर और वादविवाद के उपरान्त संशोधन करके फिर अपनी कापी में लिखा करते थे। गुप्तजी कविता के 'मूड' के समय पूर्ण तल्लीन हो जाते थे। और प्रायः काव्य-साधना में थोड़ा बहुत समय नित्य दिया करते थे। गुप्त जी के व्यक्तित्व में तीन विशेषताएँ स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती थीं- रामभक्ति, साहित्य-प्रेम और राष्ट्रीयता। रामभक्ति के कारण आपके हृदय में साहित्य-प्रेम का संचार हुआ, और साहित्य प्रेम ने आपके विचारों को राष्ट्रीयता से परिपूर्ण किया।⁴⁵

प्रकृति प्रेम भी गुप्त जी के व्यक्तित्व का एक अंग रहा है। जो गुप्त जी की भावुकता को प्रकट करता है। प्राकृतिक सौन्दर्य से कवि को सर्जनात्मक प्रेरणा मिलती थी और प्रकृति के अवयवों से वह आत्मीयता का अनुभव करता था। गुप्त जी के जीवन एवं व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता है- आधुनिकता और प्राचीनता का सामंजस्य। गुप्तजी के पारिवारिक जीवन में चिरगाँवता होते हुए भी आँग्ल सभ्यता की नव्य नागरिता का पूर्ण प्रभाव था। यही सम्मिश्रण उनके कृतित्व में भी है। प्राचीन संस्कृति को रूढ़िबद्ध रूप में नहीं बल्कि आधुनिकता के नवीन परिवेश में प्रस्तुत किया है। इसी कारण आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है- 'गुप्तजी की प्रतिभा की सबसे बड़ी विशेषता है कालानुसरण की क्षमता।'⁴⁶

कृतित्व-

(1) देशभक्ति परक कविताएँ-

द्विवेदी-युग के अधिकांश कवि भारतीय संस्कृति का एक अमर संदेश लेकर आए और उन्होंने उसे भारतीय जनता के मानस पटल पर अंकित करने का अभूतपूर्व प्रयास किया। उन्होंने जनता के सम्मुख प्राचीन संस्कृति भारत की झलकियाँ प्रस्तुत करके उसमें नवस्फूर्ति का संचार किया और सांस्कृतिक राष्ट्रीयता का पाठ पढ़ाकर उसमें स्वतंत्रता की तड़प पैदा कर दी।

यों तो द्विवेदी युग में अनेक कवि हुए। लेकिन जितनी ख्याति मैथिलीशरण गुप्त जी को मिली उतनी शायद किसी अन्य कवि को नहीं मिल सकी। दूसरे शब्दों में कहे तो गुप्त जी द्विवेदी युगीन कवियों में प्रमुख हैं।

गुप्तजी की रचनाओं में मुख्य रूप से देशभक्ति परक कविताओं के ही दर्शन होते हैं। जो इस प्रकार से हैं- भारत-भारती, मंगलघट, स्वदेश संगीत, वैतालिक, साकेत, हिन्दू, किसान, गुरूकुल, सिद्धराज, राजा-प्रजा, रंग में भंग, अजित, नुहुष, जयद्रथ-वद्य, काबा और कर्वला, आदि।

सन् 1912 में मैथिलीशरण गुप्त की सुप्रसिद्ध रचना 'भारत-भारती' प्रकाशित हुई। 'भारत-भारती' गुप्त जी की पहली देशभक्ति परक कृति है। जिसमें हम अतीत गौरव की मुखरता प्रमुखता के साथ पाते हैं। देश-भक्ति चेतना को जागृत करने में इस काव्य का महत्वपूर्ण योगदान है।

मैथिलीशरण गुप्त जी ने भारत-भारती की प्रस्तावना में ही कहा था-
प्रिय पाठकगण,

आज जन्माष्टमी है, आज का दिन भारत के लिए गौरव का दिन है। आज ही हम भारतवासियों को यहाँ तक कहने का अवसर मिला था कि-

जय जय स्वर्गागार-सम भारत-कारागार।
पुरुष पुरातन का जहाँ हुआ नया अवतार।⁴⁷

जब तक संसार में भारतवर्ष का अस्तित्व रहेगा, तब तक यह दिन उसकी महिमा का महान् दिन समझा जायेगा, इसमें कुछ भी संदेह नहीं।

मैथिलीशरण गुप्त जी हमारे उद्बोधन काल के कवि हैं। हमारे जीवन में - अर्थात् हमारे राष्ट्रीय, सामाजिक और वैयक्तिक जीवन में, एक काल ऐसा था जो ग्लानिमय, आत्मदीनतापूरित, हीनतापूर्ण और नैराश्यमंडित था। उस समय हम सब जैसे अपना स्वरूप ही भुला चुके थे। हमारा गौरव भूलुंठित और हमारा आत्म-सम्मान-भाव मरणप्राय अवस्था में था। ऐसे समय मैथिलीशरण गुप्त जी हमारे सम्मुख भारत-भारती का ओजपूर्ण संदेश लेकर आए। भारत-भारती के मंगलाचरण में ही उन्होंने जो आशीर्वचनमयी शुभेच्छा प्रकट की, वह पूर्ण हुई है-

मानस-भवन में आर्यजन जिसकी उतारें आरती-
भगवान् ! भारतवर्ष में गूँजे हमारी भारती।
हो भद्रभावोद्धाविनी वह भारती हे भगवते।
सीतापते ! सीतापते ! गीतामते ! गीतामते।⁴⁸

मैथिलीशरण गुप्त जी बहुचर्चित काव्य 'भारत-भारती' में भारत भूमि को पुण्यलीला स्थल, ऋषिभूमि, संसार की सिरमौर तथा अनेक भव-भूतियों का भण्डार बतलाते हुए इसका गौरव प्रकट किया है-

भू-लोक का गौरव, प्रकृति का पुण्य लीला-स्थल कहाँ?
फैला मनोहर गिरि हिमालय और गंगाजल जहाँ।
सम्पूर्ण देशों से अधिक किस देश का उत्कर्ष है?
उसका कि जो ऋषिभूमि है, वह कौन? भारतवर्ष है।⁴⁹

आदर्श, दर्शन, समृद्धि, सभ्यता और संस्कृति की ऊँची चोटी पर विराजमान अतीतकालीन भारतवर्ष कवि के अनुसार, विश्व के सभी देशों से ऊँचा, गर्वोन्नत, भव्य और महत्त्वपूर्ण था-

हाँ, वृद्ध भारतवर्ष ही संसार का सिरमौर है,
ऐसा पुरातन देश कोई विश्व में क्या और है?
भगवान की भव-भूतियों का यह प्रथम भाण्डार है,
विधि ने किया नर-सृष्टि का पहले यही विस्तार है।⁵⁰

भारत-भारती में गुप्तजी ने अपनी उद्बोधनात्मक एवं उपदेशात्मक शैली में, देश के हताश, दलित एवं उत्पीड़ित चैतन्य को, अतीत के गौरवास्पद शौर्य एवं वीरोचित साहस का स्मरण करते हुए, देश की दुर्दशा के विरुद्ध उठ खड़े होने हेतु ललकारा है। वे कहते हैं-

हम कौन थे, क्या हो गये हैं और क्या होंगे अभी,
आओ, विचारें आज मिलकर ये समस्याएँ सभी।
यद्यपि हमें इतिहास अपना प्राप्त पूरा है नहीं,
हम कौन थे, इस ज्ञान को, फिर भी अधूरा है नहीं।⁵¹

भारत-भारती में भारतीय संस्कृति की उज्ज्वलता एवं उत्कृष्टता को बताते हुये गुप्तजी कहते हैं कि हमारी संस्कृति इतनी उन्नत थी कि संसार के लोग हमारा शिष्यत्व ग्रहण करते थे-

यूनान ही कह दे कि वह ज्ञानी-गुणी कब था हुआ?
कहना न होगा, हिन्दुओं का शिष्य वह जब था हुआ।
हमसे अलौकिक ज्ञान का आलोक यदि पाता नहीं,
तो वह अरब यूरोप का शिक्षक कहा जाता नहीं।⁵²

इस प्रकार की गरिमाओं से युक्त भारत देश, सभ्यता एवं संस्कृति में, दूसरे देशों से बड़ा-चढ़ा था। साहित्य और कला कौशल में इसकी बराबरी का कोई देश धरती पर नहीं था। भारत-देश के वीरों की बात का तो कहना ही क्या। कवि के शब्दों में-

थे कर्मवीर कि मृत्यु का भी ध्यान कुछ धरते न थे,
थे युद्धवीर कि कालसे भी हम कभी डरते न थे।
थे दानवीर कि देह का भी लोभ हम करते न थे,
थे धर्मवीर कि प्राण के भी मोह पर मरते न थे।⁵³

इस प्रकार के वीर एवं विशिष्ट विभवों से भरे भारत को परतंत्र होकर अपनी दीन-हीन अवस्था में दिन बिताने पड़े, यह बड़ा ही दुःखदायक है। कवि को इसकी चिंता में आहें भरते देखिए-

भारत, कहो तो आज तुम क्या हो वही भारत अहो।
हे पुण्यभूमि ! कहाँ गई है वह तुम्हारी श्री कहो?
अब कमल क्या, जल तक नहीं, सर मध्य केवल पंक है,
वह राज राज कुबेर अब हा ! रंक का भी रंक है।⁵⁴

कवि मैथिलीशरण गुप्त जी के मत से देश के उद्धार का भार युवकों पर निर्भर है, अतः वह संसार की गतियों-विगतियों को देखकर उसके उन्नयन में योगदान देने का उपदेश देता है-

हे नवयुवाओ ! देशभर की दृष्टि तुम पर ही लगी,
है मनुज जीवन की तुम्हीं में ज्योति सबसे जगमगी।
दोगे न तुम तो कौन देगा योग देशोद्धार में ?
देखो, कहाँ क्या हो रहा है आजकल संसार में? ⁵⁵

साहित्यकार मैथिलीशरण गुप्त जी का आशय है कि देश की एकता की सुरक्षा के लिए एक राष्ट्र-भाषा का होना आवश्यक है-

है राष्ट्रभाषा भी अभी तक देश में कोई नहीं,
हम निज विचार जना सकें जिससे परस्पर सब कही।
इस योग्य हिन्दी है तदापि अब तक न निज पद पर सकी,
भाषा बिना भावैकता अब तक न हममें आ सकी? ⁵⁶

श्री मैथिलीशरण गुप्त जी की देशभक्ति ने देश के किसानों का चित्र प्रस्तुत करके समाज-सुधार की ओर सबका ध्यान आकृष्ट किया है। कवि के अनुसार निरन्तर दुःख में जीवन बिताने वाले किसानों की दशा सुधारे बिना देश की उन्नति नहीं हो सकती।

जब अन्य देशों के कृषक सम्पत्ति में भरपूर हैं
लाते कि जिनसे आठ रूपया रोज के मजदूर हैं,
तब चार पैसे रोज ही पाते यहाँ कर्षक कहो।
कैसे चले संसार उनका किस तरह निर्वाह हो? ⁵⁷

देश की शिक्षा हमारे अतीत गौरव की दृष्टि से अत्यन्त उपहास्य एवं दुःखदायक थी। कवि की देशभक्ति में इस पर भी जोर डाला है-

सबसे प्रथम कर्तव्य है शिक्षा बढ़ाना देश में,
शिक्षा बिना ही पड़ रहे हैं आज हम सब क्लेश में।
शिक्षा बिना कोई कभी बनता नहीं सत्पात्र है,
शिक्षा बिना कल्याण की आशा दुराशा मात्र है। ⁵⁸

मैथिलीशरण गुप्त जी की देशभक्ति रचनाओं में एक रचना है 'मंगल-घट'। मंगल घट 62 कविताओं का एक संग्रह है। मंगल-घट का प्रथम प्रकाशन सन् 1937 में हुआ था।

देशभक्ति का स्वर 'भारत-भारती के बाद हमें मंगल-घट एवं स्वदेश-संगीत में मुखरित हुआ मिलता है। गुप्त जी मातृभूमि भारत का स्तवन करते हुए कहते हैं-

नीलाम्बर परिधान हरित पट पर सुन्दर है,
सूर्य-चन्द्र युग मुकुट, मेखला रत्नाकर है,
नदियाँ प्रेम-प्रवाह, फूल तारे मण्डन है,
वन्दीजन खग-वृन्द, शेष फन सिंहासन है,
करते अभिषेक पयोद है, बलिहारी इस वेष की।
हे मातृभूमि, तू सत्य ही सगुण मूर्ति सर्वेश की। ⁵⁹

मातृभूमि की कुछ पंक्तियाँ बड़ी ही लोकप्रिय हुई। जो देशभक्ति भावना से ओतप्रोत थी। उनमें से कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार से हैं-

जिसकी रज में लोट लोट कर बड़े हुए हैं,
घुटनों के बल सरक सरक कर खड़े हुए हैं,
परमहंस सम बाल्य काल में सब सुख पाये,
जिसके कारण 'धूलि-भरे हीरे' कहलाये,
हम खेले-कूदे हर्ष युत जिसकी प्यारी गोद में।
हे मातृभूमि, तुझको निरख मग्न क्यों न हों मोद में?⁶⁰

श्री मैथिलीशरण गुप्त ने मंगल-घट में अपनी श्रेष्ठ देशभक्ति कविताओं का संग्रह किया था। जिसमें से एक थी विशाल भारत इसमें भारत-माता के ऊपर कविताएँ लिखी गयी थीं। जिसमें कवि ने कहा था-

उठ, ओ वृहद्, विराट, विशाल।
उठ अमिताभ, लाभ कर निज पद
लुटा, लक्ष्य पर लाल।⁶¹

मैथिलीशरण गुप्त जी का मानना है कि देशभक्ति की भावना सामाजिक एकता में है, जातिगत विरोध में नहीं। इसलिए गुप्त जी मातृमन्दिर नामक कविता में कहते हैं।

जैन बौद्ध फारसी यहूदी मुसलमान सिक्ख ईसाई
कोटि कंठ से मिलकर कह दें हम सब हैं। भाई-भाई।⁶²

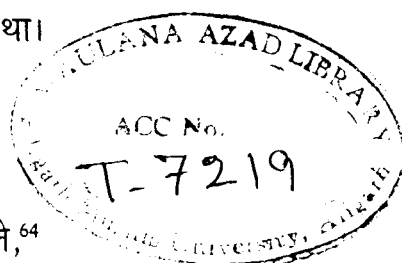
कवि श्री गुप्त जी की कविताओं में देशभक्ति कूट-कूट कर भरी हुई थी। मंगल-घट में गुप्त जी ने भारत जैसे विशाल देश को जगाते हुए कहते हैं-

धर्म राम का, कर्म कृष्ण का प्रेम बृद्ध का धार,
ओर अहिंसा महावीर की, सर्व समन्वय-सार।
कौन संभाल सकेगा तुझको, स्वयं स्वरूप संभाल,
उठ, ओ वृहद्, विराट, विशाल।⁶³

स्वदेश संगीत गुप्त जी की 65 कविताओं का संकलन है जिसका प्रथम प्रकाशन सन् 1925 में हुआ था। देशभक्तियुक्त एवं निराख्यानक कविताएँ इसमें संकलित हैं। वस्तुतः स्वदेश संगीत भी भारत-भारती की कोटि में आता है।

स्वदेश संगीत का मंगलाचरण बड़ा छोटा था और बिल्कुल नये प्रकार का था। उसकी एक-एक पंक्ति से देश-प्रेम निकल रहा था।

राम, तुम्हें यह देश न भूले,
धाम-धरा-धन जाय भले ही,
यह अपना उद्देश्य न भूले।
निज भाषा, निज भाव न भूले,⁶⁴



पराधीनता अत्यन्त दुःखदायक होते हुए भी एक रक्त रंजित क्रान्ति के लिए कवि की लेखनी प्रेरणा नहीं प्रदान कर सकती है। कवि के देश-प्रेम में राष्ट्र-पिता गांधी जी का आदर्श समक्ष है-

हमारी असि न रूधिर-रत हो,
न कोई कभी हताहत हो।⁶⁵

मैथिलीशरण गुप्त जी ने स्वदेश-संगीत में देश-प्रेम सम्बन्धी बहुत रचनाएँ की हैं, स्वतंत्रता की लड़ाई का विवरण यहाँ सशक्त शब्दों में प्रस्तुत किया गया है-

अस्थिर किया रोप वालों को,
गांधी टोपी वालों ने।
शस्त्र बिना संग्राम किया है
इन माई के लालों ने।⁶⁶

स्वदेश-संगीत में बलिदान की प्रखर चेतना है। मातृभूमि की बलिदेवी पर बलिदान होने वाले सपूतों का भौतिक शरीर भले ही विनष्ट हो जाय किन्तु उनका यश शरीर संसार में सदा विद्यमान रहता है। स्वदेश संगीत में गुप्त जी की ओजपूर्ण हुंकार कोटि-कोटि हृदयों का स्पर्श करती हुई गूँज उठती है-

धरती, हिल कर नींद भगा दे, वज्रनाद से व्योम जगा दे।
दैव, और कुछ आग लगा दे, निश्चय करूँ कि भारत हूँ मैं,
हूँ या था, चिंतारत हूँ मैं।⁶⁷

श्री मैथिलीशरण गुप्त जी सामाजिक रूढ़ियों का विरोध करते हैं। उनकी दृष्टि में मानव मात्र में भेद करना व्यर्थ है। जाति-पाँति के बंधनों में जकड़ा देश अंततः पतन को प्राप्त होता है। गुप्त जी की देशभक्ति की ओजपूर्ण वाणी युवा-पीढ़ी को युग-युग तक बलिदान के लिए प्रेरित करती रहेगी।-

पूत कर्म कर मातृभूमि के बनो विशेष सपूत,
छूत बुरी है, अहोभाग्य है यदि हम हुए अछूत।⁶⁸

कवि मैथिलीशरण गुप्त जी ने वैतालिक की रचना सन् 1917 में की और उसका पुस्तकाकार प्रकाशन सन् 1918 में हुआ। इसमें गुप्तजी ने भारतवासियों को जगाया है तथा अपनी संस्कृति का पाश्चात्य संस्कृति के साथ सामंजस्य स्थापित करने का उपदेश दिया है।

मैथिलीशरण गुप्त जी ने भारत के गौरव का स्मरण करके दूसरों से भी उसी का स्मरण करने और जागकर काम करने का उद्बोधन करता है।-

भारत माता के बच्चे,
विश्व बन्धु तुम हो सच्चे।
फिर तुमको किसका भय है,
उद्यत हो जय ही जय जय है।⁶⁹

कवि श्री गुप्त जी के समय में देश पतन की ओर जा रहा था, फिर भी कवि का दृढ़ विश्वास है कि भारत में पुनः जाग्रत होने की शक्ति है। अतः देशभक्ति भावना से प्रेरित होकर कवि देशवासियों को जागरण का सन्देश देता है-

यह सोने की मूर्ति उषा, नव स्फूर्ति की पूर्ति उषा।
जागा रही है, जागो, जागो, कर्तव्यों में लगो, लगो।।
X X X
यह सोने का थाल लिये, उज्ज्वल उन्नत भाल किये
सृष्टि तुम्हारे लिए खड़ी, दृष्टि तुम्हारी किधर पड़ी।⁷⁰

मैथिलीशरण गुप्त जी का उद्देश्य भारतीय जनता को देश के पूर्व गौरव को स्मरण दिलाना एवं उन्हें जागृत करना है। काव्य के प्रारम्भ में कवि कहता है-

फिर अपने को याद करो,
उठो, अलौकिक भाव भरो।⁷¹

साकेत का सर्वप्रथम प्रकाशन सन् 1932 में हुआ था। नारी की महत्ता, पारिवारिक सम्बन्ध, राजा-प्रजा का सम्बन्ध, देशभक्ति, कला, उपयोगितावाद आदि पर व्याख्यान भी इसमें हुआ है।

मैथिलीशरण गुप्त जी ने भारतवर्ष को भगवद्भूमि कहा है। गुप्त जी ने उन्हीं व्यक्तियों को धन्य और पुण्यात्मा माना है। जो भारतवर्ष में उत्पन्न हुए हैं-

धन्य दशरथ जनक पुण्योत्कर्ष है,
धन्य भगवद्भूतिम - भारतवर्ष है।⁷²

राष्ट्रकवि गुप्त जी की ऐसी धारणा है कि जिस देश में जितने अधिक राज्य होंगे, वह देश उतना ही बलहीन और बिखरा हुआ सा दिखाई देगा, यथा-

एक राज्य न हो, बहुत से हो जहाँ,
राष्ट्र का बल बिखर जाता है वहाँ।⁷³

साकेत के एकादस एवं द्वादश सर्ग देशभक्ति भावनाओं से परिव्यापत है, जिनके मूल में प्राचीन भारत का संघर्ष शक्ति विहान पूर्ण रूपेण विद्यमान है जब भरत नंदीग्राम में साधु बनकर निवास करते हैं और जब उन्हें लंकापुरी का समस्त दृश्य ज्ञात होता है। उस समय वे साधुता त्याग करके भारतीय मान-मर्यादा की रक्षा के लिए अस्त्र उठाना अपना कर्तव्य समझते हैं वे कहते हैं-

भारत-लक्ष्मी पड़ी राक्षसों के बन्धन में,
सिन्धु पार वह विलख रही है व्याकुल मन में।
बैठा हूँ मैं भण्ड साधुता धारण करते
अपने मिथ्या भरत नाम को नाम न धरके-⁷⁴

साकेत की नायिका उर्मिला अपने देवर शत्रुघ्न को देशभक्ति की भावना से प्रेरित करती है। और यह सुझाव देती है, कि जीवन में अनेक लक्ष्य होते हुए भी तुम्हारा एक मात्र लक्ष्य मातृभूमि को मान-सम्मान देना ही हो-

मातृभूमि का मान ध्यान में रहे तुम्हारे
लक्ष लक्ष भी एक लक्ष रक्खों तुम सारे।⁷⁵

रंग में भंग गुप्त जी का सर्वप्रथम मौलिक खण्डकाव्य है। इसका प्रकाशन सन् 1909 में हुआ था। समस्त रचना दो भागों में विभक्त है। प्रथम भाग में राजकुमारी के आदर्श चरित्र तथा पतिपरायणता का उल्लेख है तथा द्वितीय भाग में कुम्भा की देशभक्ति प्रदर्शित की गई है

द्वितीय खण्ड में गोनोली नरेश लाखा बून्दी का गढ़ तोड़ने की प्रतिज्ञा करता है। उसका क्रोध शान्त करने के लिए एवं प्रतिज्ञापूर्ति को बून्दी के एक कृत्रिमगढ़ का निर्माण कराया जाता है किन्तु वीरवर कुम्भ जो पहले ही गोनोली नरेश के यहाँ रहता था जो बून्दी का रहने वाला था और वह कृत्रिम दुर्ग को भी तोड़ने नहीं देता है। वह अपनी मातृभूमि के स्वाभिमान की रक्षा के लिए अपने प्राणों का बलिदान देता है। बून्दी के कृत्रिम दुर्ग के अवलोकन मात्र से उसके हृदय में देशप्रेम उमड़ता है और वह कहता है-

प्राण बेचे हैं तुम्हें बेचा न मैंन मान है,
धर्म के सम्बन्ध में नृप और रंक समान है।
वन्दना उस दुर्गकी करने लगा वह भाव से
शीश पर उसने वहाँ की रज चढ़ाई चाव से।⁷⁶

मैथिलीशरण गुप्त की कविता देश-भक्ति की मिसाल है। वह जननी जन्मभूमि को स्वर्ग से भी श्रेष्ठ मानते हैं। रंग में भंग का हाड़ा कुम्भ नकली दुर्ग की रक्षा करता हुआ वीरगति को प्राप्त करता है। उसका स्वाभिमान जन्म भूमि के प्रतीक दुर्ग के रक्षार्थ जाग उठता है-

तोड़ने दूँ क्या इसे नकली किला मैं मान के,
पूजते हैं भक्त क्या प्रभु-मूर्ति को जड़ जान के?
हैं न कुछ चिन्तौर यह, बूँदी इसे अब मानिये,
मातृ-भूमि-पवित्र मेरी पूजनीया जानिए।⁷⁷

गुप्त जी ने मातृभूमि की रक्षा करना देशवासियों का महान् कर्तव्य माना है। वीर कुम्भा का कथन इस बात का समर्थन करता है कि माता और मातृभूमि स्वर्ग से भी श्रेष्ठ है। अतः उनकी रक्षा अपने प्राणों को देकर भी करनी चाहिए-

स्वर्ग से भी श्रेष्ठ जननी जन्म-भूमि कही गई,
सेवानीया है सभी की वह महा महिमामयी।⁷⁸

भारत-भारती के तौर पर लिखा हुआ एक जातीय काव्य है हिन्दू। इसका प्रकाशन सर्वप्रथम सन् 1927 में हुआ था।

हिन्दू में कवि ने हिन्दुओं की सर्वांगीण स्थिति का विश्लेषण करते हुए जागृत होने का उपदेश दिया है। साथ ही साथ अन्य धर्मावलम्बियों को भी हिन्दुओं के साथ मिलजुल कर रहने और देश की उन्नति के उपयुक्त काम करने का उपदेश दिया है। जो गुप्त जी की समन्वयवादी दृष्टि की द्योतक है। कवि का मुसलमानों के प्रति कथन है-

तुम हो वीर बली विक्रांत
किन्तु न हो भाई, तुम भ्रान्त
हिल-मिलकर रहने में श्रेय
और उसी में अपना प्रेय।⁷⁹

समाज-सुधार में हिन्दू समाज के प्रति कवि का विशेष आकर्षण द्रष्टव्य है। किन्तु कवि ने अपनी देशभक्ति-भावना से उसे नये रंग में रंगा है। यथा-

तुम हो विश्व-कुटुम्बी आर्य, हो तद्रूप तुम्हारे कार्य,
प्रेम, देश को करके पार, करे विश्व में पुनः प्रसार।
करके पहले आत्म-सुधार, कर लो भारत का उद्धार,
फिर लोकोपकार में लीन, विचरों सभी कहीं स्वाधीन।⁸⁰

हिन्दू काव्य का नाम भले ही भ्रामक प्रतीत होता हो, मगर गुप्त जी ने इस काव्य में भी साम्प्रदायिक एकता पर विशेष बल दिया है। जो देश की उन्नति के लिए आवश्यक है। गुप्त जी अत्यधिक नम्रता से कहते हैं-

मुसलमान भाई, हो शांत, सोचो तुम्हीं तनिक एकांत।
रहे तुम्हारा कुछ भी बोध, हमको तुमसे नहीं विरोध।
मातृभूमि का नाता मान, है दोनों के स्वार्थ समान।⁸¹

स्वतंत्रता की अदम्य आकांक्षा गुप्त जी के हिन्दू काव्य में उमड़ती-घुमड़ती रही है। गुप्त जी का उद्घोष है-

हम निश्चित हैं कृत संकल्प।
लेंगे क्या स्वराज्य से अल्प।⁸²

किसान का प्रथम प्रकाशन सन् 1917 में हुआ था। किसान की कथावस्तु एक किसान का सम्पूर्ण जीवन है। जिसमें उसके सुख-दुःख, आमोद-प्रमोद सब समाहित है,

कल्लू अपने जीवन से व्यथित होकर देशत्याग कर देता है, कुली का जीवन यापन करता है। यद्यपि कल्लू की पत्नी को चाहे भले ही अपने देश में रहकर जल के स्थान पर अश्रुपान करना पड़ा हो किन्तु संसार का परित्याग करते समय अपनी शव के पुष्प भारत पहुँचाने की कामना प्रकट करती है इस दम्पति में देश-प्रेम की भावना कूट-कूट कर भरी है। कल्लू की स्त्री कहती है-

लो बस अब मैं चली सदा को मन में मत घबराना,
मेरे फूल जा सको तुम तो, भारत को ले जाना।⁸³

देशभक्ति की भावना कल्लू के चारित्रिक गुण में निहित है। जिस देश में उसे भूखों रहना पड़ता था, देश से दूर होने पर वह अपने देश को पुनः आने की आकांक्षा रखता है-

भारत ! फिर क्यों तू याद आ रहा मुझको?
क्यों दिन दिन अपने निकट ला रहा मुझको?⁸⁴

मैथिलीशरण गुप्त जी की मान्यता है कि भले-ही मनुष्य विदेश में चला जाय, लेकिन उसके हृदय में सदैव ही अपने कुल की ओर स्वदेश प्रेम की भावना सजग रहती है-

तुझमें अब भी कुल रीति-नीति है मेरी,
 इस कारण तुझपर परा प्रीति है मेरी।
 पाता हूँ जग में कहीं न तेरी समता,
 होती विदेश में ही स्वदेश की ममता।।⁸⁵

सिद्धराज गुप्त जी की प्रौढ़ रचनाओं में एक है, जिसका प्रकाशन सन् 1936 में हुआ था। सिद्धराज का प्रधान पात्र सिद्धराज जयसिंह है। सारी कथा उससे सम्बद्ध है। काव्य में उनकी शूरवीरता एवं क्षात्ररूप का उज्ज्वल चित्रण हुआ है। सिद्धराज काव्य के द्वितीय सर्ग में जयसिंह मालवा पर आक्रमण करता है। जगदेव वहाँ का प्रमुख सेनानी है। देशभक्ति की भावना उसमें उत्साह का संचार करती है-

मेरी यह जन्मभूमि जननी जगत में
 मेरे प्राण रहते रहेगी महारानी ही।
 किंकरी न होगी किसी अन्य नरपाल की।⁸⁶

मैथिलीशरण गुप्त जी उन्हीं नर-नारियों को और उनके सगे-सम्बन्धियों को धन्य मानते हैं। जो मातृभूमि की गौरव-रक्षा के लिए वीरगति को प्राप्त होते हैं-

किन्तु धन्य हैं वे नर-नारी धन्य, जिनके
 पुत्र; पति, भाई और बंधु बढ़-बढ़ के
 वीरगति पावें रख मान मातृभूमि का।⁸⁷

मैथिलीशरण गुप्त जी को अपने देश से जितना प्रेम है उतना ही भारतीय संस्कृति से भी है। गुप्त जी भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठता का उद्घोष करते हुए कहते हैं कि अंततः समस्त संस्कृतियाँ इसी संस्कृति में विलीन हो जायेंगी-

आर्य-भूमि अंत में रहेगी आर्य भूमि ही,
 आकर मिलेगी यही संस्कृतियाँ सबकी,
 होगा एक विश्व-तीर्थ भारत ही भूमि का।⁸⁸

मैथिलीशरण गुप्त जी की जयद्रथवध का प्रथम प्रकाशन सन् 1910 में हुआ था। जयद्रथवध की कथावस्तु महाभारत पर आधारित है मैथिलीशरण जी जयद्रथवध में देशवासियों का उद्बोधन करते हुए कहते हैं-

अधिकार खोकर बैठा रहना यह महा दुष्कर्म है।
 न्यायार्थ अपने बन्धु को भी दण्ड देना धर्म है।⁸⁹

कवि ने जयद्रथवध में भारतवर्ष के गौरव का भी वर्णन किया है वह भारतभूमि को विश्व में सर्वोत्तम मानते हैं-

अन्यत्र दुर्लभ है भुवन में बात यो उत्कर्ष की।
सचमुच कहीं समता नहीं है, भव्य भारतवर्ष की।।⁹⁰

मैथिलीशरण गुप्त जी गुरूकुल काव्य में मातृभूमि की रक्षा के लिए बलिदान को ही देश की उन्नति माना है-

जिस कुल, जाति, देश के बच्चे
दे सकतें हैं यों बलिदान
उसका वर्तमान कुछ भी हो,
पर भविष्य है महा महान।⁹¹

काबा और कर्बला एक खण्डकाव्य है। सन् 1942 में इसका प्रथम प्रकाशन हुआ। काबा और कर्बला में गुप्तजी ने जातिगत वैमनस्य को मानवता का सर्वोपरि शुत्र बताते हुए हिन्दू-मुस्लिम एकता की भावना को सुदृढ़ बनाने का प्रयास किया है। वे हजरत साहब से कहलवाते हैं-

भारत का सद्भाव सुन चुका हूँ मैं पहले,
वह है ऐसी भूमि विभिन्न मतों को सहले।
चाहा था इसलिए वही जाकर रह जाऊँ,
किन्तु विरोधी नहीं चाहते मैं जी पाऊँ।।⁹²

हिन्दू-मुसलमान भारत माँ के दो बलवान् पुत्र हैं। दोनों मिलकर विदेशी शासन से लोहा ले, तभी वंदिनी भारतमाता मुक्त हो सकती है। युग की यह एक बहुत बड़ी मांग थी। गुप्त जी ने इसे ध्यान में रखकर काबा और कर्बला की रचना की। एकता तभी सम्भव है, जब हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई, की जगह मानवता पर बल दिया जाए। कवि ने मुहम्मद साहब के विचार इस प्रकार रखे-

यह सारा संसार है उस प्रभु का परिवार,
सबसे रखना चाहिए प्रेमपूर्ण व्यवहार।
यही ईश्वरोपासना, यही धर्म का मर्म,
एक दूसरे के लिए करें यहाँ हम कर्म।⁹³

राजा प्रजा काव्य में कवि ने राजतन्त्र और प्रजातन्त्र के दोनों पक्षों को प्रस्तुत किया है। इसका प्रथम प्रकाशन सन् 1956 में हुआ था।

मैथिलीशरण गुप्त जी की दृष्टि में धर्म, देशभक्ति और विश्व प्रेम में बाधक नहीं है। इसका लक्ष्य विश्वबन्धुत्व है। राजा-प्रजा काव्य में कवि कहता है-

किन्तु हमारा लक्ष्य, एक अम्बर, भू, सागर,
एक नगर-सा बने विश्व, हम उसके नागर।⁴⁹

राजा-प्रजा में गुप्त जी ने लोकतांत्रिक पर बल दिया है। मानव को मानव बनने के लिए संप्रेरित किया है। विश्व मानवता की इसमें प्रतिष्ठा हुई है। संकीर्णता से ऊपर उठने का आह्वान करते हुए वे कहते हैं-

बढ़ो बन्धुओं, हीन भाव से ऊपर उठकर,
रहो न तुम संकीर्ण वायुमण्डल में घुटकर।⁵⁰

नहुष काव्य का सर्वप्रथम प्रकाशन सन् 1940 में हुआ था। कवि ने इसमें मानव के दानव न होकर देव बनने की गाथा गाई है।

नहुष अपनी मातृभूमि को इतना पवित्र मानते हैं कि उस पर नक्षत्र-लोक को भी न्यौछावर करने की सोचते हैं-

मेरी भूमि तो है पुण्यभूमि वह भारती,
सौ नक्षत्र-लोक करें आके आप आरती।⁵¹

अपने कारावास जीवन की स्मृति के रूप में गुप्त जी ने कारावास नाम से प्रस्तुत रचना का प्रणयन शुरू किया था परन्तु अजित नाम से सन् 1946 में यह प्रकाशित हुआ। यह आत्मकथानक शैली पर लिखा गया सामयिक जीवन से सम्बन्ध एक वर्णनात्मक खण्डकाव्य है। इसमें वर्णित घटनायें सच्ची हैं। देशकाल और पात्र ही विभिन्न हैं।⁵²

पराधीनता के बन्धन में पड़ी सड़ने वाली जनता के वक्ता के रूप में देशप्रेमी कवि ने अपनी वाणी मुखरित की है। अहिंसा के आधार पर स्वतंत्रता के लिए आन्दोलन किये बिना और कोई चारा नहीं है। ऐसी परिस्थिति में कवि कहता है-

प्रतिपक्षी भी देख स्वतः बलिदान हमारा,
होकर अवश अवश्य करेगा कुछ निपटारा।⁵³

मैथिलीशरण गुप्त जी ने अजित नामक काव्य में श्यामसिंह नामक एक ऐसे पात्र की अवतारणा की है, जो भारतमाता की सेवा करने के लिए अपनी रूशण माता को विष तक दे देता है। कवि अंग्रेजों के अत्याचारों से क्षुब्ध है। गुप्त जी ने फिरंगियों के प्रति आक्रोश प्रकट किया है-

मूर्तिमान ये श्वेत कुष्ठ से हममें फूटे।
मरना भी है भला पिण्ड यदि इनसे छूटे।⁹⁹

गुप्त जी की कृतियों में बलिदान की प्रखर चेतना है। वे भारतवासियों को कष्ट सहन करते हुए कर्तव्य-पथ पर अग्रसर होने का संदेश देते हैं। गुप्त जी की वाणी में देश की बलिवेदी पर प्राणोत्सर्ग की अदम्य उमंग है-

दस्यु विदेशी कहे, हठी चाहे हत्यारा,
हमको अपना देश-धर्म प्राणों से प्यारा।¹⁰⁰

(2) भक्ति-भावना प्रधान कविता-

‘भक्ति’ शब्द भज् सेवायाम् धातु से ‘कितन्’ प्रत्यय जोड़कर बना है। जिसका अर्थ है- भगवान का सेवा-प्रकार। प्रसिद्ध ग्रंथ शाण्डिल्य भक्ति सूत्र के अनुसार ईश्वर में परम अनुरक्ति ही भक्ति है। नारदीय भक्ति सूत्र में भक्ति को ईश्वर के प्रति परम प्रेमरूपा और अमृत स्वरूपा बतलाया है।¹⁰¹

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने श्रद्धा और प्रेम के योग का नाम भक्ति माना है।¹⁰²

मैथिलीशरण गुप्त ने भक्ति को निर्मुण-सगुण के द्वन्द से पृथक् रखकर राम-श्याम के श्यामल रंग में सरावोर किया।

मैथिलीशरण गुप्त के पिता सेठ रामचरण सात्विक विचारों के परम वैष्णव राम-भक्त थे। गुप्त जी को भगवद् भजन और तुकबन्दी करने की प्रारम्भिक प्रेरणा अपने पिता से ही प्राप्त हुई। वह परम राम-भक्त थे। राम में ही नहीं, अपितु सभी देवी-देवताओं और उनके अवतारों में उनकी अटूट श्रद्धा थी। उन्होंने अपने प्रत्येक ग्रंथ का मंगलाचरण इष्टदेव की वंदना के रूप में किया है।

मैथिलीशरण गुप्त की भक्ति-भावना हमें द्वापर, झंकार, जयभारत, यशोधरा, नहुष, सिद्धराज, साकेत, विष्णुप्रिया, काबा और कर्बला, अनद्य, जयद्रथवद्य, वकसंहार, शक्ति, पृथ्वीपुत्र आदि ग्रंथों में मिलती है।

‘द्वापर’ का सर्वप्रथम प्रकाशन सन् 1936 में हुआ था। द्वापर की रचना के पूर्व तक कवि पुराणों में महाभारत और रामायण से कथानक लेकर काव्य-सृष्टि करता रहा तो द्वापर में भागवत को अपना काव्य-विषय बनाते नज़र आता है।

मैथिलीशरण गुप्तजी राम के अनन्य प्रेमी हैं। राम को वे अपना इष्टदेव मानते हैं और उनके प्रति अटूट श्रद्धा एवं अगाध प्रेम प्रकट करते हैं। इसीकारण गुप्तजी ‘द्वापर’ खण्डकाव्य में श्रीकृष्ण का स्तवन करते हुए भी राम के प्रति अपने अनन्य प्रेम को नहीं भूलते और मंगलाचरण में स्पष्ट कहते हैं-

धुनर्बाण वा वेणु लो श्याम रूप के संग,
मुझपर चढ़ने से रहा राम! दूसरा रंग।¹⁰³

द्वापर के गोपी-प्रसंग में गुप्त जी ने द्वैत और अद्वैतवाद की मिश्रित विचार धारा व्यक्त की है-

यह क्या, यह क्या, भ्रम या विभ्रम ?
दर्शन नहीं अधूरे,
एक मूर्ति, आधे में राधा
आधे में हरि पूरे।¹⁰⁴

प्रायः सभी धर्मों और धर्म ग्रंथों में गुप्त जी की आस्था है। श्रीमद् भगवद् गीता में उनके व्यक्तित्व को अधिक प्रभावित किया। गीता की सर्वधर्मान्परित्यज्य दिव्य सूक्ति का द्वापर में उन्होंने उत्कृष्ट भावानुवाद कर दिया है-

कोई हो, सब धर्म छोड़ तू
आ, बस मेरा शरण धरे,
डर मत, कौन पाप वह जिससे
मेरे हाथों तू न तरे ?¹⁰⁵

झंकार का सर्वप्रथम प्रकाशन सन् 1929 में हुआ था। झंकार में संगृहीत गीतों में अधिकांश भक्तिपरक हैं जो कवि का प्रिय विषय हैं। मैथिलीशरण गुप्त जी ने झंकार काव्य में रमा है सबसे राम-प्रसंग का भव्य भक्तिभाव परिलक्षित होता है-

रमा है सब में राम,
वही सलोना श्याम।¹⁰⁶

कवि श्री गुप्त जी ने झंकार के आरम्भ और मंगलाचरण में अपने परमआराध्य मर्यादा पुरुषोत्तम राम की स्तुति की है-

राम वही कि पतित-पावन जो
परम दया का धाम है,
इस भव-सागर के उद्धारक
तारक जिसका नाम है।
हृदय, भव का क्या काम है।¹⁰⁷

मैथिलीशरण गुप्त जी कुछ रचनाओं में द्वैत और अद्वैतवाद की मिश्रित विचाराधारा परिलक्षित होती है-

हुआ एक होकर अनेक वह
हम अनेक से एक,
वह हम बना और हम वह यों
अहा। अपूर्व विवेक।
भेद का रहे न नाम।
रमा है सब में राम।¹⁰⁸

झंकार काव्य में कवि ने ज्ञान और भक्ति का सहज समन्वय प्रस्तुत किया है। वस्तुतः ज्ञान की चरम अवस्था ही तो भक्ति है। भक्ति के आविर्भाव से जीव की सारी भटकन का अंत हो जाता है। भला प्रकाश में कोई कब भटकता है?-

“सुनों, खोजता है जो मुझको
कहीं नहीं पाता है,
यह पुकारना किन्तु आप ही
मुझे खींच लाता है
हुई अहा। उजियाली,
मैं यों ही भटकी हे अली।¹⁰⁹

मैथिलीशरण गुप्त जी की काव्य-साधना की विजयित्री ललित एक विशाल काव्य कृति है जय-भारत। इसका सर्वप्रथम प्रकाशन सन् 1952 में हुआ था।

जयभारत में गुप्त जी ने अपने परम आराध्य मर्यादा पुरुषोत्तम राम के प्रति भक्ति-भाव ध्वनित करते हैं-

मनुज मानस में तरंगित बहु विचार स्रोत,
एक आश्रय, राम के पुण्याचरण का पोत।¹¹⁰

तीर्थ स्थानों की महिमा के स्मरण में गुप्त जी ने जयभारत में लोमश महर्षि के द्वारा सारे तीर्थों में दो बार हो आने का उल्लेख किया है महर्षि का अर्जुन को समझना भी इस बात का प्रमाण है: यथा-

रूचे तो कुछ विचर लो,
तीर्थ-यात्रा क्यों न तुम इस बीच कर लो।
पूर्वजों के त्याग-तप की स्मृति वहाँ है,
चारणा है, धारणा है, घृति वहाँ है।
नियम-संयम-साधना-क्षमता-क्षमा है,
और अपनी पुण्य-भूमि-परिक्रमा है।¹¹¹

कवि जयभारत में भगवान के विराट रूप का चित्रण करता हुआ उनकी विशालता अनन्त शक्ति सम्पन्नता एवं प्रचण्डता का गुणगान कर रहा है-

भूमि से नभ तक पिण्डाकार, ज्वलित या तेज-पुंज अपार।
प्रभा से दसों दिशाएँ पाट, प्रकट या प्रभु का रूप विराट।
दीप्त बहु-उदर-मुख-नेत्र, केश तक ये किरणों के क्षेत्र।
पतङ्गों से उड़-उड़ ग्रह लोक, लीन होते थे पीनस्तोक।¹¹²

मैथिलीशरण गुप्त जी ने यशोधरा का प्रणयन सन् 1932 में किया। कवि के शब्दों में यशोधरा कविता, गीत, नाटक, गद्य-पद्य और तुकान्त अतुकान्त सब कुछ है।¹¹³ इसमें कवि ने वैष्णव सिद्धान्तों की स्थापना की है।

कवि ने यशोधरा काव्य का निर्माण गोप एवं गौतम की कथा का दिग्दर्शन कराने के लिए किया है, परन्तु उसके मंगलाचरण में भी आप सर्वप्रथम अपने इष्टदेव राम का ही स्तवन करते हैं-

राम, तुम्हारे इसी धाम में नाम-रूप-गुण-लीला लाभ।
इसी देश में हमें जन्म दो, लो प्रणाम हे नीरज नाथ।¹¹⁴

कवि को यह विश्वास है कि भगवान् की भक्ति ही मोक्ष प्रदायिनी है तब वह भगवान् से और कुछ नहीं माँगता अर्थात् न तो वह सांसारिक भोगों की ही कामना करता है और न वह मोक्ष या मुक्ति ही माँगता है। इसलिए तो कवि यशोधरा में कह रहा है

भुक्ति-मुक्ति माँगे क्या तुमसे,
हमें भक्ति दो, ओ अमिताभ।¹¹⁵

विष्णुप्रिया का सर्वप्रथम प्रकाशन सन् 1957 में हुआ था। विष्णुप्रिया का चरित्र-चित्रण कवि ने अत्यन्त सुन्दर ढंग से किया है। उसकी भावतन्मयता, गृह-त्याग, भगवद्भक्ति आदि उसकी चरित्रगत विशिष्टताएँ हैं।

विष्णुप्रिया में नारी जीवन की भक्ति साध्वी कुलबाला बनकर उसके अन्तः में उत्पन्न हो रही है, और क्रमशः जीवन को तपाकर निखारती जा रही है। उस हृदय की आन्तरिक तपन में दूसरों को तपा देने की शक्ति है, क्योंकि उसमें जीवन का सबसे महत्त्वपूर्ण भाग समर्पण है। यही समर्पण भक्त के हृदय की श्रद्धा है। जिसके नाद को सुनकर स्वयं भगवान् भक्त के पास चलकर आते हैं-

नाम साधु हो तुम तो मैं थी
हूँ साध्वी कुलबाला
तप्त करेगी तुम्हें एक दिन
इसअन्तस् की ज्वाला।¹¹⁶

भक्ति के मार्ग में किसी भी प्रकार का जातिभेद नहीं है। भक्ति ही प्रधान है, उसके कर्म ही प्रधान है जो उसे उस अंतिम छोर तक ले जा सकते हैं। जहाँ जीवन की मुक्ति है।

आया जो उसी को अपनाया गौरहरि ने
भेद नहीं माना कुछ हिन्दू-मुसलमान का।
मारक नहीं वे बने उद्धारक दुष्टों के।¹¹⁷

साकेत का सर्वप्रथम प्रकाशन सन् 1932 में हुआ था। साकेत द्वादश सर्गों का एक महाकाव्य है। साकेतकार मानव और ईश्वर में भेद ही नहीं मानता। विश्व ब्रह्म के सांकार और निराकार दोनों ही उपास्थ ज़रूफों के प्रति उसकी अकंप आस्था है-

राम तुम मानव हो, ईश्वर नहीं हो क्या?
विश्व में रमे हुए नहीं सभी कहीं हो क्या?
तब मैं निरीश्वर हूँ, ईश्वर क्षमा करे,
तुम न रमो तो मन तुममें रमा करे?।¹¹⁸

साकेत महाकाव्य के मंगलाचरण में गुप्त जी ने शिव-पार्वती कुमार और गणेश का बाल-खेला के रूप में पुण्य-स्मरण किया है-

जयति कुमार अभियोग-गिरा गौरी-प्रति
स-गण गिरीश जिसे सुन मुसकाते हैं-
X X X
देते नहीं, कन्दुक-सा ऊपर उछालते हैं,
ऊपर ही झेलकर, खेलकर खाते हैं।¹¹⁹

इसी महाकाव्य में गुप्त जी ने वीणापाणि सरस्वती की भी सरस सारमयी वंदना की है-

अयि दयामयि देवि, सुखदे, सारदे
 इधर भी निज वरद-पाणि पसारदे।
 X X X
 चल अयोध्या के लिए, सज साज तू।
 माँ, मुझे कृतकृत्य कर दे आज तू।¹²⁰

गुप्त जी ने राम-भक्ति को मोक्ष का साधन मानते हुए राम के मुख से ही यह कहलवाया है कि जो व्यक्ति केवल मेरा नाम-स्मरण करेंगे, वे तो बिना प्रयास ही भवसागर से पार हो जायेंगे, किन्तु जो व्यक्ति मेरे गुण, कर्म एवं स्वभाव को भी धारण करेंगे वे स्वयं मोक्ष प्राप्त करते हुए औरों को भी मोक्ष-प्राप्ति से सहायक सिद्ध होंगे-

जो नाम मात्र ही स्मरण मदीय करेंगे,
 वे भी भव-सागर बिना प्रयास तरेंगे।
 पर जो मेरा गुण, कर्म, स्वभाव धरेंगे,
 वे औरों को भी तार, पार उतरेंगे।¹²¹

सिद्धराज गुप्त जी की प्रौढ़ रचनाओं में एक है। जिसका प्रकाशन सन् 1936 में हुआ था। सिद्धराज में गुप्त जी की सांस्कृतिक समन्वय की अदम्य अभिलाषा व्यक्त होने के साथ मानव चरित्र के महान् अंश का उद्घाटन भी हुआ है।

मैथिलीशरण गुप्तजी ने सिद्धराज में अपने परम आराध्य मर्यादा पुरुषोत्तम राम के भक्ति-भाव की स्तुति मंगलाचरण में की है-

आप अवतीर्ण हुए दुःख देख जन के,
 भ्रातृ-हेतु राज्य छोड़, वासी बने वनके,
 राक्षसों को मार भार मेटा धरा धाम का
 बड़े धर्म, दया-दान युद्ध वीर राम का ।¹²²

अनघ एक गीति-नाटय है जिसका प्रथम प्रकाशन सन् 1925 में हुआ था। मैथिलीशरण गुप्त जी ने अनघ में भगवान् बुद्ध की भी स्तुति की है। जिसमें बौद्ध धर्म के प्रति उनकी आस्था स्पष्ट है-

राम-कृष्ण ने जहाँ आप अवतार लिया है,
आ-आकर बहु बार दूर भू-भार किया है।
वहाँ भला क्यों देव दयामय बुद्ध न आते,
जिनके शुद्ध चरित्र आज जातक हैं गाते।¹²³

नहुष काव्य का सर्वप्रथम प्रकाशन सन् 1940 में हुआ था कवि ने इसमें मानव के दानव न होकर देव बनने की गाथा गाई है।

श्री मैथिलीशरण गुप्त जी का जन्म एक वैष्णव परिवार में हुआ था और उसी संस्कार में ही वे पालित-पोषित हुए थे। ब्रह्मा, इन्द्र, अग्नि, प्रजापति, महादेव, रुद्र, विष्णु, राम और कृष्ण उस अनादि-अनंत देवशक्ति की बहुविध संज्ञाएँ हैं। उनको प्रणाम करने वाला जन वैष्णव कहलाता है। वैष्णव का सम्बन्ध केवल विष्णु की उपासना करने वाल से नहीं विभिन्न सद्वृत्ति वाले जन से भी है-

नारायण! नारायण! साधु नर साधना
इन्द्र पथ ने भी की उसी की शुभाराधना।¹²⁴

जयद्रथवध का प्रथम प्रकाशन सन् 1910 में हुआ था। गुप्तजी का भावुक कवि मन शिव को संहारकर्ता नहीं सदाशिव मानते हैं। वे लिखते हैं-

हे भक्तवत्सल ईश! तुम से बार-बार प्रणाम है
सर्वेश मंगल कीजिए, 'शंकर' तुम्हारा नाम है।¹²⁵

मैथिलीशरण गुप्त जी मूलतः भगवान् के सगुण रूप के ही उपासक थे, लेकिन किसी किसी काव्य में लोक-नायक राम और युग पुरुष कृष्ण के अलौकिक चरित्र को चित्रित करने के लिए, उन्हें निर्गुण और सगुण दोनों ही प्रकार की आस्थाओं को संतुलित करना पड़ा।

साक्षात् चराचरनाथ, तुम रखते स्वयं जब हो दया,
हो निर्विकार तथापि तुम हो भक्तवत्सल सर्वदा।
हे सच्चिदानंद प्रभो! तुम नित्य सर्व सशक्त हो,
अनुपम, अगोचर, शुभ, परात्पर ईश-वर अव्यक्त हो,
तुम ध्येय, गेय, अजेय हो निज भक्त पर अनुरक्त हो,¹²⁶

वकसंहार का सर्वप्रथम प्रकाशन सन् 1927 में हुआ था। पूजा में मंत्रों का और यज्ञों में वेद-मंत्रों का उच्चारण होने का वर्णन भी कवि ने किया है-

परितृप्त गृह-सुख-भोग से,
मन्त्र-स्वरों के योग से,
मानों भुवन की भावना था हर रहा।¹²⁷

शक्ति का प्रथम प्रकाशन 1927 में हुआ था। कवि 'शक्ति' काव्य में शक्ति की एक मात्र रूपा सीता का स्तवन करता हुआ अपनी इष्टदेवी के प्रति अगाध आस्था इस तरह अभिव्यक्त कर रहा है-

भावुक, भव-भय छोड़ दो, सीता भजो सभक्ति।
यातु-वंश विध्वंसनी पातु सौम्य शुभ शक्ति।।¹²⁸

पृथ्वीपुत्र का प्रकाशन सन् 1950 में हुआ था। मैथिलीशरण गुप्त जी मर्यादा पुरुषोत्तम राम के अनन्य भक्त हैं। उन्होंने अपनी समस्त रचनायें राम के मंगलाचरण के साथ ही आरम्भ की हैं। इसका यह तात्पर्य नहीं है कि वे अन्य देवों का स्मरण करते ही नहीं। वे कृष्ण का भी स्मरण कर सकते हैं। किन्तु उनका मन राम की तरह ओर किसी पर तन्मयता से रमता नहीं है-

निज मर्यादा-पुरुषोत्तम ही मानव का आदर्श,
नहीं और कोई कर पाता मेरा हृदय-स्पर्श।¹²⁹

काबा और कर्बला का प्रथम प्रकाशन सन् 1942 में हुआ। 'काबा और कर्बला' में कवि सभी धर्मों की एकता का प्रतिपादन करते हुए कहता है कि ईश्वर एक है। उसी की प्रेरणा से विभिन्न धर्मों के मार्ग-दर्शन के लिए धर्म-ग्रंथ प्राप्त हुए हैं-

धर्म है सो धर्म है, जो पंथ है सो पंथ है,
एक ने सब के लिए भेजे यहाँ निज ग्रंथ है।
बस, उसी के मन्त्र से चलते हमारे यन्त्र हैं,
स्वमत के सम्बन्ध में हम सब समान स्वतन्त्र हैं।¹³⁰

प्रकृति विषयक कविता-

गुप्त जी मानव-जीवन के मर्मज्ञ हैं। वे बाह्यजगत् की शोभा और प्रकृति के व्यक्त सौंदर्य के प्रशंसक हैं। कालिदास के प्रभाव और आधुनिक बंगला काव्य के संसर्ग से गुप्त जी प्रकृति-प्रेमी कवि बने। उन्होंने दुर्दशा निवेदन में कालिदास के ऋतु-संहार का अनुकरण किया।

गुप्त जी प्रकृति-प्रेमी हैं, उसका सौन्दर्य उन्हें सर्जनात्मक आवेश प्रदान करता है, पर वे प्राकृतिक सौंदर्य के कवि नहीं हैं। सामाजिक-जीवन के कवि हैं। नदियाँ, झरने, पहाड़, मैदान, संध्या, प्रभात, चन्द्र, तारे आदि के प्रति कवि आत्मीयता का अनुभव करता है। प्रकृति के स्वतंत्र सौंदर्य-चित्र अंकित नहीं करता। प्रकृति का बाह्य रूप ही देखता है, उसके किसी अंतरंग तत्त्व का आख्यान नहीं करता।¹³¹

पंचवटी, साकेत, यशोधरा, सिद्धराज, शकुन्तला, अनद्य, चन्द्रहास, किसान आदि रचानाओं में कवि ने प्रकृति-सौंदर्य के भव्य वर्णन और रम्य चित्रण प्रस्तुत किए हैं।

मैथिलीशरण गुप्तजी का प्रसिद्ध खंडकाव्य 'पंचवटी' का सर्वप्रथम प्रकाशन सन् 1925 में हुआ था। यह गुप्त जी का प्रथम काव्य है, जिसमें प्राकृतिक वर्णनों को नियोजित किया गया है।

इस काव्य में रम्य प्रकृति का स्वच्छन्द रूप चित्रित हुआ है और वह प्रायः मानवीय कृत्यों तथा मनोविकारों की पृष्ठ भूमि के रूप में रक्खी गयी है।, स्थान, समय और परिस्थिति का चित्रण करने के लिए अन्य प्रकृति की सुन्दरता का विनियोग हुआ है। दृश्य चित्रण की शैली में प्रकृति का अच्छा वर्णन किया गया है। और वह गतिशील भी है। उसकी गत्यात्मकता कथा विकास से संगति रखती है- यथा-

चारु चन्द्र की चंचल किरणें
खेल रही हैं जल थल में,
स्वच्छ चाँदनी बिछी हुई है
अवनि और अम्बरतल में।¹³²

पंचवटी में प्रभात का चित्र अंकित है। रात्री के एकान्त में चुपचाप बैठे सौमित्र को शूर्पणखा अपने रूप-लावण्य से आकर्षित करना चाहती थी, पर वह सफल न हो सकी इसलिए उसने प्रेम निवेदन किया। सौमित्र इसके लिए भी तैयार नहीं हो सके। दोनों के वार्तालाप में ही सबेरा हो गया। गुप्तजी ने यहाँ बड़ी प्रफुल्लित और सस्मित ऊषा का चित्र खींचा है-

इसी समय पौ फटी पूर्व में,
पलटा प्रकृति-पटी का रंग।
किरण-कण्टकों से श्यामाम्बर
फटा, दिवा के दमके अंग।
कुछ-कुछ अरुण, सुनहली कुछ-कुछ
प्राची की अब भूषा भी,
पंचवटी की कुटी खोलकर
खड़ी स्वयं क्या ऊषा थी।¹³³

पंचवटी में प्रकृति की प्रातः संध्याकालीन लीला को गुप्त जी सुख शान्ति और विश्राम की क्रीड़ा स्थली मानते हैं-

है बिखेर देती वसुन्धरा
मोती, सबके सोने पर,
रवि बटोर लेता है उनको
सदा सबेरा होने पर।
और विरामदायिनी अपनी
सन्ध्या को दे जाता है,
शून्य श्याम तनु जिससे उसका
नया रूप झलकाता है।¹³⁴

साकेत के प्रथम सर्ग और नवमसर्ग में गुप्त जी ने प्राकृति के मनोहर दृश्य खींचे हैं। साकेत के प्रारम्भ में प्रभात का सुन्दर चित्रण है। यह चित्रण प्रकृति का स्वतन्त्र चित्रण न होकर पूर्वाभास के रूप में हुआ है। प्रभात वर्णन इन पंक्तियों से प्रारम्भ होता है—

सूर्य का यद्यपि नहीं आना हुआ।
किन्तु समझो रात का जाना हुआ।¹³⁵

साकेत में जहाँ जीवन की सम्पूर्ण परिस्थितियों का समावेश किया गया है वहाँ प्रकृति के विविध रूपों का भी स्पर्श किया गया है। प्रारम्भ में ही प्रभात का वर्णन कल्पना कल्पित है। प्रभात की लालिमा ऊर्मिला के सौन्दर्य को द्विगुणित करती है—

खुल गया प्राची दिशा का द्वार है
गगन-सागर में उठा क्या ज्वार है।
X X X
अरूण पट पहने हुए आह्लाद में,
कौन यह बाला खड़ी प्रासाद में?
प्रकट-मूर्तिमती उषा ही तो नहीं?
कान्ति की किरणें उजेला कर रही।¹³⁶

प्रकृति के उद्दीपन रूप द्वारा कवि संयोग एवं वियोग की अवस्थाओं में प्रकृति के रूप को, नायक-नायिका की मनःस्थिति के परिप्रेक्ष्य में चित्रित करते हैं। संयोगावस्था में प्रकृति आनन्द एवं उल्लास का संचार करने वाली होती है। वियोग में यही प्रकृति दग्ध बन जाती है। साकेत में भी प्रकृति के ये दो रूप विद्यमान हैं जो वर्षाकाल संयोग के अवसर पर उर्मिला को अत्यन्त आनन्द एवं उल्लास बढ़ाने वाला था जिसके बारे में उसने स्वयं ही यह कहा है कि—

मैं निज अलिन्द में खड़ी थी सखि, एक रात,
रिमझिम बूँदे पड़ती थी घटा छाई थी,
गमक रहा था केतकी का गन्ध चारों ओर
झिल्ली-झनकार यही मेरे मन भाई थी।¹³⁷

प्रकृति एक ओर सुकोमल, सख्त है, सुरम्य है। दूसरी ओर भयंकर कठोर रूप के भी दर्शन होते हैं। ग्रीष्म ऋतु के वर्णन में 'प्रकृति के इसी भयंकर रूप का चित्रण द्रष्टव्य है-

आकाश-जाल सब ओर तना,
रवि तन्तुवाय है आज बना,
करता है पद-प्रहार वही,
मकखी-सी भिन्ना रही मही।¹³⁸

प्रकृति चित्रण के अन्तर्गत षट्ऋतु का भी वर्णन किया जाता है। गुप्त जी ने भी इसी षट्ऋतु का वर्णन साकेत में किया है। जेठ और आषाढ़ माह ग्रीष्म ऋतु के हैं। गुप्तजी ने आलम्बन रूप में ग्रीष्म का निम्नांकित वर्णन किया है-

लपट से झट रूख जले, जले।
नद-नदी घट सूख चले चले।
विकल वे मृग-मीन मरे, मरे,
विकल ये दृग दीन भरे, भरे।
या तो पेड़ उखाड़ेगा, या पत्ता न हिलायेगा,
बिना धूल उड़ाये हा! ऊष्मानिल न जायेगा।¹³⁹

उपर्युक्त पंक्तियों में ग्रीष्म की लपटों से वृक्षों के जल जाने एवं नदी-नालों के सूख जाने का तथा जलचर जीवों के जलाभाव में मरणासन्न हो जाने का वर्णन किया गया है ग्रीष्म में या तो तेज हवा चलती है या पत्ता भी नहीं हिलता। धूल खूब उड़ती है। ग्रीष्म का यह चित्र संश्लिष्ट है जिसमें गुप्त जी ने उर्मिला की दीन-हीन दशा का चित्रण किया है।

यशोधरा में गुप्त जी ने प्रकृति का मानव सापेक्ष चित्रण किया है। उस पर भावाक्षेप ही नहीं किया गया, बल्कि उसका प्रतीकत्व तथा अलंकरण के रूप में प्रयोग भी हुआ। अवश्य ही कवि की प्राकृतिक सौन्दर्य के प्रति संस्कारशील सुरुचि प्रकट हुई है। यशोधरा के प्राकृतिक चित्र प्रायः कवित्वपूर्ण है।

प्रकृति के सान्निध्य में गोप की उदारता, सहिष्णुता और संवेदना स्पष्ट हुई है। प्रकृति भाव-व्यंजना का आभरण भी बनी है-

जल में शतदल-तुल्य सरसते, तुम घर रहते हम न तरसते
देखों, दो-दो मेघ बरसते, मैं प्यासी की प्यासी।¹⁴⁰

यशोधरा में ऋतु-वर्णन अधिक संवेदनीय और मानवीय है। गुप्त जीने पतझड़ का बड़ा ही मार्मिक और हृदयस्पर्शी चित्रण किया है। गौतम के त्याग से प्रकृति तक प्रभावित है तभी तो वृक्षों ने पत्तों का त्याग कर दिया है-

पेड़ों ने पत्ते तक उनका त्याग देखकर त्यागे।
मेरा धुँधलापन कुहरा बन छाया सबके आगे।¹⁴¹

कवि ने प्रकृति की पार्श्वभूमि के आधार पर गोपा की अनुभूतियों का मनोवैज्ञानिक परिचय दिया है अनुकूल पृष्ठाधार के रूप में जो प्राकृतिक रंगमंच यशोधरा में निमित्त है, उसके उदाहरण द्रष्टव्य है-

पुष्कर सोता है निज सर में,
भ्रमर सो रहा है पुष्कर में,
गुंजन सोया कभी भ्रमर में,
जागा नूतन गंध पवन में
जाग उठे खग वन उपवन में,
और खगों में कलरव-राग।¹⁴²

विप्रलंघ्य शृंगार में गुप्तजी ने प्रकृति ओर मानव का सुन्दर समन्वय किया है। उन्होंने प्रकृति को मानव भावों को उदीप्त करने का प्रधान अंग समझा है। वसंतागमन पर जब यशोधरा देखती है कि-

समय स्वयं यह सजा रहा है डगर डगर में डाली
मृदु समीर सह बजा रहा है नीर तीर पर ताली।
लता कण्टकित हुई ध्यान से ले कपोल की लाली,
फूल उठी है हाय! मान से प्राणभरी हरियाली।¹⁴³

गुप्त जी ने विशेषतया उपमा एवं रूपक का आश्रय लेकर प्रकृति का चित्र उतारा है। अलंकारों का अधिकतर प्रयोग कवि ने रूप साम्य के लिए न करके भाव-साम्य या गुण साम्य प्रकट करने के लिए किया है। यशोधरा की एक उक्ति देखिए-

सखि, बसन्त-से कहाँ गये वे
मैं ऊष्मा-सी यहाँ रही।¹⁴⁴

इसमें गौतम बसन्त से और यशोधरा ऊष्मा सी बतलायी गयी है।

मैथिलीशरण गुप्त जी द्वारा सिद्धराज काव्य में भी प्रकृति वातावरण देखने योग्य है--

रात हो चुकी थी, दीप दीपित था पौर में
कांपती शिखा सी लिए आँगन में रूपसी।
रानकदे संकुचित और नत भी खड़ी
था खंगार सम्मुख सजीव एक चित्र सा।
देखती थी ऊपर अनंत तारा मण्डली
द्वन्द्व जगती का यह, नीरव निस्पंदता।¹⁴⁵

शकुन्तला काव्य में शकुन्तला के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए गुप्त जी ने प्रकृति से कई अप्रस्तुतों को लिया है-

हंस और मीनों से उसने जल में तैरना सीखा था
शीतल और सुगन्ध पवन से मंद विचरना सीखा था।¹⁴⁶

अनघ काव्य में एक-स्थान पर वृक्ष-पंक्ति अपने प्रिय का पथ निहारती दिखलाई पड़ती है-

यह सन्ध्यातप का सहज सुनहला
मुकुट बाँध वृक्षाली,
पथ देख रही है खड़ी सजाये
फूल-फूलों की डाली।¹⁴⁷

नाट्य-पद्धति के अनुसार रचा हुआ एक रूपक है चन्द्रहास। चन्द्रहास में कवि ने लता को ही प्रेरिका रूप में देखा है-

द्रुम और अहो लतिके, मिलके
खिल के तुम भूतल ताप हरो।
फल फूल भरे दृढ़ मूल रहो
जग में निज शुद्ध सुगन्ध भरो।।¹⁴⁸

किसान काव्य में कवि ने प्रकृति को एक ऐसी माता के रूप में चित्रित किया है। जो अपने शिशु को गोद में पालती हुई उसे विभिन्न सद्गुणों से विभूषित करने वाली है-

झुके पयोद पकड़ने को हम कभी पहाड़ों पर चढ़ते ,
कभी तैरते हुए होड़ से पानी में आगे बढ़ते,
मानो स्वयं प्रकृति ही फिरती हमें गोद में लिए हुए,
खगता, मृगता और मनुजता तीनों के गुण दिये हुए।¹⁴⁹

1. सम्पादक विजय अग्रवाल - राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त - पृ० -165
2. सम्मेलन (पत्रिका) सम्पादक - रामप्रताप त्रिपाठी, शस्त्री भाग-45, सं० -1 पृ० सं० 77
3. डॉ० कमलाकान्त पाठक -मैथिलीशरण गुप्त व्यक्तित्व और काव्य पृ० सं०-10
4. डॉ० कमलाकान्त पाठक -मैथिलीशरण गुप्त व्यक्तित्व और काव्य पृ० सं०-27
5. दान बहादुर पाठक 'वर' -मैथिलीशरण गुप्त और उनका साहित्य पृ० सं०-59-60।
6. वही, पृ० सं० 62
7. सम्पा० - डॉ० अर्जुन शतपथी, मधुसूदन साहा राष्ट्रीय चेतना के कवि मैथिलीशरण गुप्त पृ० सं०- 121 ।
8. डॉ० कमलाकान्त पाठक -मैथिलीशरण गुप्त व्यक्तित्व और काव्य पृ० सं०- 11
9. दान बहादुर पाठक 'वर' -मैथिलीशरण गुप्त और उनका साहित्य पृ० सं०- 61
10. डॉ० कमलाकान्त पाठक -मैथिलीशरण गुप्त व्यक्तित्व और काव्य पृ० सं०- 5
11. डॉ० कमलाकान्त पाठक -मैथिलीशरण गुप्त व्यक्तित्व और काव्य पृ० सं०- 27-28
12. डॉ० आनन्द प्रकाश दीक्षित - मैथिलीशरण गुप्त पृ० सं० -4
13. डॉ० कमलाकान्त पाठक -मैथिलीशरण गुप्त व्यक्तित्व और काव्य , पृ० सं० 28
14. दान बहादुरपाठक 'वर'- मैथिलीशरण गुप्त और उनका साहित्य पृ० सं०- 65-66
15. डॉ० कमलाकान्त पाठक -मैथिलीशरण गुप्त व्यक्तित्व और काव्य पृ० सं०- 21
16. वही, पृ० सं० 21
17. दान बहादुर पाठक 'वर'- मैथिलीशरण गुप्त और उनका साहित्य पृ० सं०- 66-67
18. डॉ० कमलाकान्त पाठक -मैथिलीशरण गुप्त व्यक्तित्व और काव्य पृ० सं०- 23
19. दान बहादुर पाठक 'वर'- मैथिलीशरण गुप्त और उनका साहित्य पृ० सं०- 67-68
20. डॉ० कमलाकान्त पाठक -मैथिलीशरण गुप्त व्यक्तित्व और काव्य पृ० सं०- 24
21. साकेत (तृतीय सर्ग) मैथिलीशरण गुप्त पृ० - 43
22. द्वापर (समर्पण) मैथिलीशरण गुप्त।
23. डॉ० कमलाकान्त पाठक -मैथिलीशरण गुप्त व्यक्तित्व और काव्य पृ० सं०- 36-37

24. डॉ० कमलाकान्त पाठक -मैथिलीशरण गुप्त व्यक्तित्व और काव्य पृ० सं०- 38
25. डॉ० कमलाकान्त पाठक -मैथिलीशरण गुप्त व्यक्तित्व और काव्य पृ० सं०- 43
26. डॉ० के० एस० मणि० -मैथिलीशरण गुप्त ओर बल्लत्तोल का तुलनात्मक अध्ययन पृ० - 44 ।
27. डॉ० कमलाकान्त पाठक -मैथिलीशरण गुप्त व्यक्तित्व और काव्य पृ० सं०- 46
28. सम्मेलन-पत्रिका (त्रैमासिक) राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त विशेषांक सम्पा० -डॉ० प्रेमनारायण शुल्क पृ० 221,
29. डॉ० कमलाकान्त पाठक -मैथिलीशरण गुप्त व्यक्तित्व और काव्य पृ० सं०- 46-47,
30. प्रधान सम्पा० - डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल - राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन ग्रंथ - पृ० - 329
31. वही, पृ० - 330,
32. जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी - मैथिलीशरण गुप्त की काव्य-यात्रा पृ० 92-93
33. डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल - राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन ग्रंथ - पृ० - 334,
34. वही, पृ० - 334,
35. वही, पृ० - 335,
36. डॉ० कमलाकान्त पाठक -मैथिलीशरण गुप्त व्यक्तित्व और काव्य पृ० सं०- 53,
37. वही, पृ० - 54-55,
38. सम्पा० विजय अग्रवाल - राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त - पृ० -198
39. डॉ० कमलाकान्त पाठक -मैथिलीशरण गुप्त व्यक्तित्व और काव्य पृ० सं०- 29,
40. वही, पृ० - 30,
41. सम्पा० विजय अग्रवाल - राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त - पृ० -186
42. जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी - मैथिलीशरण गुप्त की काव्य-यात्रा पृ० 185
43. वही, पृ० - 185
44. प्रधान सम्पा०- वासुदेवशरण अग्रवाल - राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन ग्रंथ -पृ० 91,
45. डॉ० द्वारिकाप्रसाद सक्सेना-साकेत में काव्य, संस्कृति और दर्शन पृ०-8,
46. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल-हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० सं० - 334,

47. भारत-भारती - मैथिलीशरण गुप्त प्रस्तावना पृष्ठ ।
48. भारत-भारती (मंगलाचरण, अतीत खण्ड) - मैथिलीशरण गुप्त प्रस्तावना - पृ० 11,
49. वही, अतीत खण्ड पृ० - 14,
50. वही, पृ० - 14,
51. वही, पृ० - 14.
52. भारत-भारती (अतीत खण्ड) - मैथिलीशरण गुप्त पृ० - 32,
53. वही, पृ० - 59,
54. भारत-भारती (वर्तमान खण्ड) - श्री मैथिलीशरण गुप्त पृ० - 95,
55. वही, पृ० - 182,
56. भारत-भारती (भविष्यत् खण्ड) - मैथिलीशरण गुप्त पृ० - 185
57. भारत-भारती (वर्तमान खण्ड) - मैथिलीशरण गुप्त पृ० - 104
58. भारत-भारती (भविष्यत् खण्ड) - मैथिलीशरण गुप्त पृ० सं० - 184,
59. डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल (प्रधान सम्पादन)- राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन ग्रंथ -पृ० 367
60. वही, पृ० - 367,
61. डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल (प्रधान सम्पा०)- राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन ग्रंथ पृ०- 370
62. डॉ० राघव प्रकाश (सह सम्पा०)- मैथिलीशरण गुप्त और तत्कालीन भारतीय साहित्यिक परिवेश पृ०- 42,
63. डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल (प्रधान सम्पा०)- राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन ग्रंथ पृ०- 371,
64. जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी - मैथिलीशरण गुप्त की काव्य-यात्रा पृ० सं०- 117,
65. के० एस० मणि - मैथिलीशरण गुप्त और वल्लत्तोल का तुलनात्मक अध्ययन पृ० - 220
66. वही, पृ० - 220,
67. सम्मेलन पत्रिका (त्रैमासिक) सम्पा०- डॉ० प्रेमनारायण शुल्क -राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त विशेषांक पृ० -199,
68. सम्मेलन पत्रिका (त्रैमासिक) सम्पा०- डॉ० प्रेमनारायण शुल्क -राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त विशेषांक पृ० - 296,

69. वही, पृ० - 299,
70. वैतालिक - मैथिलीशरण गुप्त पृ०- 30,
71. वही, पृ० - 8-9,
72. वही, पृ० - 7,
73. साकेत (प्रथम सर्ग) श्री मैथिलीशरण गुप्त पृ० 12,
74. वही, (प्रथम सर्ग) पृ० 16,
75. साकेत (द्वादश सर्ग) श्री मैथिलीशरण गुप्त पृ० 220,
76. वही, (द्वादश सर्ग) पृ० 234,
77. रंग में भंग - मैथिलीशरण गुप्त पृ० - 31-28
78. वही, पृ० - 32,
79. हिन्दू - मैथिलीशरण गुप्त - पृ० - 354-355,
80. वही, पृ० - 379,
81. हिन्दू - मैथिलीशरण गुप्त - पृ० - 346-347,
82. वही, पृ० - 340,
83. किसान (फिजी) मैथिलीशरण गुप्त पृ०-40,
84. वही, (प्रत्यावर्तन) पृ०- 43,
85. वही, पृ० - 44,
86. सिद्धराज (द्वितीय सर्ग) मैथिलीशरण गुप्त पृ०-47,
87. वही, पृ० - 41,
88. सिद्धराज (पंचम सर्ग) मैथिलीशरण गुप्त पृ०- 136,
89. जयद्रथवध (प्रथम सर्ग) मैथिलीशरण गुप्त पृ०- 5,
90. वही, पृ० -21
91. गुरुकुल (गुरु गोविन्द सिंह, स्काकी-प्रसंग)- मैथिलीशरण गुप्त पृ० 205,
92. काबा और कर्बला - मैथिलीशरण गुप्त पृ० - 94,
93. काबा और कर्बला (आवेदन) - मैथिलीशरण गुप्त पृ० - 5
94. राजा-प्रजा - मैथिलीशरण गुप्त पृ० - 46,
95. डॉ० राघव प्रकाश- मैथिलीशरण गुप्त और तत्कालीन भारतीय साहित्यिक परिवेश पृ०- 48,

96. नहुष (नहुष प्रसंग) मैथिलीशरण गुप्त पृ0 - 16,
97. अजित (निवेदन) मैथिलीशरण गुप्त पृ0 - 3,
98. अजित- मैथिलीशरण गुप्त पृ0 - 88,
99. वही,
100. वही,
101. डॉ0 राजशेखर शर्मा - मैथिलीशरण गुप्त विचार और अनुभूति पृ0 - 43,
102. चिन्तामणि - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल पृ0 - 26,
103. द्वापर (मंगलाचरण) - श्री मैथिलीशरण गुप्त पृ0 - 11,
104. वही, (गोपी-प्रसंग) पृ0 - 203,
105. द्वापर (श्री कृष्ण प्रसंग) - श्री मैथिलीशरण गुप्त पृ0 - 12,
106. झंकार (राम प्रसंग) - श्री मैथिलीशरण गुप्त पृ0 - 17,
107. वही (निर्वल का बाल-प्रसंग) पृ0 - 7,
108. वही, (राम-प्रसंग) पृ0 - 20,
109. वही, (ज्ञान और भक्ति-प्रसंग) पृ0 - 143,
110. जयभारत- मैथिलीशरण गुप्त पृ0 -9,
111. वही, पृ0 - 169,
112. वही, पृ0 - 356,
113. यशोधरा - मैथिलीशरण गुप्त पृ0 -4,
114. यशोधरा (मंगलाचरण) - मैथिलीशरण गुप्त पृ0 - 11,
115. वही, पृ0 - 11,
116. विष्णुप्रिया - मैथिलीशरण गुप्त , पृ0 - 81,
117. वही, पृ0 - 28,
118. साकेत - मैथिलीशरण गुप्त पृ0 - 8,
119. साकेत (मंगलाचरण) मैथिलीशरण गुप्त पृ0 - 9,
120. साकेत (प्रथम सर्ग) मैथिलीशरण गुप्त पृ0 11,
121. वही, पृ0 - 111,
122. सिद्धराज (मंगलाचरण) मैथिलीशरण गुप्त पृ0- 5,
123. अनद्य - मैथिलीशरण गुप्त पृ0- 5,

124. वही, पृ० - 12,
125. जयद्रथ-वध (चतुर्थ-सर्ग) मैथिलीशरण गुप्त पृ०- 57,
126. वही, (सप्तम सर्ग) पृ० 92-93,
127. वकसंहार - मैथिलीशरण गुप्त पृ० - 7,
128. शक्ति (मंगलाचरण)- मैथिलीशरण गुप्त पृ० - 4,
129. पृथ्वीपुत्र- - मैथिलीशरण गुप्त पृ० - 7
130. काबा और कर्बला (आवेदन)- मैथिलीशरण गुप्त पृ० - 46
131. डॉ० कमलाकान्त पाठक -मैथिलीशरण गुप्त व्यक्तित्व और काव्य पृ० सं०- 67,
132. पंचवटी - मैथिलीशरण गुप्त - पृ० -5,
133. वही, पृ० - 37,
134. वही, पृ० - 8,
135. साकेत (प्रथम-सर्ग) मैथिलीशरण गुप्त पृ० - 16,
136. साकेत (प्रथम-सर्ग) मैथिलीशरण गुप्त पृ० - 17,
137. वही, (नवम सर्ग) पृ०- 150,
138. वही, पृ० - 145,
139. वही, पृ० - 145,
140. यशोधरा (संधान) - मैथिलीशरण गुप्त पृ० - 119,
141. वही, पृ० - 52,
142. वही, पृ० - 84-93,
143. वही, पृ० - 54,
144. वही, पृ० - 50,
145. सिद्धराज (तृतीय-सर्ग) मैथिलीशरण गुप्त पृ०- 63,
146. शकुन्तला - मैथिलीशरण गुप्त पृ०- 8,
147. अनद्य (उद्यान) मैथिलीशरण गुप्त पृ०- 34,
148. चन्द्रहास (चतुर्थार्क) मैथिलीशरण गुप्त पृ०- 109,
149. किसान (बाल्य और विवाह) मैथिलीशरण गुप्त पृ०- 17,

अध्याय चतुर्थ

युगीन काव्य परम्परा के संदर्भ में मैथिलीशरण गुप्त की काव्य
की पृष्ठभूमि का समीक्षात्मक अध्ययन

- ▶ राजनैतिक पृष्ठभूमि -
- ▶ आर्थिक पृष्ठभूमि -
- ▶ सामाजिक एवं धार्मिक पृष्ठभूमि -
- ▶ साहित्यिक पृष्ठभूमि -

राजनैतिक पृष्ठभूमि

जिस समय से मानव समाज सभ्य हो कर किसी न किसी प्रकार से शासन को स्वीकार करने लगा, उस समय से उसके समग्र जीवन पर राजनैतिक परिस्थितियों का प्रभाव पड़ने लगा। आलोच्य काल के साहित्य की राजनैतिक पृष्ठभूमि में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के राज्य की स्थापना प्रथम स्वतंत्रता-संग्राम, भारत में विक्टोरिया-शासन की प्रतिष्ठा, इंडियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना, बंगभंग, मार्ले मिण्टो सुधार द्वारा साम्प्रदायिक निर्वाचन प्रणाली, प्रेस-एक्ट, प्रथम विश्व युद्ध, जापान द्वारा रूस की पराजय, रोलैट एक्ट, जलियांवाला-बाग-हत्याकाण्ड, खिलाफत आन्दोलन, अमहयोग आन्दोलन आदि उनसे अद्भुत अनेक देशीय समस्यायें हैं।

द्विवेदी युग के प्रारम्भ की राजनीतिक परिस्थिति का बीजारोपण कुछ वर्ष पूर्व हो चुका था। 1757 में अंग्रेजों ने बंगाल जीत लिया और 1857 में दिल्ली। इस बीच इनका राज्य क्रमशः भारत में फैलता गया। विजित प्रदेशों पर उन्होंने अपने ढंग की शासन व्यवस्था तथा अर्थ व्यवस्था को लागू किया 1857 ई० से पूर्व ईस्ट इण्डिया कम्पनी के सौ वर्ष के शासन काल में भारतीय के साथ व्यवहृत राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक तथा आर्थिक नीति के कारण देश में विद्रोह के लक्षण स्पष्ट हो रहे थे।

“नाना साहब की पेंशन समाप्ति, सिविल सर्विस परीक्षाओं में भारतीयों के साथ अनुचित पक्षपात, भारतीय सैनिकों को जबरदस्ती बाहर भेजने के आदेश आदि आपत्तिजनक कामों से जनता असन्तुष्ट हो गई।”

लार्ड डलहौजी कि देशी राज्यों के विलय की नीति (लैप्स पॉलिसी) इस काल की प्रमुख घटना है। इस नीति के द्वारा कई देशी रियासतों को अंग्रेजी राज्य में मिला लिया गया। विदेशी शासन की शिक्षा योजना, रेल, तार, डाक का प्रचार, नहरों तथा सड़कों के निर्माण आदि ने विद्रोह का काम किया।

अंग्रेजों की भारत विजय और भारत पर अंग्रेजी शासन के पीछे ब्रिटिश हितों की रक्षा की भावना काम कर रही थी। इसलिए भारत में अंग्रेजी सत्ता का उपयोग मूलतः ब्रिटिश हितों की रक्षा और विकास के लिए हुआ। ज्वायसन हिस्क के शब्दों में - “हमने भारत को भारतवासियों के लाभ के लिए नहीं जीता। मैं जानता हूँ कि

मिशनरियों की सभाओं में कहा जाता है कि हमने भारत को भारतवासियों का स्तर ऊँचा करने के लिए जीता है। यह सफेद झूठ है। हमने भारत को तलवार से जीता है, और तलवार से ही हम उसे अपने कब्जे में बनाए रखेंगे, हम उस पर इसलिए कब्जा बनाए रख रहे हैं कि वह ब्रिटिश माल की निकासी का सबसे अच्छा रास्ता है।² ब्रिटिश साम्राज्यवादियों के लिए भारत का महत्व क्या था, लार्ड शरद मेयर के शब्दों में –“भारत ब्रिटिश साम्राज्य की कुंजी है। अगर हम भारत को खो देंगे, तो साम्राज्य ध्वस्त हो जाएगा, पहले आर्थिक दृष्टि से फिर राजनैतिक दृष्टि से।”³

भारत में राष्ट्रीयता की भावना पैदा हुई, इसलिए नहीं कि ब्रिटिश साम्राज्य इसे पैदा करना चाहते थे, वह बढ़ी, इसलिए नहीं कि वे उसे बढ़ाना चाहते थे। राष्ट्रीय भावना पैदा हुई और बढ़ी इसलिए कि ब्रिटिश साम्राज्य भारत को बुरी तरह लूट रहे थे, उनके विरुद्ध लड़कर ही भारत का आगे बढ़ना संभव था।

भारत में ब्रिटिश सौदागरों के आने के समय तक पूँजीवाद का जिस हद तक विकास हुआ था, उससे स्पष्ट है, कि वह 19 वीं सदी तक अवश्य ही शक्तिशाली हो जाता, राजसत्ता या तो उसके हाथ में होती या उसपर उसका बहुत अधिक प्रभाव होता। अंग्रेजों की साम्राज्यवादी, औपनिवेशिक तथा पक्षपातपूर्ण नीति के फलस्वरूप अन्त में 1857 का विद्रोह हुआ।

अंग्रेजों ने देशी राज्यों को अपने अधिकार में कर लेने की नीति अपनाई, खासकर लार्ड डलहौजी के शासन काल में, जिसके फलस्वरूप अनेक देशी सामंती राज्यों का विघटन हुआ। अंग्रेजों द्वारा की गई राजस्व व्यवस्था के कारण भारतीय किसानों की स्थिति दिन पर दिन बुरी होती गई। ब्रिटिश उद्योगों के मशीन निर्मित समान बढ़ी तेजी से भारतीय बाजार में आये जिसके फलस्वरूप हजारों लाखों की तादाद में भारतीय और हस्त शिल्पकार बर्बाद हुए। ये सब 1857 के विद्रोह के मुख्य कारण थे। 1857 का विद्रोह महज सिपाहियों का विद्रोह था। इसका सामाजिक आधार अधिक व्यापक था। डॉ० डफ ने कहा है –“अगर यह फौजी बलवा भर होता, और जनता की इसके प्रति सहानुभूति नहीं होती और इसे जनता की मदद नहीं मिली होती जिस तरह की कुछ निर्णायक जीतें हमें मिली, वे इसे खत्म कर देने के लिए काफी थी... और सच यह है कि यह फौजी बलवा भी नहीं था, वरन था जन विद्रोह जनक्रांति.....”⁴

1857 के विद्रोह को आधुनिक अर्थ में राष्ट्रीय नहीं माना जा सकता। इसके पीछे जो भावनाएँ थी वे विदेशियों के खिलाफ थी विद्रोह के सामंती नेताओं के राजनैतिक कार्यक्रम का बस एक ही नकारात्मक उद्देश्य था, विदेशियों को निकाल बाहर करना।

1857 के बाद ब्रिटिश सरकार ने राजनैतिक, युद्धनीतिक कारणों से पुराने प्रतिक्रियावादी और अशक्त सामंती रियासतों को जिंदा तो रखा ही, उसने देश के गैर प्रगतिशील तत्वों के साथ दोस्ती की और उन्हें समर्थन प्रदान करने की नीति भी अपनाई। 1876 में लार्ड लिटन ने घोषणा की कि भविष्य में इंग्लैंड का राजा हर तरह से देशी अभिजात्य का साथ देगा। टेम्पल को अपने काल (1848-80) के अंत में ऐसा भान होने लगा था कि देशी शासन की प्राचीनता और परंपरा पर आधारित देशी अभिजात्य ब्रिटिश शासन के अधीन संगठित और विकसित हो सकेगा।

1857 के पहले ब्रिटेन ने जमकर भारतीयों के सामाजिक जीवन में हस्तक्षेप किया और सती जैसी क्रूर प्रथाओं के खिलाफ आन्दोलन किये और कानून बनाए। लेकिन, 1857 के बाद इसने सामाजिक मामलों में निष्पक्षता की नीति अपनाई। राजा राममोहन राय और अन्य लोगों द्वारा चलाए गए समाज-सुधार आन्दोलनों और रूढ़िग्रस्त सामाजिक संस्थाओं और प्रथाओं के विरुद्ध उनके संघर्ष को सरकार का समर्थन मिला था। 1870 के बाद राजनीतिक और आर्थिक असंतोष व्यापक रूप लेने लगा, जिसकी चरम परिणति के रूप में 1885 में भारतीय राष्ट्र के प्रमुख राजनीतिक संगठन इंडियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना हुई। भारतीय जनता के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण राजनीतिक संगठन इंडियन नेशनल कांग्रेस का पहला अधिवेशन मुम्बई में हुआ। भारतीय राष्ट्रवाद के लगभग सभी प्रमुख नेताओं ने इस अधिवेशन में भाग लिया। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का जन्म भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन में ब्रिटिश शासकों के हस्तक्षेप के कारण हुआ था। लार्ड डफरिन के भाषण से स्पष्ट है- जो उन्होंने कांग्रेस के जन्म के बाद 1886 में शिक्षित लोगों की माँगों पर दिया था- “भारत ऐसा देश नहीं है जिसमें यूरोपीय जनतांत्रिक आन्दोलन की मशीन का इस्तेमाल आत्महानि के बिना किया जा सके। खुद मेरी अभिलाषा तो यह होगी कि इन विभिन्न आन्दोलनों से पैदा हुई माँगों पर सावधानी और गंभीरता से विचार किया जाए, जो कुछ देना संभव या वांछनीय हो, उसे जल्दी और खुशी से दे दिया जाए, घोषणा कर दी जाए कि इन रियायतों को आगामी दस या पंद्रह वर्ष के लिए भारतीय पद्धति के आखिरी फैसले के तौर पर मंजूर करना होगा, और जनसभाओं तथा आग लगाने वाली भाषण बाजी पर रोक लगा दी जाए।”⁵

सन् 1886 में दादाभाई नौरोजी की अध्यक्षता में हुआ कांग्रेस का दूसरा सम्मेलन पहले सम्मेलन से कहीं ज्यादा सफल था। पहले सम्मलेन में सिर्फ 72 प्रतिनिधि थे, लेकिन दूसरे में 434 प्रतिनिधि आये थे। सह सम्मेलन ज्यादा प्रतिनिधिक था।

सन् 1885 ई० में इंडियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना से भारतीयों की बिखरी हुई राजनैतिक आकांक्षाये संगठित हुई। शीघ्र ही यह संस्था भारतीय राजनीति का मानण्ड बन गई। अंग्रेजों की भेद नीति, अर्थनीति, कर नीति तथा शिक्षा-नीति से असन्तोष की अग्नि भड़कती गयी। देश की ऐसी विपन्नावस्था में लोकमान्य गंगाधर तिलक ने राजनीति के क्षेत्र में पदार्पण किया और उन्होंने अदम्य साहस और प्रतिभा के बल पर देश तथा कांग्रेस की राजनीति का स्तर उच्च करने का प्रयास किया। उन्होंने अंग्रेज-विरोधी-आन्दोलन चलाने के लिए जनवादी परम्पराओं का सूत्रपात किया। तिलक द्वारा प्रवर्तित राजनीति से अंग्रेज सरकार भयभीत हो उठी और उसने अनेक दमनकारी कानून बनाये।

1898 के अंत में लार्ड कर्जन की नियुक्ति की घोषणा की गई और 6 जनवरी, 1899 को उन्होंने अपना पद संभाला। कर्जन ने इस नियुक्ति के पहले अपनी योग्यता और विद्वता के लिए काफी नाम कमाया था। इसका स्वागत करते हुए कांग्रेस के 1898 के मद्रास अधिवेशन के अध्यक्ष आनंदमोहन वसु ने अपने भाषण में कहा “मुझे उस अंग्रेज का उल्लेख करने की इजाजत दीजिए जो हमारे देश में आकर सर्वोच्च पद पर आसीन होगा, जो हमारे सम्राट का पवित्र प्रतिनिधि होगा और जो कल हिन्दुस्तान के तट पर उतरेगा। प्रतिनिधि बंधुओं मुझे विश्वास है कि मुझे आप लोगों की सर्वसम्मति प्राप्त है जब मैं लार्ड कर्जन की सेवा में अपना हार्दिक स्वागत पेश करता हूँ।”⁶

श्री रमेशचंद्र दत्त के शब्दों में “लार्ड कर्जन पक्का और जोशीला साम्राज्यवादी था। उसे स्वराज्य की भावना से कोई सहानुभूति न थी और न जनता के सहयोग में विश्वास था।....उसका आदर्श था- तानाशाही शासन।”⁷ उसने भारत के शासन का भार संभालते ही अपने इस चरित्र को उजागर करना शुरू किया। उसका पहला आघात कलकत्ता नगर महापालिका पर था। उसने 1899 में एक कानून पास कर नगरपालिका में करदाताओं द्वारा चुने गए प्रतिनिधियों की संख्या आधी कर दी और सरकार द्वारा मनोनीत अध्यक्ष के हाथ में बहुत ज्यादा अधिकार सौंप दिए। नगर महापालिका को केवल टैक्स लगाने और आम नीति निर्धारित करने का अधिकार रह गया।

कर्जन का दूसरा अप्रिय कार्य था, 1 जनवरी 1903 का दिल्ली दरबार। 1899-1900 में जो भयंकार अकाल पड़ा था उसकी चपेट में मुंबई, मध्यप्रदेश, पंजाब, राजस्थान, बड़ौदा और मध्यभारत की रियासतें आ गई थी। इस आकाल का असर आगामी कई वर्ष तक रहा इसकी कोई परवाह न कर कर्जन ने बड़ी शान-शौकत से दिल्ली दरबार किया और सातवें एडवर्ड को भारत का सम्राट घोषित किया।

कर्जन का तीसरा अप्रिय कार्य विश्वविद्यालय कानून था। इस कानून का लक्ष्य शिक्षा पर सरकारी शिकंजे को मजबूत करना, भारतीयों के लिए उच्च शिक्षा के क्षेत्र को सीमित करना, और शिक्षा को राष्ट्रीय विचारधारा के विरुद्ध साम्राज्यवादियों की विचारधारा के प्रचार का साधन बनाना था। कर्जन की शिक्षानीति के बारे में सी०वाई० चिन्तामणि ने लिखा है- “लार्ड कर्जन की शिक्षा संबंधी नीति, जिसका प्रारंभ लनी वार्नर की ‘सिरिजंस आफ इंडिया’ नामक पुस्तक को उनकी इच्छा के विरुद्ध, यूनिवर्सिटीयों पर पाठ्यक्रम के रूप में लादने से हुआ था, 1904 के इंडियन यूनिवर्सिटीज ऐक्ट के पास होने पर समाप्त हुई। लोगों ने उस ऐक्ट का यह अभिप्राय लगाया की ब्रिटिश सरकार हिन्दुस्तानियों में अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार से असंतुष्ट है।⁸ कर्जन का चौथा अप्रिय कार्य 1904 में तिब्बत पर आक्रमण था। तिब्बत पर रूसी साम्राजियों के प्रभाव को खत्म करने और उसे ब्रिटेन का अर्द्ध उपनिवेश बनाने के लिए कर्जन ने ब्रिटेन सरकार की अनुमति से कर्नल यंग हजबैंड के नेतृत्व में एक मिशन ल्हासा भेजा। सेना के बल से तिब्बतियों के सारे विरोध को कुचलते हुए यह मिशन 3 अगस्त, 1904 को ल्हासा पहुँचा और दलाई लामा को बहुत ही अपमानजनक संधि पर दस्तखत करने को मजबूर किया।

भारतवासियों में कर्जन के इस कार्य के प्रति असंतोष का अंदाज इस बात से लगाया जा सकता है कि महारानी विक्टोरिया की स्मृति को भारत में हमेशा के लिए बनाये रखने के लिए कर्जन ने एक करोड़ से अधिक रूपये खर्च कर कलकत्ता में विक्टोरिया मेमोरियल बनवाया। जागरूक भारतीयों ने इसे पराधीनता का स्मारक और अपनी राष्ट्रीय भावना का अपमान समझा और इसका विरोध किया।⁹

लार्ड कर्जन का सबसे अप्रिय कार्य था बंगभंग। उस वक्त बंगाल में आजकल के पश्चिम बंगाल, बंगाल देश, बिहार और उड़ीसा शामिल थे। उसका क्षेत्रफल

1,89,000 वर्गमील और जनसंख्या लगभग 8 करोड़ थी। लार्ड कर्जन ने कहा कि प्रशासन की दृष्टि से इतना बड़ा प्रांत होना ठीक नहीं और इसके लिए दो टुकड़े कर दिए जाने चाहिए

20 जुलाई, 1905 ई0 को लार्ड कर्जन द्वारा आयोजित बंगभंग की सरकारी घोषणा के प्रकाशित होते ही एक व्यापक जन-आन्दोलन प्रचलित हुआ। बंगाल-विभाजन की भारत-विरोधी नीति से राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत भारतीय जनता की आँखें खुल गयीं। वे अंग्रेजों को बड़े संदेह की दृष्टि से देखने लगे। भीतर ही भीतर अंग्रेजी राज्य को उलटने के लिए क्रांतिकारी संस्थाओं का निर्माण एवं विकास होने लगा। विदेशी माल का बहिष्कार और स्वदेशी का विकास और प्रचार आरम्भ हुआ।¹⁰

बंगाल में बंगभंग योजना की खिलाफत 1903 से आरंभ हो गई थी प्रायः हर शहर और सैकड़ों गाँवों में विरोध सभाएँ हुईं। सिर्फ पूर्व बंगाल में दो महीने के अन्दर कम से कम 500 विरोध सभाएँ हुईं। इस योजना के खिलाफ हजारों पुस्तिकाएँ और परचे छापकर बाँटे गए। 7 जुलाई 1905 को ही सुरेंद्रनाथ बनर्जी द्वारा संपादित बंगाली ने 'बड़ी भारी राष्ट्रीय विपत्ति' शीर्षक संपादकीय में सरकार को चेतावनी दी कि देश इस अन्याय को चुपचाप बर्दाश्त न करेगा और इसके विरुद्ध जबरदस्त आन्दोलन छिड़ेगा।

कलकत्ता के टाउन हाल में पाँच बार जनसभाएँ हुईं जिनमें संयुक्त बंगाल के हिंदू-मुसलमान, राजा महाराजा और नवाब शिक्षित-अशिक्षित सभी शामिल हुए। ब्रिटिश इंडिया एसोसिएशन, बंगाल लैंडहोल्डर्स एसोसिएशन, और अन्य सब संगठित तथा मान्यता प्राप्त महत्त्वपूर्ण संगठनों ने सरकार को स्मृतिपत्र देकर बंगभंग की योजना का रद्द करने की मांग की।

जब लोगों ने देखा कि ब्रिटिश शासक बंगभंग की योजना भारत पर लादने पर तुले हैं तो उन्होंने भी बायकाट और स्वदेशी का नारा बुलंद किया। बंगाल पत्रिका संजीवनी के संपादक कृष्णकुमार मिश्र ने अपनी पत्रिका के 13 जुलाई 1905 के अंक में सुझाव दिया कि लोगों को सारे ब्रिटिश माल का बायकाट करना चाहिए, शोक मनाना चाहिए और सरकारी अधिकारियों तथा सरकारी संस्थाओं से सारा संपर्क तोड़ लेना चाहिए।¹¹

कलकत्ता के विद्यार्थियों की पहली महत्वपूर्ण सभा, जिसमें बायकाट की शपथ ली गई, 17 जुलाई 1905 को रिपन कालेज (वर्तमान सुरेन्द्र नाथ कालेज) में हुई। 30 जुलाई को इंडेन हिन्दू होस्टल के लगभग 200 हाल में विराट जनसभा हुई जिसमें बड़े-बड़े नेताओं के अलावा विभिन्न जिलों के प्रतिनिधिमंडल भी उपस्थित थे। पांच हजार से ज्यादा विद्यार्थियों का जूलूस कालेज स्कवायर से चलकर इस सभा में शामिल हुआ। नीले झंडों पर बंगला में लिखा था, संयुक्त बंगाल। काले झंडों पर लिखा था संयुक्त बंगाल, एकता ही बल है, वंदेमातरम् बंगभंग नहीं चलेगा।¹²

लार्ड मिंटो (1905-20) के काल में इस आन्दोलन का क्रूरता और कठोरतापूर्वक दमन करने का प्रयास किया गया। 1907 के 'राजद्रोहात्मक-सभा-निषेध-कानून' द्वारा सभाओं पर रोक लगा दी गयी। प्रदर्शन निषिद्ध कर दिये गये। सन् 1910 में "समाचार-पत्र-कानून" द्वारा "युगान्तर", 'सन्ध्या', 'वन्देमातरम्' इत्यादि पत्रों को बन्द कर दिया गया तथा इनके सम्पादकों को तंग किया गया। जितना सरकार देशभक्तों को दबाती उतनी ही उग्रता से आन्दोलन आलोकित होता।

इसी बीच सन् 1907 में 'सूरत कांग्रेस के अवसर पर कांग्रेस' गरम दल और नरम दल में विभक्त हो गयी। गरम दल के नेता तिलक और नरम दल के गोखले हुए। गरम दल के क्रान्तिकारियों ने देश में हिंसात्मक तोड़-फोड़ 'गुप्त-संगठन चलाना आदि कार्यवाहियाँ शुरू कर दीं। साथ ही "स्वराज्य हमारा जन्मसिद्धि अधिकार है" यह घोषणा भी कर दी गयी।¹³

बंगभंग और स्वदेशी आन्दोलनों की गति को कम करने के लिए अंग्रेजों ने भेदनीति ग्रहण करते हुए सन् 1906 ई० में मुस्लिम लीग की स्थापना करा दी थी। आगे चलकर इस संस्था ने भी कुछ काल तक राष्ट्रीय आन्दोलन की प्रगति में कांग्रेस का साथ दिया।

सन् 1909 में मार्ले-मिंटो-सुधारक कार्यान्वित किये गये, किन्तु इस सदोष योजना से कोई विशेष लाभ न हो सका। हिंदू-मुस्लिम भेद-भाव को प्रखर करने में अवश्य ही इसने सहायता पहुँचाई। 1911 में 'बंगभंग' प्रस्ताव को भी सरकार ने वापस ले लिया।¹⁴

1914 ई० में तिलक कारागार से मुक्त हुए। इसी समय श्रीमती एनीबेसेण्ट कांग्रेस में सम्मिलित हुई। 1915 में गोखले की मृत्यु ने नरम दल की शक्ति को और भी कम कर दिया। उनकी मृत्यु से देश को बड़ा आघात पहुँचा। 1916 में तिलक और एनीबेसेण्ट की 'होमरूल-लीग' आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। इसका उद्देश्य था, देश की संगठित जाग्रत चेतना को भटकाव से बचाना, उसे दिशा देना। होमरूल आन्दोलन ने स्वशासन की मांग की एक उत्तरदायी शासन मांगा। इस आन्दोलन का कार्यक्षेत्र सम्पूर्ण देश बन गया। इसकी प्रभावात्मकता के विषय में डॉ० राजेन्द्र प्रसाद का कथन है - "सरकार इससे घबरा सी गयी। उसने श्रीमती एनीबेसेण्ट को उनके दो साथियों के साथ नज़रबन्द कर दिया। इस पर आन्दोलन ने जोर पकड़ा।"¹⁵

विश्व राजनीति के रंगमंच पर अभिनीत होने वाले दृश्य भी जनमानस को प्रभावित कर रहे थे। रूस-जापान युद्ध में रूस की हार और जापान की विजय तथा उसके बाद रूस में क्रांति ने खासकर एशिया के पराधीन देशों के राष्ट्रीय और जनतांत्रिक आंदोलनों को बहुत प्रभावित किया। रूस उस वक्त दुनिया का सबसे शक्तिशाली साम्राज्यवादी देश माना जाता था। उसकी शक्ति से ब्रिटेन के साम्राज्यवादी भी घबराते थे। किंतु जब उसी को एक छोटे से देश जापान ने पराजित कर दिया तो पराधीन देशों की जनता के अन्दर यह विश्वास पैदा हो गया कि साम्राज्यवादियों की शक्ति अजेय नहीं उन्हें पराजित करना सम्भव है। साम्राज्यवादी रूस की हार और रूसी क्रांति के प्रभाव के बारे में लेलिन ने कहा कि - "विश्व पूंजीवाद और रूस के 1905 के आन्दोलन ने एशिया को अंततः नया जन्म दिया है।"¹⁶

इसी बीच सन् 1915 तक गांधी जी भी अफ्रीका से लौटकर भारत आ चुके थे। देश की स्थिति का उन्होंने शान्तिपूर्वक अध्ययन प्रारम्भ किया। सन् 1914 से 1918 ई० तक प्रथम महायुद्ध चलता रहा। इस समय भारतवासियों ने युद्ध में ब्रिटेन का तन मन तथा धन से साथ दिया। जिसके लिए अंग्रेजों ने भारत के प्रति कृतज्ञता भी प्रकट की। किन्तु युद्ध समाप्त होते ही पुनः भारतवासियों पर वही अत्याचार आरम्भ हो गये 18 मार्च, 1919 को रौलट ऐक्ट पास किया गया। 10 दिसम्बर, 1917 को इंग्लैंड के हाईकोर्ट के जज रौलट की अध्यक्षता में राजद्रोह कमेटी नियुक्त की गई।

ब्रिटिश शासकों ने युद्ध के दौरान बने कानून के अंतर्गत भारतवासियों का दमन करने के लिए जो विशेष अधिकार प्राप्त कर रखे थे, युद्ध के बाद उन अधिकारों को

इस कानून के जरिए जारी रखा गया अर्थात् युद्धकालीन भारत सुरक्षा कानून ने युद्ध के बाद रौलट ऐक्ट का रूप ले लिया। राजद्रोहात्मक कार्यों के संदेह पर किसी भी व्यक्ति को मुकद्दमा चलाये बिना जेल में या किसी भी अन्य स्थान पर नज़रबन्द रखने, उससे जमानत लेने, अथवा उसकी गतिविधि पर बंदिश आदि लगाने का अधिकार ब्रिटिश शासकों ने इस काले कानून के जरिए युद्ध के बाद भी अपने हाथ में रखा। वस्तुतः ब्रिटिश शासकों ने युद्ध के बाद भारतीयों के स्वाधीनता आंदोलन को कुचलने की गरज से दमन का नया हथियार गढ़ा था। इस काले कानून को पास करते वक्त ब्रिटिश शासकों की तरफ ले सफाई दी गई थी कि इसका राजनीतिक आंदोलन को दबाना नहीं, सिर्फ आतंकवाद को रोकना है।¹⁷

1919 ई0 में ही रौलट बिल स्वीकृत हो गया । इससे सारे देश में रोष फैला। 1919 ई0 का वर्ष राजनीतिक घटनाओं का तूफानी वर्ष था इसी वर्ष से गांधी युग शुरू होता है। गांधी जी ने रौलट ऐक्ट के विरुद्ध सत्याग्रह किया - “अतः मैं शपथपूर्वक प्रतिज्ञा करता हूँ कि यदि इन विधेयकों को कानून का रूप दिया गया तो जब तक उन्हें वापस न लिया जाएगा तब तक मैं इस तथा ऐसे अन्य कानून को भी, जिसे इसके बाद नियुक्त की जाने वाली सत्याग्रह कमेटी उचित समझेगी मानने से नम्रतापूर्वक इंकार कर दूंगा। मैं इस बात की प्रतिज्ञा करता हूँ कि इस युद्ध में ईमानदारी के साथ सत्य का अनुसरण करूँगा और किसी के जान-माल को हानि न पहुँचाऊँगा।”¹⁸

तत्पश्चात् प्रतिज्ञापत्र पर हस्ताक्षर का अभियान शुरू हुआ और सत्याग्रह आन्दोलन चलाने के लिए सत्याग्रह समितियाँ बनने लगी। गांधी जी ने 30 मार्च, 1919 को सारे देश में रौलट ऐक्ट के खिलाफ हड़ताल का दिन निर्धारित किया। यह तारीख बाद में बदलकर 6 अप्रैल कर दी गई। हंटर कमीशन की रिपोर्ट के अनुसार दिल्ली में उस दिन सारा कारोबार ठप हो गया। कल-कारखाने, दुकानें, हाट-बाज़ार स्कूल कालेज सबका काम बंद रहा।

हंटर कमीशन के खुद स्वीकार किया है कि 6 अप्रैल को पंजाब के 30 से ज्यादा शहरों और जिलों में हड़ताल हुई जनसभाएँ हुई और जुलूस निकले। लाहौर, अमृतसर और दिल्ली में ब्रिटिश साम्राजियों के विरुद्ध इन प्रदर्शनों ने बहुत व्यापक रूप धारण

किया। 6 अप्रैल का दिन हड़ताल के संचालकों के प्रयास से शांति के साथ बीत गया। हड़ताल की इस सफलता से पंजाब के लेफ्टीनेंट गर्वनर ओडायर का पारा चढ़ गया। उसने बुद्धि से काम लेने की जगह पशुबल से काम लेने का फैसला किया।

13 अप्रैल को अमृतसार में जलियांवाला बाग की दुःखद घटना घटी। जनरल डायर के आज्ञानुसार शांतिपूर्ण सभा में हाजिर निहत्थे लोगों पर सैनिकों द्वारा किए गए गोलीकांड में 400 आदमी मारे गये और 1,200 घायल हुए। जब लोगों में उस घटना की खबर पहुंची तो क्रोध तथा आतंक की एक लहर फैल गई।

साम्राज्यवादी भेड़ियों की क्रूरता का अंत यही नहीं हुआ। 14 अप्रैल को हालत बिल्कुल शांत रहने पर भी 15 अप्रैल को अमृतसर में मार्शल ला लागू कर दिया गया और इसके बाद भारतीयों को हर तरह अपमानित किया गया।¹⁹ अमृतसर की इन घटनाओं ने पंजाब को ब्रिटिश साम्राज्यवादियों के खिलाफ विद्रोह के द्वार पर लाकर खड़ा कर दिया। हंटर कमीशन की रिपोर्ट के अनुसार 14-15 अप्रैल को पंजाब के 50 शहरों और जिलों में प्रदर्शन हुए।

जनसभा के बाद बड़ा भारी जुलूस निकला जिसमें जार्ज पंचम का पुतला जलाया गया। इस जुलूस का नेतृत्व डंडा फौज नामक संगठन ने किया।

12 अप्रैल को इस संगठन ने 'डंडा अखबार' नामक विशेष समाचारपत्र निकाला जिसमें पंजाब के सभी निवासियों से एक होने की अपील की गई थी। उसमें छपा एक नारा था - "ओ हिंदू, मुसलमान और सिख भाइयों, फौरन डंडा फौज में भरती हो जाओ और अंग्रेज बंदरो के खिलाफ बहादुरी से लड़ो।"²⁰

भारतीयों की साम्राज्यवाद विरोधी इस एकता को मजबूत करने और मुसलमानों को ब्रिटिश शासकों के विरुद्ध खड़ा करने में 'खिलाफत' आन्दोलन और 'खिलाफत कमेटी' का बहुत बड़ा हाथ था। प्रथम विश्वयुद्ध के समय तुर्की का सुल्तान एक विशाल साम्राज्य का स्वामी ही न था, वह दुनिया भर के सुन्नी मुसलमानों का धार्मिक गुरु खलीफा भी था। महायुद्ध में तुर्की की हार के बाद ब्रिटेन, फ्रांस आदि ने उसके राज्य को आपस में बांट लिया था। और खलीफा सिर्फ एक छोटे राज्य का स्वामी रह गया था। इस बर्ताव से दुनिया के सभी मुसलमानों में असंतोष फैला। उन्होंने अपने असंतोष को संगठित रूप देने के लिए जगह-जगह खिलाफत कमेटी की स्थापना की। भारत में

खिलाफत कमेटी की स्थापना 1918 में हुई। इसका मुख्य उद्देश्य तुर्की के साम्राज्य के बटवारे के खिलाफ और खलिफा के पक्ष में आन्दोलन करना था। इस तरह यह आन्दोलन मूलतः प्रतिक्रियावादी था। लेकिन अंतराष्ट्रीय और राष्ट्रीय क्रांतिकारी परिस्थिति ने इसके रूप को भी बदल दिया, उसे साम्राज्यवाद विरोधी और राष्ट्रीय आन्दोलन का एक अंग बना दिया।²¹

1919 ई० में कांग्रेस में बड़ा विवाद छिड़ा। बाद में गांधी जी और तिलक एक दूसरे से अलग हो गये। अगस्त, 1920 को तिलक का देहान्त हो गया। सन् 1920 में कांग्रेस की बागडोर गांधी जी ने संभाली। उन्होंने हिन्दुओं और मुसलमानों को संगठित करके असहयोग आन्दोलन आरम्भ किया। इस आंदोलन के मुख्य सूत्र सरकारी उपाधियों का त्याग, सरकारी उत्सवों, न्यायालयों और सरकारी स्कूलों का बहिष्कार, कौंसिल के निर्वाचन आदि कामों से सम्बन्ध-विच्छेद थे। सरकार ने बड़े-बड़े नेताओं-मोतीलाल नेहरू, लाला लाजपतराय आदि को कारागृह में फेंक दिया।²²

1921 ई० में 'प्रिंस आफ वेल्स' के भारत-आगमन पर उनका बहिष्कार किया गया। देश की राजनीति पर महात्मा गांधी पूर्णतः छा गये। 5 फरवरी 1922 को चौरी-चौरा-काण्ड के बाद गांधी जी ने अपना आंदोलन रोक दिया। गांधी जी के इस व्यवहार से समूचे देश को गम्भीर आघात लगा। सरकार ने गांधी जी को बन्दी बनाकर उन्हें छः वर्ष के कारावास का दण्ड दिया। इसी समय कांग्रेस के अंतर्गत ही 'स्वराज्य दल' का निर्माण हुआ जिसके विधायकों में पं० मोतीलाल नेहरू और देशबन्धु चितरंजन दास प्रमुख थे।

1928 ई० में "साइमन कमीशन" भारत में आया। इसका उद्देश्य था इस बात का पता लगाना कि क्या भारत में यह योग्यता और क्षमता है कि वह स्वशासन के उत्तरदायित्व को निभा सकेगा? इस कमीशन का स्वागत "साइमन गो बैक" के नारों से हुआ। इसी आन्दोलन में पुलिस के आमनवीय लाठी-प्रहार ने पंजाब-केसरी लाला लाजपतराय की हत्या कर दी।²³

इसी वर्ष बारदोली में सरकार पटेल के नेतृत्व में किसानों ने आन्दोलन किया। सरकार ने किसानों की सम्पत्ति का अपहरण कर लिया, उन्हें आतंकित करने का बहुत

प्रयास किया, पर किसान टस से मस न हुए। उन्होंने कर देना स्वीकार नहीं किया। देश-व्यापी हड़तालें हुई और सरकार को झुकना पड़ा। 1930 में 'नमक-आन्दोलन' प्रारम्भ हुआ। 22 मार्च, 1930 को गांधी जी की प्रसिद्ध ऐतिहासिक 'दांडी-यात्रा' का शुभारम्भ हुआ। 6 अप्रैल को दांडी में नमक-कानून तोड़ा गया। 'सविनय अवज्ञा आन्दोलन' ने सरकार को नाकों चने चबा दिये। कारागृह ठसाठस भर गये। कांग्रेस को अवैध संस्था घोषित कर दिया गया। किन्तु स्वतंत्रताकामी मतवालों ने अत्याचारों के सम्मुख समर्पण नहीं किया। अंग्रेजों ने भारतीयों पर लाठियों और बन्दुको के कुन्दों से प्रहार किये, किन्तु भारतवासी पीछे नहीं हटे। इससे इंग्लैंड की शक्ति क्षीण हुई और भारत अजेय बना।

5 मार्च, 1931 को गांधी-इरविन समझौता हुआ। इसी वर्ष भगतसिंह को प्राणदण्ड दिया गया। सुखदेव और राजगुरु को भी फांसी पर लटकाया गया। इन अत्याचारों की प्रतिक्रिया-स्वरूप देशभर में क्रोध की एक लहर दौड़ गई। इसी वर्ष लन्दन में गोलमेज-सम्मेलन हुआ। इसमें भाग लेने के लिए गांधी जी भारत से गये। यह सम्मेलन निष्फल सिद्ध हुआ। स्वदेश लौटकर गांधी जी ने पुनः आन्दोलन छेड़ दिया।²⁴

इस प्रकार द्विवेदीयुगीन काव्य (1900-1920 ई0) में राष्ट्रीय जागरण का पहला उबाल पूरी ताकत से आया, जिसका प्रभाव आगे आने वाले साहित्य पर भी पड़ा।

मैथिलीशरण गुप्त जी के समय में अंग्रेजों का शासन पूर्ण रूप से स्थापित हो चुका था। राजनीतिक क्षेत्र में कांग्रेस अंग्रेजों के दमन-चक्र के विरुद्ध आन्दोलन कर रही थी और स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए भारतवासी गांधी जी के नेतृत्व में उत्तरोत्तर प्रगति के पथ पर बढ़ते चले जा रहे थे।

गुप्त जी ने सक्रिय राजनीति में तो अधिक भाग नहीं लिया, परन्तु गुप्त जी भी अप्रैल 1941 ई0 में भारत रक्षा-विधान धारा के अन्तर्गत राज-बन्दी बनाये गये। पहले उन्हें झाँसी जेल में रखा गया और फिर दो माह पश्चात् आगरा केन्द्रीय कारागार में भेज दिया गया। वहाँ से 14 नवम्बर 1941 को उन्हें छोड़ दिया गया। इस 7 महीने के कारावास ने गुप्त जी को राजनीति के क्षेत्र में उतरने के लिए बाध्य तो किया, परन्तु गुप्त जी अपने साहित्य के माध्यम से ही राजनीति में भाग लेते रहे। गुप्त जी के इन राजनीतिक विचारों की अभिव्यक्ति उनके काव्यों में स्थान-स्थान पर मिलती है।²⁵

सर्वप्रथम मैथिलीशरण गुप्त जी ने 'भारत-भारती' की रचना करके देशवासियों को पराधीनता की बेड़ियों से मुक्त होने के लिए सचेत एवं सावधान किया और विदेशी सत्ता को उखाड़ फेंकने का आग्रह किया -

शासन किसी परजाति का चाहे विवेक विशिष्ट हो,
सम्भव नहीं है, किन्तु जो सर्वाश में वह इष्ट हो।²⁶

तत्पश्चात् कवि श्री गुप्त जी ने स्वदेश-संगीत में सत्याग्रह, स्वराज्य की अभिलाषा गांधी-गीत, भारत का झंडा आदि शीषकों के अन्तर्गत तत्कालीन राजनीतिक आन्दोलनों पर अपनी लेखनी चलाई। गांधी जी द्वारा प्रवर्तित सत्याग्रह की प्रशंसा करते हुए कवि ने स्पष्ट लिखा-

सत्याग्रह है कवच हमारा, कर देखो कोई भी वार।
हार मानकर शत्रु स्वयं ही यहाँ करेगे मित्राचार।²⁷

ऐसे ही अंग्रेजों की दमन-नीति एवं भारतवासियों के अहिंसापूर्ण आन्दोलनों की झांकी प्रस्तुत करते हुए कवि ने लिखा है-

अस्थिर किया शेष वालों को गाँधी टोपी वालों ने,
शस्त्र बिना संग्राम किया है, इन माई के लालों ने।
अपने निश्चय पर ये दृढ़ हैं, मारो, पीटो, बन्द करो,
अजब बाँकपन दिखलाया है, इनकी सीधी चालों ने।²⁸

इस प्रकार द्विवेदी-युग राजनीतिक उथल-पुथल का युग था। भारतेन्दु युग की अपेक्षा इस युग की राजनीतिक स्थिति गंभीरतर हो गयी। जीवन की राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों के मध्य द्विवेदी-युग की राजनीति ने एक ऐसे नवीन युग की अवतारणा की जिसमें पाश्चात्य अघात पाकर भारतीय आत्मा को व्यक्त करने के लिए विचलित हो उठी।

आर्थिक पृष्ठभूमि

आदिम हल और बैल से खेती और साधारण औजार की मदद से दस्तकारी की भित्ति पर टिका आत्मनिर्भर गाँव, यही अंग्रेजों के आने के पहले की भारतीय अर्थव्यवस्था का मूल सत्य है। ये स्वपर्याप्त गाँव सदियों से भारतीय जीवन की मूल आर्थिक इकाई थे।

ईस्ट इंडिया कम्पनी ने एक व्यापारिक संस्था के रूप में भारत में पदार्पण किया। भारत पर अंग्रेजों के राजनीतिक प्रभुत्व के विस्तार की दिशा में उठाया गया हर कदम पुरानी अर्थव्यवस्था के विघटन और नए आर्थिक रूपों के उन्नयन की दिशा में ही अलग कदम था।

अंग्रेजों के राजनीतिक प्रभुत्व के विकास के साथ-साथ पुराने उद्योगों और भूमि व्यवस्था पर आधारित पुराने वर्गों का विनाश हुआ और नए भूमि संबंधों और नए उद्योगों पर आधारित नए वर्गों का उदय हुआ है।

महारानी विक्टोरिया के शासन ने कम्पनी को स्थानापन्न करके भारत के आर्थिक शोषण का कार्य तीव्रतर किया। कम्पनी की आर्थिक नीतियों से भारतवर्ष दरिद्र ही नहीं, अपंग भी होता गया। अस्थाई भूमि प्रबंध द्वारा किसान की भूमि उससे छीन ली गयी। अब किसान भूमि का स्वामी न रहा, उस पर अब जमींदार का स्वत्व स्थापित हो गया। सबसे पहले 1793 ई० में कार्नवालिस ने बंगाल, बिहार और उड़ीसा में जमीन के स्थाई बंदोबस्त के जरिए भारत में जमींदारों का सृजन किया लार्ड बैटिंग ने जो 1828 से 1835 तक भारत का गवर्नर जनरल था, कहा है- “यद्यपि स्थाई बंदोबस्त कई अर्थों में, यहां तक कि अपने मूलभूत तत्वों में भी असफल रहा, फिर भी व्यापक जन विद्रोह या क्रांति के विरुद्ध सुरक्षा की दृष्टि से इसका यह बहुत बड़ा फायदा रहा कि इसके जरिए भूमिधरों का ऐसा बड़ा दल तैयार हो गया जिसको ब्रिटिश शासन के स्थायित्व से फायदा था, और जिसका जनसाधारण पर पूरा नियंत्रण था।”²⁹

कृषि में कई बार सुधार किये गये, पर सुधार के नाम पर मात्र नाटक ही हुए। 1885 के कानून द्वारा किसानों से उपज का आधा-भाग लेकर उन्हें लाभ पहुँचाने की बात कही गयी, किन्तु समय-समय पर जमींदारों द्वारा लिये जाने वाले चन्दों से किसान की कमर टूट जाती थी। इस पर कभी प्रकृति प्रकोप, कभी पशुओं का रोगी होकर मर जाना, कभी पुत्री का विवाह कभी जीने और मरने के समय व्यवस्था-इस सब से निपटने के लिए पैसा चाहिए था। इन आड़े अवसरों पर जमींदार ही किसान की सहायता करता था। ब्याज चुकाने में ही किसान का सम्पूर्ण जीवन चुक जाता था। इसके अतिरिक्त कृषक की अनेक समस्याएँ थी। आर्थिक दृष्टि से वह अत्यन्त हीनवस्था को प्राप्त था।

इस कृषि-प्रधान देश के कृषक की स्थिति अत्यन्त हीन और करुणोत्पादक थी। वह किसान से श्रमिक मात्र बनकर रह गया था और अपने श्रम का पारिश्रमिक भी उसे न मिलता। रमेशदत्त ने लिखा है।—“कि उसे कभी कभी भरपेट भोजन न मिल पाता था, उसे झोपड़ी के लिए फूस भी उपलब्ध न होता था, उसकी स्त्री चिथड़ों में रहती और बच्चे नंगे”।³⁰

अंग्रेजों के सम्पूर्ण शासन काल में हमारे किसान की यही दशा रही। मैथिलीशरण गुप्त जी ने किसान के दारिद्र्य का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है।

कृषक-वंश में जन्म यहाँ जो हम पाते हैं,
तो खाने के नाम नित्य हा हा खाते हैं।
मरने के लिए यहाँ क्या हम आते हैं?
जीवन के सब दिवस दुःख में ही जाते हैं।³¹

अंग्रेजों की अर्थ-नीति ने ग्रामीण कला-कौशल और उद्योगों को भी पूर्णतः नष्ट कर दिया। सबसे पहले कपड़ा उद्योग को लीजिए जिसके लिए भारत संसार भर में विख्यात था। पहले ज्यादा शुल्क लगाकर और फिर कानून बनाकर उन्होंने भारतीय कपड़े को ब्रिटेन के बाजार से निकाला, फिर यूरोप और अन्य देशों के बाजार से और आखिर में खुद भारत के अन्दर उसका पटरा बैठा दिया। भारत के बाजार पर ब्रिटिश पूजीपतियों के कारखानों में बना कपड़ा छा गया।

इसी तरह भारत के रेशमी और ऊनी कपड़े, लोहे, कांच और चमड़े, चीनी आदि के उद्योग नष्ट किये गये। ग्रामीण उत्पादन में जैसे-जैसे मशीन का उपभोग बढ़ा, वैसे वैसे गाँव के बढ़ई की स्थिति बुरी होती गई। लोहे के हल और ईख से रस निकालने वाले लोहे के यंत्र जैसे नए तरीकों से उसे बहुत नुकसान हुआ। बेकार बढ़इयों में से कुछ शहर में फर्नीचर बनाने जैसे उद्योगों में लगे।

गाँव के ऊपरी तबके के लोग धीरे-धीरे विदेशी तामचीनी के बर्तन या शहरों के बढ़ते हुए धातु उद्योग से निर्मित धातु के बर्तनों का इस्तेमाल करने लगे। इसके चलते गाँव के कुम्हार द्वारा बनाई गई चीजों का बाजार घटा।

भारत पहले अपने उद्योगों का तैयार माल ब्रिटेन और अन्य देशों को भेजता था, वह अब ब्रिटेन के कारखानों के तैयार माल का बाजार बन गया और उन्हें कच्चा माल भेजने लगा। खासकर 1833 से कच्चे माल का निर्यात तेजी से बढ़ा।

1853 में ब्रिटिश शासकों ने भारत में रेल का निर्माण शुरू किया। इसके निर्माण का प्रधान उद्देश्य भारत के कच्चे माल को अन्दर के हिस्से से बंदरगाहों तक पहुँचना और ब्रिटेन से आये तैयार माल को बंदरगाहों से देश को अन्दर के हिस्से में ले जाना था।

रेलवे निर्माण का दूसरा लक्ष्य सेना को दूर-दूर तक ले जाना था ताकि ब्रिटिश शासकों के प्रति किसी भी विद्रोह को आसानी से दबाया जा सकें। रेलवे निर्माण के आरम्भ के साथ ही साथ यह विवाद छिड़ गया था कि भारत को ज्यादा लाभ रेलवे से पहुँचेगा या नहरों से ? भारत के लिये नहरें ज्यादा लाभदायक थीं। उनसे यातायात और सिंचाई दोनों काम ले सकते थे। वे कम खर्च में बन सकती थीं और उनकी देखरेख में भी कम खर्च होता।³²

1878 में ब्रिटिश सरकार द्वारा नियुक्त सेलेक्ट कमेटी के सामने 3 करोड़ पौंड खर्च कर सारे भारत में यातायात के उपयुक्त नहरें बनाने की योजना आयी। लेकिन सेलेक्ट कमेटी ने इसे ठुकरा दिया क्योंकि नहरों की प्रतियोगिता रेलवे से होने लगती और रेलवे में लाखों पौंड की पूंजी लगाने वाले ब्रिटिश पूंजीपतियों का लाभ कम हो जाता।

जिस देश के पास लोहा और कोयला है, उद्योग धन्धों के अन्य साधन हैं, उसके यहाँ रेलवे का निर्माण और महत्त्व रखता है। इस विषय में कार्ल-मार्क्स ने कहा था- “ मैं जानता हूँ कि अंग्रेज उद्योगपति केवल इसलिये भारत में रेलें बिछाना चाहते हैं कि वे रूई और अन्य कच्चा माल अपने कारखानों के लिये कम खर्च में प्राप्त कर सकें। मगर जिस देश में लोहा और कोयला हो, उसके यातायात के साधनों में जब आप एक बार मशीनों को ले आयेंगे तो उसे खुद मशीनें बनाने से आप नहीं रोक सकेंगे। इसलिये रेल व्यवस्था भारत में आधुनिक उद्योग की जननी बनेगी। ”³³

इसी समय से भारत के तीन प्रधान उद्योगों, कपड़ा मिलों, कोयला खानों और चटकलों का विकास आरम्भ हुआ।

19 वीं शताब्दी के वैज्ञानिक अविष्कारों ने भारत ही नहीं सारे विश्व के उद्योग धन्धों में क्रांति उपस्थित कर दी। पुतलीघरों तथा अन्य कलखानों के निर्माण ने श्रमिक

वर्ग के कारीगरों की जीविका छीन ली सड़को, नहरों, रेल, तार, डाक आदि ने विदेशों की दूरी कम कर दी सन् 1869 ई० में स्वेज नहर के बन जाने से यूरोप का भारत से व्यापारिक संबंध और सुगम हो गया। यूरोपीय तथा विदेशी वस्तुओं ने भारतीय बाजार पर अधिकार कर लिया।³⁴

इस प्रकार हमारा व्यापार चौपट हो गया। वस्त्र निर्माण हिन्दुस्तान का प्रमुख उद्योग था, और यहाँ के सूती और रेशमी कपड़ों की सारी दुनिया में तारीफ और मांग थी। 13 वीं, 14 वीं, और 15वीं, शताब्दियों में धातुकार्य, प्रस्तरशिल्प, शक्कर, नील और कागज के भी उद्योग विकसित थे। कुछ भागों में काष्ठकर्म, चर्मकार्य आदि उद्योग भी पल्लवित हुए। देश में कई हिस्सों में रंगाई प्रमुख उद्योग था, कुछ भागों में जरी का काम और कसीदाकारी का काम पूर्णता के चरम बिंदु तक विकसित था। खानों में रांगा, पारा और कुछ हद तक लोहा निकालने और शीशे के निर्माण कार्य भी महत्वपूर्ण और विकसित उद्योग थे। चीन की तरह भारत में भी चीनी की मिट्टी के बर्तनों का उद्योग काफी विकसित था। गजदंत से कंगन, अंगूठी, पांसा, मनका, पलंग और अनेक चीजें बनती थीं।

भारत में अंग्रेजों के आने के पहले शहरों में दस्तकारी का उच्च कोटि का काम सदियों से चला आ रहा था। उनकी कलात्मकता उच्चकोटि की थी। उनकी ख्याति दूर-दूर तक फैली हुई थी इसलिए भारतीय उद्योगों का माल दुनिया के बाजारों में छाया था। इस संबंध में कैलबर्टन ने लिखा है - “प्राचीन काल में जब रोम के निजी और सार्वजनिक भवनों में भारतीय कपड़ों, दीवारदरी, तामचीनी, मोजेक, हीरे-जवाहरात आदि का उपयोग होता था, उस वक्त से औद्योगिक क्रांति के प्रारंभ तक, आकर्षक और उद्दीपक वस्तुओं के लिए सारा संसार भारत का मोहताज रहा।”³⁵

भारतीय उद्योग-धन्धे प्रधानतः घरेलू थे और कृषि के साथ उनका गहरा संबंध था। ये उद्योग स्थानीय जनसंख्या, ग्राम समाज और शासकों की जरूरतों को पूरा करते और बहुत से माल को अन्य देशों में व्यापारियों के जरिए भेजते।

ब्रिटिश शासकों ने प्रधानता राज्य सत्ता का दुरुपयोग कर भारत के प्राचीन उद्योग-धंधों को नष्ट कर दिया। वह देश कभी जिसके व्यापारिक संबंध एशिया और यूरोप

के विभिन्न देशों से थे, जो कभी 'ढाँके की मलमल' और हीरों का निर्यात किया करता था, अब विदेशों से कपड़े का आयात कर रहा था। चीनी जैसी वस्तु भी उसके देश में विदेशों से आने लगी। कभी उसके यहाँ इन वस्तुओं से भाण्डार भरे रहते थे, अंग्रेजों की आर्थिक नीति के कारण आज वह इन वस्तुओं को बाहर से क्रय करके प्रयोग कर रहा था अपनी आयात-निर्यात नीति से अंग्रेजों ने भारत का मन-भरकर शोषण करने की पूरी सुविधा प्राप्त कर ली। मैथिलीशरण गुप्त जी ने अपनी रचनाओं में इसका यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है-

“वाह रे वह व्यापार विराट,
जातियाँ जावें बाहर बाट।
लगाकर सौ चषकों की चाट।
न छोड़ेगा कोई घर-घाट।
तुम्हें लूटेगा बाँट अफीम,
स्वप्न देखोगे तुम झँप-झीम।”³⁶

सरकारी सेवाओं की स्थिति भी कुछ अच्छी न थी। भारतवासियों को उच्च शासकीय पद न देने की नीति का अंग्रेजों ने सदैव सतर्कता से पालन किया। वेतन कम, स्तर ऊँचा, प्रदर्शन अधिक- अतः भ्रष्टाचार पनपा। अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त प्रत्येक नवयुवक “बाबू” बनने का स्वप्न देखता, और किसी योग वह रह ही न जाता था। परिणाम यह हुआ कि शिक्षितों की संख्या के साथ ही “बेकारों” की संख्या भी अभिवृद्ध होने लगी। मैथिलीशरण गुप्त जी ने इस स्थिति को समझा और अपनी रचनाओं में इसे व्यक्त किया-

अब नौकरी ही के लिए विद्या पढ़ी जाती यहाँ
बी०ए० न हों हम तो भला डिप्टीगरी रखी कहाँ।
किस स्वर्ग का सोपान है तू हायरी, डिप्टीगरी।
सीमा समुभति की हमारी, चित में तू ही भरी।³⁷

मिल और कारखाने लग जाने के बाद समाज में आर्थिक आधार पर ‘मिल मजदूरों’ का एक वर्ग और बन गया। इनके वेतन की दर बहुत कम होती थी स्वामियों के हाथों इनका भरपेट शोषण होता। दूषित आवास और अपर्याप्त भोजन के पतन का पथ स्वच्छ किया। असन्तोष के दोला पर निरन्तर झूलते हुए श्रमिकों ने आगे चलकर

तोड़-फोड़ हड़ताल इत्यादि का आश्रय लिया। अंग्रेजों की भारत-विरोधी अर्थ-नीति के साथ प्रकृति ने भी मानों षड़यंत्र रचकर भारत को पूर्णतः मसल देने की शपथ ले ली। महामारी और अकालों से देश त्राहि-त्राहि कर उठा। सन् 1868-69 में घोर अकाल पड़ा लगभग बीस लाख व्यक्ति मरे। सन् 1877 ई० में दक्षिण में भयंकर दुर्भिक्ष पड़ा। लार्ड लिटन (176-80 ई०) अकाल पीड़ितों की सहायता का उचित प्रबन्ध न कर सके। लार्ड एल्लिन के समय में (1864-99 ई०) पश्चिमोत्तर प्रान्त, मध्य प्रदेश, बिहार और पंजाब में अकाल पड़े। 1900 ई० में गुजरात में भी अकाल पड़ा। इस प्रकार अकाल पर अकाल और उसके ऊपर महामारी, टैक्स, बेकारी आदि ने जनता के हृदय को छलनी बना डाला। दरिद्रता के मारे देश के बलहीन प्राणियों पर प्राकृतिक प्रकोप बल परीक्षण कर सन्तोष का अनुभव कर रहे थे। रोगों के सामूहिक आक्रमण हो रहे थे। दारिद्र्य का नग्न नृत्य हो रहा था।³⁸ रजनी पामदत्त ने अपनी पुस्तक "India Today" में एक विदेशी का यह कथन उद्धृत किया है- कि " 3 से 4 करोड़ लोगों को दिन में एक बार से अधिक भोजन उपलब्ध नहीं होता और वे सदा ही भूखों मरने की स्थिति में रहते हैं।"³⁹

इसी बीच महात्मा गांधी जी 1916 ई० में राजनीतिक क्षेत्र में सामने आये। उन्होंने किसानों के लिए चरखा और खादी पर आधारित एक आर्थिक योजना प्रस्तुत की। स्वदेशी आन्दोलन चलाया। देशी उद्योग-धन्धे पनपने लगे।

इंडियन नेशनल कांग्रेस ने स्वदेशी आंदोलन शुरू किया, जिससे भारतीय उद्योगों को मदद मिली। 1913-14 में काटन मिलों की संख्या बढ़कर 264 हो गई थी, और जूट मिलों की 643, कोयला उद्योग लगातार बढ़ता ही रहा था। 1914 में कुल 1,51,376 लोग कोयला खदानों में काम कर रहे थे।

1890 और 1914 के बीच पेट्रोलियम, मैंगनीज, अबरख और शोरा जैसे नए उद्योगों का उद्भव हुआ चावल और टिंबर की भी कुछ मिलें खुली।⁴⁰

गाँधी जी ने आर्थिक पहलू का क्रान्तिकारी पक्ष देश के सामने रखा। भारत में 1900 ई० में 193 सूती मिलें थी। पहली सूतीमिल 1854 ई० में मुम्बई में खोली गयी

थी। 1902 में गन्ने के सुधार के लिए एक गवेषणा केन्द्र खोला गया। 1907 ई० में टाटा आयरन एण्ड स्टील कम्पनी की स्थापना हुई। 1904 ई० में भारत में सर्वप्रथम पोर्टलैण्ड सीमेन्ट का निर्माण प्रारम्भ हुआ। 1920 ई० में मजदूरों की सबसे पहले ट्रेड यूनियन्स कांग्रेस स्थापित हुई।⁴¹

रानाडे जैसे राष्ट्रवादी अर्थशास्त्री इस दौर में हुए भारतीय उद्योग के सुनियमित विस्तार से काफी प्रभावित थे और उन्होंने भारत के लिए महान औद्योगिक भविष्य का सपना देखा। रानाडे ने कहा -“भारत अब उस रास्ते पर चल चुका है, जिसपर अगर वह उसी जोश से चलता रहा जिससे अभी तक यहाँ के पूंजीपति अभिप्रेरित हैं, तो वह अवश्य ही औद्योगिक मुक्ति प्राप्त कर सकेगा।”⁴²

इस प्रकार द्विवेदी युग में हड़ताले, आन्दोलन और संगठन बहुत बने मिलों से विदेशी पूंजीपति पनपते थे, पर मजदूर उसी प्रकार गरीब थे। महायुद्ध के बाद सरकारी दमनचक्र ने गरीबों और मजदूरों को और निर्धन बना दिया। किसान भूखे रहकर भी चुप रहते थे। धार्मिक और सामाजिक कुरीतियाँ उन्हें अलग खाये जा रही थी। द्विवेदी युग के अन्त में आर्थिक समस्या राष्ट्रीय आन्दोलन का भाग बन गयी थी।

सामाजिक तथा धार्मिक पृष्ठभूमि-

19 वीं शताब्दी में भारत की सामाजिक और धार्मिक स्थिति हीनावस्था की पराकाष्ठा को पहुँच गई थी। देश गहरा सोया हुआ और अन्धरूढ़ियों से ग्रस्त था।

भारतवर्ष के सन्दर्भ में ‘समाज’ शब्द के साथ ‘धर्म’ तत्त्व सहज रूप से संश्लिष्ट रहता है। धर्म किसे कहते हैं? ‘धारयति इति धर्म’ अर्थात् धारण करने वाली शक्ति ही धर्म है। धर्म किसका धारण करता है, इसका उत्तर देता है - महाभारत ! महाभारत के अनुसार धर्म प्रजा का धारण करता है इस प्रकार भारत में प्रजा (समाज) और धर्म का संबंध अति प्राचीन है।

डॉ उदयभानु सिंह के शब्दों में - “ अंग्रेजों के अधिपत्य-स्थापना के समय हिन्दू धर्म शिथिल हो चुका था। अशिक्षित भारतीय जनता अज्ञान अंधविश्वास में संवोषित थी। दुर्बल और प्राणशून्य हिन्दू जाति की धार्मिक और सामाजिक अवस्था शोचनीय थी। सारा देश तन्द्रा में था।”⁴³

जाति प्रथा हिंदू धर्म का लौह ढांचा थी। वेदों में भी इसके अस्तित्व की चर्चा है और इस तरह यह प्रथा वेदों से भी पुरानी है। शुरू में हिंदू समाज में तीन या चार वर्ण थे। लेकिन बाद में प्रजातीय सम्मिश्रण, भौगोलिक विस्तार, हस्तशिल्प के विकास और नए व्यवसाय के उद्भव आदि कारणों से प्रारंभिक वर्ण विविध जातियों उपजातियों में विभक्त हो गए।

अतीत में हिंदू धर्म सभी हिंदुओं की सांस्कृतिक एकता का आधार था, जाति प्रथा में उन्हें विभिन्न दलों और उपदलों में अलग-अलग बांट दिया। शादी, खानपान और रोजगार जैसे सभी महत्वपूर्ण सामाजिक मामलों में ये दल एकांतिक और विशिष्ट थे। व्यक्ति विशेष के जन्म से ही उसकी अपरिवर्तनशील स्थिति पूर्वनिर्धारित हो जाती थी। व्यक्ति का सामाजिक अस्तित्व उसके जन्म पर निर्भर था, न कि उसकी योग्यता एवं संपत्ति पर।

जिस जाति में आदमी पैदा होता था उसी से यह पूर्व निर्धारित हो जाता था कि उस आदमी का पेशा क्या होगा। अलग से अपना पेशा चुनने की आजादी उसे नहीं थी। जन्म ही यह फैसला करता था कि आदमी कौन सा पेशा चुनेगा। प्रत्येक जाति और उपजाति में आपस में ही शादी की प्रथा थी।

जाति व्यवस्था पदानुक्रमित श्रेणीबद्ध थी। सामाजिक पिरामिण्ड में शीर्षस्थ ब्राह्मण जाति के ही लोग धार्मिक और सामाजिक क्रियाकलाप में पुरोहित का कार्य कर सकते थे और उच्च धार्मिक या धर्मनिरपेक्ष शिक्षा और ज्ञान की प्राप्ति के एकमात्र अधिकारी भी वे ही थे। इस पिरामिण्ड के निम्नतम धरातल पर शुद्रों, अछूतों की जगह नियत थी, जिन्हें धर्म द्वारा पुनीत घोषित और राज्य की अबपीड़क सत्ता द्वारा समर्थित हिन्दू समाज ने अन्य जातियों की सेवा करने और हलखोर, चमार आदि पेशों जैसे निम्न कार्य करने के लिए बाध्य कर रखा था। पदानुक्रमित श्रेणी श्रृंखला, सामाजिक असमानता, सजातीय विवाह, भोजन-पान पर प्रतिबंध, पेशे के चुनाव में स्वतंत्रता का अभाव, ये ही जाति व्यवस्था के प्रमुख लक्षण थे।⁴⁴

अंग्रेजों की भारत विजय के फलस्वरूप जिन आर्थिक शक्तियों का जन्म हुआ उन्होंने जाति का आर्थिक आधार ही खत्म कर दिया गाँवों के स्वशासन का हनन,

भूमिगत वैयक्तिक संपत्ति का सृजन, देश का उद्योगीकरण जिसके कारण नए पेशों का जन्म हुआ और आधुनिक शहर बसे, जिन्होंने जातिगत विधिनिषेधों पर कुठाराघात किया, रेलवे और बसों का मंत्रजाल का विस्तार जिसके कारण भारतीय इतिहास में पहली बार बड़े पैमाने पर लोग यात्रा करने लगे और इस तरह चाहे अनचाहे एक दूसरे के संपर्क में आए, इन कुछ प्रमुख कारणों से जातियों का पेशागत आधार और इसके सदस्यों के आचार-विचार समाप्त हुए।

विभिन्न समाज सुधार दलों ने विभिन्न दृष्टियों से जाति व्यवस्था पर आघात किया। ब्रह्म समाज के संस्थापक राजा राममोहन राय ने हिंदुओं के प्राचीन समाजशास्त्री धर्मग्रंथ 'महानिर्वाण तंत्र' की मदद से यह सिद्ध किया कि जाति व्यवस्था की अब कोई आवश्यकता नहीं। ब्रह्म समाज ने इन शब्दों में जातिजन्य सामाजिक विभाजनों की निंदा की - 'ये हानिकर विभेद जो हमारे जन-जीवन का खून पी रहे हैं, कब समाप्त होंगे'।

देवेंद्रनाथ टैगोर और केशवचंद्र सेन, जो राजा राममोहन राय के बाद ब्रह्म समाज के नेता हुए, हिंदू धर्मग्रंथों के उनसे भी बड़े आलोचक थे। केशवचंद्र सेन ने धर्मग्रंथों की मदद के बिना, बड़े, साफ शब्दों में जाति व्यवस्था की घोरतम निंदा की।

ब्रह्म समाज ने जाति विरोधी आंदोलनों की जो शुरूआत की उसके बाद के संगठनों ने उन्हें जारी रखा। मुम्बई प्रार्थना समाज ने जाति विरोधी आंदोलन लगभग उसी तौर पर चलाया जिस तौर पर ब्रह्म समाज ने चलाया था। इसके विपरीत स्वामी दयानंद के आर्य समाज ने हिंदू समाज के अनगिनत उपविभाजनों के विरुद्ध संघर्ष तो किया, लेकिन शुरू के चार विभाजनों के आधार पर इसके नव निर्माण की चेष्टा की।⁴⁵

हिंदू समाज में कई बड़े क्रूर और अजनतांत्रिक तत्त्व थे। कुछ हिन्दुओं का अछूतों के रूप में पृथक्करण अत्यंत अमानुषिक सामाजिक अत्याचार था। अछूतों को मंदिरों में जाने का या सार्वजनिक कुओं और तालाबों के इस्तेमाल का अधिकार नहीं था, और उनके स्पर्श मात्र से ऊंची जातियों के लोग अपवित्र हो जाते थे। हिंदू समाज के अंग होते हुए भी अछूत इस समाज से बहिष्कृत जैसे थे।

हिंदू समाज में हलखोर मुर्दा जानवर हटाने वालों और इस तरह के अन्य लोगों के कार्य पुश्तैनी अछूतों के जिम्मे होते थे। उन्हें पठन-पाठन या मंदिर में प्रवेश का अधिकार नहीं था। गाँव या शहर में उन्हें बस्ती से बाहर अलग इलाके में रहना पड़ता था। जिन सार्वजनिक कुंओं और तालाबों का उपभोग ऊंची जातियों के हिंदू किया करते थे, उसके इस्तेमाल का अछूतों को कोई अधिकार नहीं था। गाँव की पंचायत, जिसमें अधिकांश कुलीन हिंदू ही होते थे और हिंदू एक ही अपराध के लिए अछूत को ऊंची जाति के हिन्दुओं से अपेक्षाकृत अधिक कठोर दंड दिया करते थे। अछूतों का यह सामाजिक उत्पीड़न धर्मसम्मत था और इसलिए इसकी जड़े बहुत गहरी थीं।

मैथिलीशरण गुप्त जी के साहित्य में भी युग के उक्त सामाजिक विचार स्थान-स्थान पर व्यक्त हुए हैं। गुप्तजी ने भी देखा कि समाज की प्रगति में यह ऊँच-नीच की भावना बड़ा व्याघात उत्पन्न कर रही है। आज समाज के एक वर्ग ने अपने को उच्च एवं उन्नत समझकर समाज के दूसरे वर्ग को नीच एवं पतित कहना शुरू कर दिया है, उसे समस्त सामाजिक अधिकारों से वंचित कर दिया है तथा उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा को धूल में मिलाकर उसकी प्रगति एवं उन्नति के पथ को सदैव के लिए अवरूद्ध कर दिया है। इसलिए गुप्त जी समाज के इस पतित, दलित एवं निम्नवर्ग को भी समान आदर एवं समान प्रतिष्ठा दिलाने के लिए पुकार उठे-

“उत्पन्न हो तुम प्रभु-पदों से जो सभी को ध्येय है,
तुम हो सहोदर सुरसरी के चरित जिसके गये हैं।”⁴⁶

गुप्त जी ने कबीर और रैदास के उदाहरण देकर समाज के इन निम्न वर्गों को भी श्रेष्ठ एवं महान बनाने के लिए सावधान किया तथा उत्तरोत्तर उन्नति के लिए प्रेरणा प्रदान करते हुए कहा-

“पूत कर्म कर मातृभूमि के बनो विशेष सपूत,
छूत बुरी है, अहोभाग्य है यदि हम हुए अछूत।”⁴⁷

ब्रह्म समाज, आर्य समाज, समाज सुधार सम्मेलन, इंडियन नेशनल कांग्रेस जैसे राजनीतिक संगठन, गांधी द्वारा स्थापित अखिल भारतीय हरिजन संघ जैसी गैर राजनीतिक संस्थाएँ, इन सबने प्रचार, शिक्षा और अन्य व्यवहारिक उपायों द्वारा अछूतों को सामाजिक धार्मिक और सांस्कृतिक अधिकार दिलाने की चेष्टा की। दलित जातियों

में एक नई चेतना, नए बोध का जागरण हो रहा था। डॉ० अंबेडकर ने उनकी तकलीफों के खिलाफ आवाज बुलंद की और उनके मूलभूत मानवीय अधिकारों के लिए जमकर संघर्ष किए। आल इंडिया डिप्रेस्ट क्लासेज एसोसिएशन और आल इंडिया डिप्रेस्ट क्लासेज फ़ेडरेशन इन जातियों के प्रमुख संगठन थे।

ये सारी संस्थाएँ विभिन्न ढंगों से दलित जातियों की अशक्तता समाप्त करने के प्रयास में लगी हुई थीं।

आर्य समाज, ब्रह्म समाज और अन्य धार्मिक सुधारवादी आंदोलनों का उद्देश्य था कि बौद्धिक आधार पर भारतीय समाज का नवनिर्माण किया जाए।

सावरकर जैसे जो हिंदू 'हिंदूराज' की मांग करते थे, उन्होंने भी दलित जातियों की स्थिति में सुधार की चेष्टा की। इसकी वजह यह थी कि अछूत लगातार धर्म परिवर्तन कर इस्लाम और ईसाई धर्म में शामिल हो रहे थे।

महात्मा गांधी जी द्वारा 1932 में स्थापित आल इंडिया हरिजन सेवक संघ और अन्य संस्थाएँ भी दलित जातियों के लिए व्यापक समाज-सुधार संबंधी और शैक्षिक कार्य कर रही थीं।

1937 के बाद कुछ वर्षों तक विभिन्न प्रांतों में जो कांग्रेस की सरकारें बनीं उन्होंने भी दलित जातियों के उद्धार के लिए काफी अच्छे काम किए। सी०पी० और बिहार की कांग्रेसी सरकारों ने अपने प्रांतों में हरिजनों के लिए, प्राइमरी से लेकर विश्वविद्यालय तक निःशुल्क शिक्षा का प्रबंध किया।⁴⁸

इस तरह दलित जातियों के उद्धार का आंदोलन लगातार बढ़ता गया और उसमें तेजी आती गई। इस आन्दोलन के उद्देश्य थे दलित जातियों की दयनीय आर्थिक स्थिति को सुधारना, उन्हें शिक्षित करना, उन्हें कुँओं, पाठशालाओं और उनके लिए विशेष राजनीतिक प्रतिनिधित्व का अधिकार हासिल करना।

ब्रिटिश भारत में संभवतः वैदिक युग के शुरू के काल को छोड़कर, हरदम नारी पुरुष की अधीनता में रहती आई थी धर्म और विधि में पुरुषों और स्त्रियों और उनके

अधिकारों को समान नहीं माना गया था। समाज में पुरुषों को कुछ ऐसे अधिकार थे, उनकी कुछ ऐसी स्वतंत्रताएँ थी जिनसे स्त्रियाँ वंचित थीं।

अंग्रेजों की भारत विजय ने भारत का संपूर्ण सामाजिक परिवेश बदल दिया। एक जमाने में भारतीय नारी सती और बालहत्या जैसी बर्बर क्रूर प्रथाओं की शिकार थी। पति के मरने पर विधवा को पति की लाश के साथ चिता पर जल मरना होता था। गरीब मां-बाप के लिए लड़की की शादी काफी मंहगी थी, इसलिए मां-बाप प्रायः नवजात बच्चों की हत्या कर देते थे। सती प्रथा के उन्मूलन के बाद भी विधवाओं को पुन विवाह की सुविधा नहीं मिली।

पर्दाप्रथा और वेश्यावृत्ति जैसी बुराईयाँ भी प्रचलित थीं। मुसलमानों में ही नहीं, हिंदुओं के कुछ वर्गों में भी पर्दा जैसी घातक और हानिकारक प्रथा प्रचलित थी।⁴⁹

राजा राममोहन राय जैसे समाज सुधारकों ने सती प्रथा को समाप्त करने का प्रयास किया और अंत में लार्ड बैटिक ने इसे समाप्त कर दिया। बाद में बालहत्या को भी अपराध करार दिया गया।

बाल-विवाह भी हिंदू समाज की एक प्रमुख बुराई थी और इससे पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों को अधिक नुकसान था। ईश्वरचंद्र विद्यासागर के प्रयत्नों के फलस्वरूप 1960 का ऐक्ट पारित हुआ, जिसके अनुसार विवाहित और अविवाहित लड़कियों के लिए सहमति की उम्र बढ़ाकर दस वर्ष कर दी गई। इसी समाज सुधारक के प्रयत्नों के फलस्वरूप 1850 में विधवा-विवाह कानूनन मान्य हुआ।⁵⁰

बंगाल में ईश्वरचंद्र विद्यासागर तथा मुंबई में श्री मालावरी, कवि नर्मद, जस्टिस रानाडे जैसे समाज सुधारकों ने विधवा-विवाह के अधिकार का जमकर समर्थन किया। भारत में स्त्रियों को प्रायः शिक्षा नहीं मिलती थी। मध्ययुगीन विचार प्रणाली में स्त्रियों को केवल गृहकार्य की जिम्मेदारी दी गई थी। लड़कों के लिए गाँवों और शहरों में स्कूल होते थे, लेकिन स्त्रियों के लिए कहीं शिक्षा का प्रबंध नहीं था। ब्रह्म समाज, आर्य समाज, रामकृष्ण मिशन आदि संगठनों ने स्त्री शिक्षा की दिशा में पथ प्रदर्शन का काम किया।

बीसवी शताब्दी के पूर्वार्ध में महात्मा गांधी ने भारतवर्ष का सबसे अधिक नेतृत्व किया। भारतीय समाज-सुधारकों में गांधी जी का नाम विशेष रूप से महत्वपूर्ण है।

गांधी जी समाज की परम्पराओं को नष्ट नहीं करना चाहते थे बल्कि उनका परिष्कार और विकास करना चाहते थे। उन्होंने स्थान-स्थान पर अपने ओजस्वी भाषणों द्वारा सतीप्रथा, बालविवाह, विधवा विवाह, पर्दे की प्रथा, अशिक्षा के उन्मूलन और आर्थिक स्वतंत्रता के लिए जनता को प्रेरित किया।⁵¹

अंग्रेजी शासन के दिनों में भारत में समाज और धर्म सुधार संबंधी जो आंदोलन शुरू हुए वे भारतीय जनता की उदीयमान राष्ट्रीय चेतना और उनके बीच पश्चिम के उदारवादी विचारों के प्रसार के परिणाम थे। इन आंदोलनों ने धीरे-धीरे सामाजिक और धार्मिक नवनिर्माण का कार्यक्रम अपनाया और सारा देश इन आंदोलनों की चपेट में आया। सामाजिक क्षेत्र में जाति प्रथा की समाप्ति, स्त्रियों के लिए सामानधिकार, बाल-विवाह के उन्मूलन और विधवा-विवाह के समर्थन आदि प्रश्नों पर आंदोलन हुए। धार्मिक क्षेत्र में जो आंदोलन हुए उनमें धार्मिक अंधविश्वास और मूर्तिपूजा, बहुदेवतावाद, वंशानुगत पुरोहित आदि पर विरोध किया गया।

समाज और धर्म सुधार के आंदोलन भारत के राष्ट्रीय जागरण के सूचक थे। और उनका उद्देश्य था मध्ययुगीन सामाजिक संरचना और धार्मिक दृष्टिकोण का व्यक्ति स्वतंत्र और मानव एकता के सिद्धांतों के आधार पर परिशोधन।

19 वीं शती के आरम्भ में ही पश्चिमी सभ्यता और धर्म का आघात पाकर देश में उत्तेजना की लहर दौड़ गई। हिन्दुओं को अपने धर्म की ओर आकृष्ट करने के लिए ईसाइयों ने हिंदू धर्म की सती-सरीखी क्रूर और भयंकर प्रथाओं पर बुरी तरह आक्षेप किया था। राजा राममोहन राय आदि नव-शिक्षित हिंदुओं ने स्वयं इन कुप्रथाओं का विरोध किया इसी समाज-सुधार के उद्देश्य से उन्होंने सन् 1858 ई० 'ब्रह्म समाज' की स्थापना की। तत्पश्चात् 'आर्य समाज' (1875 ई०), थियोसोफिकल सोसायटी (सन् 1875 ई० में न्यूयार्क तथा 1879 ई० में भारत में) रामकृष्ण मिशन आदि धार्मिक संस्थाओं की स्थापना हुई।⁵²

द्विवेदी युग के विविध धार्मिक-सामाजिक सुधारों का पथ प्रशस्त करने और देश में सांस्कृतिक जागरण का शंखनाद कर जनता में राष्ट्रीय भावों को फूंकने का श्रेय जिन व्यक्तियों और संस्थाओं को जाता है। उनसे परिचय प्राप्त किये बिना युगीन पृष्ठभूमि का अवलोकन अपूर्ण रह जायेगा। अस्तु यहां उन आंदोलनों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत है।

1. राजा राममोहन राय का ब्रह्म-समाज-

राजा राममोहन राय द्वारा स्थापित ब्रह्म सभा (1828), जो आगे चलकर ब्रह्म समाज कहलाई। राजा राममोहन राय वस्तुतः प्रजातंत्रवादी और मानवतावादी थे। अपने धार्मिक, दार्शनिक और सामाजिक दृष्टिकोण में वे इस्लाम के ऐकेश्वरवाद और मूर्तिपूजा विरोध, सूफीमत के रहस्यवाद, ईसाई धर्म की आचार्यशास्त्रीय नीतिपरक शिक्षा और पश्चिम के आधुनिक देशों के उदारवादी बुद्धिवादी सिद्धांतों से काफी प्रभावित थे।

राजा राममोहन राय धर्म के प्रति बुद्धिवादी दृष्टिकोण अपनाने के पक्ष में थे। उनका विचार था कि व्यक्ति को पुरोहित के माध्यम के बिना स्वयं धर्मशास्त्रों का पाठ करना चाहिए, और स्वयं किसी सिद्धांत को समझना पहचानना चाहिए।⁵³

राजा राममोहन राय और शुरू के धर्म सुधारकों के अनुसार समाज के कल्याण के लिए धर्म के रूप परिवर्तन की आवश्यकता थी। इसलिए धर्म सुधार के आंदोलनों के सम्पूर्ण कार्यक्रम का अनिवार्य अंग था समाज सुधार।

राजा राममोहन राय के नेतृत्व में ब्रह्म समाज में जाति प्रथा के विरुद्ध आंदोलन चलाया और इसे अप्रजातंत्रिक, अमानुषिक और राष्ट्र विरोधी बतलाया इसने सती और बाल विवाह के विरुद्ध संघर्ष किया और विधवाओं के पुनर्विवाह और स्त्री पुरुष के समानाधिकार का समर्थन किया।

राजा राममोहन राय के बाद ब्रह्म समाज का नेतृत्व देवेंद्रनाथ ठाकुर (1843) ने किया। 1857 में केशवचंद्र सेन उसमें शामिल हुए और ब्रह्म समाज को जनप्रिय बनाने में बड़ा काम किया। फलतः 1865 तक उसकी कुल 54 शाखाएँ सारे भारत में स्थापित हो गईं। लेकिन तभी उसमें मतभेद भी तीव्र हो गये। देवेंद्रनाथ ठाकुर ब्रह्म समाज को राजा राममोहन राय के रास्ते पर ही चलाना चाहते थे, किंतु केशवचंद्र और उनके साथी ब्राह्मणों की प्रधानता का विरोध करते थे। वे न चाहते थे कि ब्रह्म समाज के मंच से कोई यज्ञोपवीत ब्राह्मण उपदेश दे। वे अंतर्जातीय विवाह और विधवा विवाह का समर्थन करते थे। फलतः ब्राह्म समाज और केशवचंद्र सेन का 'भारत का ब्राह्म समाज'।

1878 में केशवचंद्र सेन के 'भारत का ब्राह्म समाज' में भी फुट पड़ गयी। ज्यादा प्रगतिशील विचार वाले लोगों ने अलग होकर 'साधारण ब्राह्म समाज' की स्थापना की। उसने बालविवाह और बहुविवाह तथा पर्दा-प्रथा का डटकर विरोध किया और विधवा विवाह तथा स्त्रियों को उच्च शिक्षा देने का प्रबल समर्थन किया।⁵⁴

2. स्वामी दयानन्द सरस्वती का आर्य-समाज-

भारतीय सांस्कृतिक रंगमंच पर स्वामी दयानन्द सरस्वती का पदार्पण एक नवल प्रभात की सूचना लेकर होता है। आर्य-समाज की स्थापना दयानन्द सरस्वती ने 1875 में मुंबई में की। 'वेद' को 'सद्ज्ञान' और 'यथार्थज्ञान' घोषित कर उन्होंने 'वेद-विहित' मार्ग के अनुसरण में ही सबका कल्याण निहित बताया।⁵⁵

वेदों के अध्ययन-अध्यापन, श्रवण-श्रावण की परिपाटी डालकर उन्होंने पश्चिम सभ्यता के उमड़ते नद के प्रवाह को रोकने का प्रयास किया। स्वामी जी ने अनेक ग्रंथों की रचना की। 'सत्यार्थ-प्रकाश' उनका सर्वविदित ग्रंथ है। इसमें हिन्दूधर्म के वास्तविक स्वरूप की व्याख्या की गई है। 'सत्यार्थ-प्रकाश' अर्थात् सत्य यथ का प्रकाशन, आर्य धर्म के सच्चे अर्थ को बताने वाला ग्रंथ। इसमें विभिन्न धर्ममतों की समालोचनात्मक परीक्षा की गई है। अपने तर्कबल से स्वामी जी ने विभिन्न धर्मों के दोषों को सिद्ध किया है। ईसाई मत और इस्लाम की तुलना में वैदिक धर्म की श्रेष्ठता प्रतिपादित करने का यह स्तुत्य प्रयास है। इसके अतिरिक्त इसमें ब्रह्मचर्य की महिमा, वर्णव्यवस्था, आश्रम व्यवस्था-विशेषकर गृहस्थ धर्म आदि विविध विषयों पर विचार किया गया है।⁵⁶

अपने जीवन के प्रारम्भिक दिनों में दयानन्द जी को अनेक कष्टों और विरोधों का सामना करना पड़ा। 10 अप्रैल 1875 के शुभ दिन उन्होंने मुंबई नगर में महान संस्था को जन्म दिया जिसने हमारे जीवन, साहित्य और राष्ट्रीय जन को बहुत अधिक प्रभावित किया महाराष्ट्र में यह संस्था-आर्य समाज - अपने संस्थापक की जन्मभूमि, गुजरात से होती हुई शीघ्र ही उत्तर भारत में मध्यदेश और पंजाब पर पूर्णरूपेण छा गयी। 'आर्य-समाज' ने देश को एक नवीन चेतना, नवल-स्फूर्ति तथा अभिनव जातीय एवं राष्ट्रीय स्वाभिमान से ओत-प्रोत कर दिया। आर्य-समाज की स्थापना से देश में सामाजिक क्रांति को अपूर्व बल प्राप्त हुआ। इसका कार्यक्षेत्र अत्यन्त व्यापक था। ब्रह्म समाज पश्चिम से अधिक प्रभावित होने के कारण एक वर्ग विशेष का आन्दोलन बनकर रह गया, जब कि आर्यसमाज विशुद्ध भारतीयता का समर्थक होने के कारण जन-मन का स्पर्श कर सका। समस्त सुधारवादी स्वदेशी आंदोलनों में आर्य समाज सर्वाधिक सबल है। आर्य समाज ने एक ओर हिंदू धर्म का पुनरूद्धार किया, तो दूसरी ओर उसने समाज में व्याप्त अन्ध विश्वासों और रूढ़ियों के समूलोच्छेदन का कठोर संकल्प किया। उसने

धर्म के बाह्य स्वरूप का विरोध किया कर्म-काण्ड और मूर्तिपूजा का खण्डन किया। वर्ण-व्यवस्था को महत्त्वपूर्ण बताकर ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों को यज्ञोपवीत धारण करने का आदेश दिया। किन्तु साथ ही वर्ण व्यवस्था के समर्थक दयानंद जी जाति-पांति और छुआ-छूत का विरोध करते हैं। उन्होंने बाल-विवाह का विरोध किया और विधवाओं को पुनर्विवाह की अनुमति प्रदान की।⁵⁷

अपने इन कार्यों में उन्हें अनेक सनातन धार्मिकों से टक्कर लेनी पड़ी अंग्रेजी पढ़े लिखे लोगों को शासकीय सम्मान प्राप्त होता था, अतः नवयुवक अंग्रेजी भाषा और साहित्य का पठन-पाठन करने की ओर प्रवृत्त हो रहे थे। साथ ही अंग्रेजी सभ्यता और धर्म की ओर थी उनकी प्रवृत्ति हो रही थी। इस प्रकार भारतीयता को हानि पहुंच रही थी। विदेशी सभ्यता और संस्कृति के प्रेमी युवकों की दयानंद जी ने भर्त्सना की है। वे कहते थे कि इस देश के लिए आर्य संस्कृति ही सर्वथा उचित और योग्य वस्तु है। एक ओर जहाँ वे पाश्चात्य सभ्यता की तीव्र आलोचना करते हैं, इस्लाम पर कठोर प्रहार करते हैं, वहाँ दूसरी ओर हिंदू धर्म की असंगतियों और विसंगतियों का भी विरोध करते हैं। आर्य समाज ने प्राचीन भारतीय ऐश्वर्योत्कर्ष, गौरव-गरिमा का प्रकाशन कर देश का सोया आत्म-विश्वास जगाया। जातीय-प्रेम और राष्ट्रीय-भावों का उन्मेष करने में आर्य समाज का योगदान अपूर्व है। आर्य समाज की इस दृष्टि से सरकार परिचित थी और आतंकित थी, यह श्री यशपाल के निम्न कथन से प्रमाणित होता है-

“एक ऐसा समय था कि कोई भी व्यक्ति आर्य समाजी बन जाने से ही सरकार की दृष्टि में राजनीतिक रूप से संदिग्ध हो जाता था। उस समय किसी नवयुवक के आर्य समाजी बन जाने पर परिवार के लोग ऐसे ही चेहरा लटका लेते थे जैसे कि आजकल घर के लड़के के कम्युनिस्ट बन जाने पर आशंका अनुभव की जाती है।”⁵⁸

स्वामी दयानंद ने हिंदू धर्म के शुद्ध स्वरूप का अनुसन्धान किया। उनका सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य था धर्म का सरलीकरण। उन्होंने संध्या उपासना, संस्कार इत्यादि की विधियों को सरल भाषा में प्रस्तुत कर जनता के लिए सुलभ बनाया। इस सम्बन्ध में आर्य समाज का महत्त्व अन्य समसामयिक धार्मिक एवं सामाजिक संस्थाओं और आंदोलनों से अधिक ठहरता है। डॉ० सुधीन्द्र ने इस विषय में लिखा है-

“गतानुगतिकता के विरोध और बौद्धिकता के समावेश में आर्य-समाज और ब्रह्म समाज दोनों समान हैं, किन्तु जहाँ “ब्रह्म समाज” समाज के उच्च स्तर में बौद्धिक और आत्मिक चेतना ला सका, वहाँ आर्य-समाज ने निम्नस्तर में भी जागरण को स्थान दिया।”⁵⁹

भारतेन्दु और द्विवेदी युगों के कवियों पर आर्यसमाज का न्यूनाधिक प्रभाव अनिवार्य रूप से पड़ा है। कहीं यह प्रभाव सुधार-कामना बनकर प्रकट होता है कहीं बौद्धिकता बनकर। मैथिलीशरण गुप्त वैष्णव-भक्त कवियों पर भी दयानंद जी की वाणी का प्रभाव पड़ा है। गुप्त जी नाममात्र से आर्य को आर्य नहीं मानते बल्कि, कार्य भी वैसा ही होना चाहिए। वे भारत-भारती में ‘आर्य श्रेष्ठ’ शीर्षक के नीचे लिखते हैं-

“जग जान ले कि न आर्य केवल नाम के ही आर्य है,
वे नाम के अनुरूप ही करते सदा शुभ कार्य है।”⁶⁰

धर्म के मूलस्रोत तथा आर्य संस्कृति के प्रधान अंग वेद को आर्य समाज ने अपने प्रचार का प्रमुख आधार बनाया। आर्य समाज वेद को ही केवल मात्र ईश्वरीय ज्ञान मानता है।

वेदों की प्राचीनता तथा ईश्वरीयता के विषय में मैथिलीशरण गुप्त ‘भारत-भारती’ के ‘वेद’ शीर्षक के अन्तर्गत अपने उद्गार इस प्रकार प्रकट करते हैं-

“जिनकी महत्ता का न कोई पा सकता है भेद ही,
संसार में प्राचीन सबसे है हमारे वेद ही।
प्रभु ने दिया यह ज्ञान हमको सृष्टि क आरंभ में,
है मूल चित्र पवित्रता का सभ्यता के स्तम्भ में।”⁶¹

3. एनीबेसेण्ट की थियोसोफिकल सोसाइटी-

श्रीमती एनीबेसेण्ट अत्यन्त विदुषी, कुशाग्रबुद्धि एवं भाषण-प्रवीणा यूरोपीय महिला थी। 1893 ई० में वे भारत आईं। उन्होंने यहाँ आकर भारतवासियों को यह बतलाया कि उनका देश अग्रजन्माओं का देश है। वे भारत को जन्म-भूमि-सदृश प्यार करती थी और भारतीय संस्कृति पर उनकी अपार श्रद्धा थी। उनका विचार था कि भारत के प्राचीन धर्म के अभ्युदय से भारतीयों में नवचेतना की भावना का उदय हो सकेगा,

धर्मोत्थान ही देशभक्ति को जाग्रत करेगा। जिस थियोसोफिकल संस्था से उनका संबंध रहा उसकी स्थापना पहले न्यूयार्क में सन् 1895 ई० में हुई थी। इसके संस्थापक थे- श्रीमती ब्लेवेस्की तथा कर्नल आलकाट (स्वामी दयानंद के निमंत्रण पर ये दोनों भारत पधारे। यहाँ आकार आड्यार (मद्रास) में इन्होंने अपनी संस्था थियोसेफिकल सोसायटी की स्थापना की।⁶² किन्तु भारत में इसके सिद्धांतों का प्रचार श्रीमती एनीबेसेण्ट के भारत-आगमन के अनन्तर ही हुआ। इस संस्था ने “सामान्य मानव धर्म” और विश्व-बन्धुत्व की स्थापना भारतीय “वंसुधैव कुटुम्बकम्” के सिद्धान्त के आधार पर की। श्रीमती एनीबेसेण्ट ने पूर्वी देशों के साहित्य और धर्म का बड़ी आदर-भावना के साथ अध्ययन किया। भारतीय सांस्कृतिक गौरव का गुणगान कर इन्होंने भारत में राष्ट्रीयता की धारा के प्रवाह की गति को त्वरा प्रदान की। भारत के राजनीतिक आन्दोलन में भी एनीबेसेण्ट ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

यद्यपि एनीबेसेण्ट अंग्रेज थी, तथापि स्वतः समुचित प्रेरणा से भारतीय हो गई थी। गीता का अनुवाद, रामायण और महाभारत का भाव्य तथा भारतीय धर्मग्रंथों से संगृहीत कर आधारभूत तथ्यों का विदेशी में प्रचार इस बात का साक्षी है कि वे आध्यात्मिक आंदोलनकर्त्री ही नहीं थी, देश की शिक्षा व्यवस्था को भी उन्होंने महत्वपूर्ण अवदान दिया था। एनीबेसेण्ट केवल कोरी आध्यात्मिक नेता ही नहीं थी, उन्होंने सन् 1910 से सन् 1920 तकें क्रांगेस का नेतृत्व भी किया था।⁶³

4. विवेकानन्द का रामकृष्ण मिशन-

रोक्यां रोलों ने एक स्थान पर स्वामी विवेकानन्द के राष्ट्रीय महत्व की ओर इंगित करते हुए लिखा है कि उन्होंने भारत के भाग्य को ही बदल डाला। बंगाल के स्वामी रामकृष्ण परमहंस के भक्त-शिष्य नरेन्द्रनाथ, जिन्हें संसार विवेकानन्द के नाम से जानता है, उन्होंने देश के आध्यात्मिक, सामाजिक और राजनीतिक जीवन को आंदोलित कर डाला। अपने गुरु परमहंस जी के व्यापक एवं उदार धार्मिक दृष्टिकोण तथा ज्ञान की ज्योति से विवेकानन्द ने न केवल भारत बल्कि विश्वभर की अन्धकार में भटकती मानवात्मा को सत्य के दर्शन कराये। अपने गुरु के नाम को अमर बनाने के लिए उन्हीं के नाम पर 1897 ई० में उन्होंने “रामकृष्ण मिशन” की स्थापना की। मिशन का प्रमुख उद्देश्य था - मानवता-प्रेम और उच्च आत्मिक आदर्शों का प्रचार।⁶⁴ उनका उपदेश था कि धर्म और जाति के संकीर्ण भेदों को विस्मृत कर मनुष्य को मनुष्य की सहायता

और सेवा के लिए सदैव प्रस्तुत रहना चाहिए। सेवाभाव पर उन्होंने बहुत बल दिया। “दया नहीं सेवा-मनुष्य की सेवा” यही उनके अध्यात्म का निष्कर्ष था। मैथिलीशरण गुप्त जी ने भी अपनी रचनाओं में सेवा को प्रमुख स्थान दिया है-

मानो न मुझको देव, हूँ लोक-सेवक एक।

जाऊँ, उसे सँभालूँ मैं, जन-सेवा व्रत पालूँ मैं।⁶⁵

विवेकानंद का धर्म मानव-धर्म था। उन्होंने कहा था, “मैं उस धर्म में विश्वास नहीं करता जो विधवा के आंसुओं को न पोछे तथा अनाथ बालक की भूख न मिटाये।” अपने इसी आदर्श का पालन उन्होंने व्यवहार में भी किया। मिशन की ओर से सामाजिक सेवा के अनेक कार्य किये गये। शिक्षा और चिकित्सा कार्यों के अतिरिक्त अनाथ, निर्धन और बाढ़-पीड़ित लोगों की सहायता के लिए मिशन ने समय-समय पर अनेक आयोजन किये। वे हिंदू धर्म के प्रबल प्रवक्ता थे, किन्तु धार्मिक रूढ़ियों और कर्मकाण्ड के विरोधी थे। वे हिंदू धर्म के मूल आधार का अनुसंधान कर हिंदुओं में एकता और राष्ट्रीय जागृति उत्पन्न करने के अभिलाषुक थे।

यद्यपि धर्म उनका प्रमुख क्षेत्र था और वेदान्त उनका मुख्य शस्त्र, किन्तु राष्ट्रीय गौरव का दीप जलाकर देशभक्ति के मंदिर को आलोकमय बनाने में भी उनका महत्त्वपूर्ण योगदान है। उन्होंने देश के नवयुवकों पश्चिम में जाकर, वहाँ की वैज्ञानिक प्रगति से अपने देश को जागृत करने की प्रेरणा प्रदान की। उन्होंने प्राचीन भारतीय सिद्धांतों की युगानुकूल व्याख्या की और यह सिद्ध किया कि भारतीय सनातन धर्म-वेदांत से ही विश्व का कल्याण हो सकता है। शिकागो में हुए विश्व-धर्म-सम्मलेन में ‘वेदांत’ पर दिये गये उनके भाषण से पश्चिम बहुत प्रभावित हुआ। अपने भाषण में उन्होंने कहा था- “मुझको ऐसे धर्मावलम्बी होने का गौरव है जिसने संसार का ‘सहिष्णुता’ तथा ‘सब धर्मों’ को सम्मान प्रदान करने की शिक्षा दी है”⁶⁶

उनका कहना था कि अपने मत पर आस्था रखते हुए भी, उसको गौरवपूर्ण मानते हुए भी हमें दूसरों के धर्म को बुरा नहीं कहना चाहिये। उनके गुरु रामकृष्ण परमहंस के शब्दों में -“जिस प्रकार हम अपने विश्वास और धाराणाओं पर दृढ़ रहना चाहते

है, उसी प्रकार हम दूसरों को भी उन्हें अपने मत पर टिके रहने की स्वतंत्रता प्रदान करनी चाहिए।” विवेकानन्द जी के अनुसार वेदांत धार्मिक सहिष्णुता का सबसे सुन्दर उदाहरण है। इस प्रकार धार्मिक समन्वय को वे महत्वपूर्ण मानते हैं। मैथिलीशरण गुप्त जी के काव्य में भी हमें समन्वय-भावना के दर्शन होते हैं। विभिन्न धर्मों को गुप्त जी ईश्वर तक पहुँचने के विभिन्न मार्ग ही मानते हैं। जैसे - राम और कृष्ण उनके लिए आराध्य हैं, वैसे ही बुद्ध और महावीर भी हैं। उन्होंने ‘गुरुकुल’ की रचना करके सिक्खों के प्रति अपना सम्मान प्रकट किया है। ‘काबा और कर्बला’ लिखकर मुसलमानों के प्रति भी अपनी सद्भावना व्यक्त की है।

जाति, धर्म या सम्प्रदाय का,
नहीं भेद-व्यवधान यहाँ।
राम-रहीम बुद्ध-ईसा का,
सुलभ एक सा ध्यान यहाँ।⁶⁷

मैथिलीशरण गुप्तजी की धार्मिक सहिष्णुता के विषय में और किसी विशेष प्रमाण की जरूरत नहीं है। काबा और कर्बला में भी उन्होंने इसी आशय को दूसरे ढंग से व्यक्त किया है। यथा-

धर्म है सो धर्म है, जो पन्थ है,
एक ने सबके लिए भेजे यहाँ निज ग्रंथ है।
बस, उसी के मन्त्र से चलते हमारे यन्त्र है,
स्वमत के सम्बन्ध में हम सब समान स्वतन्त्र हैं।⁶⁸

‘राजा-प्रजा’ में कवि-धर्म की समस्त सीमाओं को पार करके गुप्तजी विश्व-बन्धुत्व की सीढ़ी पर चढ़कर बोलते नज़र आते हैं। यथा-

किन्तु हमारा लक्ष्य, एक अम्बर, भू सागर,
एक नगर सा बने विश्व, हम उसके नागर।⁶⁹

इस प्रकार गुप्तजी ने अपने धर्म पर आस्था रखते हुए दूसरे धर्मों के प्रति उदार मनोवृत्ति का परिचय दिया है।

इन विभिन्न संस्थाओं या धार्मिक आंदोलन सामान्यतः एक दूसरे के विरोधी लगते हैं किंतु वास्तव में वे एक दूसरे के पूरक थे। मनुष्य को केंद्रबिंदु बनाकर मानव सेवा

और राष्ट्रीयता का इनके माध्यम से बल मिला। सत्ता यदि शोषण का साधन है तो धर्म समाज सेवा का और रीति रिवाज, धर्म आदि सभी समाज के उन्नयन के लिए ही है, इसका भावोदय जनमानस में अपने-अपने क्षेत्रों में सभी संस्थाओं ने किया। ये सभी संस्थाएँ समाज के संतापित पक्षों को शीतलता, सेवा के माध्यम से जीने का वरदान देना चाहती थी।

4. साहित्यिक पृष्ठभूमि-

साहित्य युग जीवन की अभिव्यक्ति होता है। युग परिवर्तन के साथ ही साहित्य में विषय और शैलीगत परिवर्तनों के लक्षण उभरने लगते हैं। मैथिलीशरण गुप्त जी का अविर्भाव मुख्यता द्विवेदी युग में हुआ था और तत्पश्चात् वे छायावादी युग, प्रगतिवादी युग एवं प्रयोगवादी युग के अन्तिम चरण तक विद्यमान रहें। इस तरह काव्य-क्षेत्र में कवि ने चार युगों की गतिविधियों का भली प्रकार निरीक्षण एवं परिक्षण किया। तथा उनके अनुकूल स्वयं को ढालते हुये अपनी रचनाएँ भी प्रस्तुत की। जिस समय आचार्य द्विवेदी के सम्पर्क में आकर गुप्त जी ने काव्य क्षेत्र में पदार्पण किया था, वह काल-विभाग की दृष्टि से भारतेन्दु-युग था।⁷⁰

भारतेन्दु-युग में जो साहित्यकार उत्पन्न हुए वे देश की दशा और समाज की स्थिति से पूर्णतः परिचित थे। वे समाज से कटे हुए केवल एकांतवादी बौद्धिक चमत्कार के व्यक्तिवादी रचनाकार नहीं थे बल्कि समाज के भीतर रहकर उसका सुद-दुःख, आशा निराशा और संकल्प को भोगने ओर सँवारने वाले लोग थे। जिसप्रकार धर्म और शिक्षा के क्षेत्र में प्रतिभागों का उन्नयन हो रहा था उसी प्रकार साहित्य का क्षेत्र भी उर्वर था।⁷¹

इस युग में जो साहित्यकार आए थे वे साधनसंपन्न नहीं थे और न उनके पास सुख सुविधा का वह रूप था। जो आज है। पर कुछ कर गुजरने की जो भावना उनमें थी उसने उनके साहित्य को जीवंत और जनचेतना का साहित्य बनाया।

19 वीं शताब्दी में सभी क्षेत्रों में प्रगति हो रही थी। प्रारम्भ में मित्र-मंडलियों के बीच साहित्य रचना का कार्य प्रारंभ हुआ ओर उनका अग्रगण्य भारतेन्दु मंडल बना। पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन आरंभ हो चुका था इसलिए प्रायः सभी साहित्यकार प्रकाशन करते थे। उनके भीतर एक दूसरे के सहयोग की भावना थी उनमें अधिकांश अंग्रेजी या बँगला के माध्यम से अंग्रेजी साहित्य से परिचित थे। गद्य का विकास भारत में

बहुत कम हो पाया था लेकिन पश्चिम में गद्य साहित्य बहुत अधिक रचा गया था इसलिए गद्य की उन सब विधाओं पर भी भारतेन्दु युग में प्रयोग किया गया जो पश्चिम में थी। शिक्षा की व्यवस्था के साथ ही खड़ी बोली का भी प्रसार हो रहा था। खड़ी बोली को ही गद्य की भाषा बनाया गया। पद्य की भाषा ब्रजभाषा बनी रही। पत्र-पत्रिकाओं के व्यापक प्रसार से गद्य को निखारा। पूरे भारतेन्दु युग में गद्य के क्षेत्र में निबंध, प्रहसन, नाटक, समालोचना, समीक्षा और व्यंग्य विनोद का साहित्य रचा गया।⁷²

साहित्य के संवर्धन और प्रवर्धन के लिए अनेक छोटी मोटी स्थानीय संस्थाएं गठित हुईं और काल के प्रवाह में विलीन हो गईं। किंतु हिन्दी जगत् में इस क्षेत्र में सबसे बड़ा प्रयत्न सन् 1894 में हुआ और वह प्रयत्न काशी में नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना का था। देश के धार्मिक और सामाजिक आंदोलन में जो महत्त्व आर्य समाज का है, राजनीतिक क्षेत्र में जो महत्त्व कांग्रेस का है वही महत्त्व हिन्दी जगत् में नागरीप्रचारिणी सभा का है। संस्था ने स्थापित होते ही नागरीप्रचारिणी पत्रिका का प्रकाशन आरंभ किया जो गंभीर साहित्य का बीज बिंदु है। यह आज भी हिन्दी की सर्वमान्य शोध पत्रिका है। सभी की ओर से ही 'सरस्वती' का प्रकाशन आरंभ हुआ जो आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के हाथ में पड़कर युग नियामक बनी। पं० मदनमोहन मालवीय हिंदू हिंदी जगत के नेता बने और हिन्दी के रथ के संचालन का कार्य उन्होंने अपने हाथ में ले लिया। नागरी लिपि की स्थापना उन्होंने कचहरियों में कराई। इस युग में हिन्दी के दो विधायक नेता सामने आये - बाबू श्यामसुंदर दास और आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी। द्विवेदी जी ने 'सरस्वती' के माध्यम से साहित्य की सृष्टि में आचार्य का कार्य किया और बाबू श्यामसुंदर दास ने हिंदी वाङ्मय को भारतीय भाषाओं के उच्चतम धरातल पर स्थापित करने का सार्थक और सिद्ध प्रयत्न।

भारतेन्दु युग की जो प्रवृत्तियाँ किशोरावस्था में थी उन प्रवृत्तियों को दोनों महारथियों ने यौवनदान दिया। सरस्वती ने ही केवल साहित्य की रचना में युगविधायक कार्य नहीं किया बल्कि हिंदी क्षेत्र के कोने-कोने से पत्र-पत्रिकाएँ निकली जिन्होंने हिंदी की साहित्य सर्जना को विभूति के द्वार पर पहुँचा दिया। इस युग में जितनी पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन हुए वे सब की सब विविध विषयों से विभूषित थीं।⁷³

इन पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से गुलेरी, प्रेमचंद, प्रसाद, किशोरीलाल गोस्वामी वृंदावनलाल वर्मा, पद्मसिंह शर्मा, श्यामसुंदर दास, मिश्रबंधु, शिवपूजन, सहाय,

हरिऔध, बालमुकुन्द गुप्त, महावीर प्रसाद द्विवेदी, गंगाप्रसाद अग्निहोत्री, गोविन्दनारायण मिश्र, पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' जैसे गद्यकार और श्रीधर पाठक, हरिऔध, रामचरित उपाध्याय, रामनरेश त्रिपाठी, मैथिलीशरण गुप्त, प्रसाद, पंत, निराला जैसे कवि प्रकट हुए। गद्य के क्षेत्र में कहानियाँ, निबंध, नाटक, उपन्यास, आलोचना, रेखाचित्र लिखे गये। काव्य के क्षेत्र में भारतेन्दु युग में खड़ी बोली काव्य की भाषा नहीं बन पाई थी। खड़ी बोली काव्य की भाषा हो सकती है या नहीं, इस पर भयंकर विवाद हुआ लेकिन इस युग में काव्य के रूप में खड़ी बोली की प्रतिष्ठा हुई। द्विवेदी युग के अंत में ही छायावाद का शुभारंभ हुआ। इस काल में जिन पत्रिकाओं का विशेष योगदान है, उनके नाम हैं- नागरीप्रचारिणी पत्रिका, सरस्वती, हिन्दी प्रदीप, चाँद, प्रताप, साधु, मर्यादा, भास्कर, प्रभा आदि। द्विवेदी युग के अंतिम वर्ष सन् 1920 में 'आज' दैनिक का प्रकाशन हुआ और उसके साथ ही अनेक अन्य दैनिक प्रकाशित हुए।⁷⁴

द्विवेदी युग में सभी क्षेत्रों में खड़ी बोली की पूर्ण प्रतिष्ठा हुई और भारतेन्दु युग में जो कार्य उठाया गया था वह बड़ी सतर्कता, सावधानी और मर्यादा के साथ श्रीसंपन्न हुआ।

इस युग का काव्य स्वतंत्रता और मानवतावाद का संदेशवाहक तथा पीड़ित प्रताड़ित और उपेक्षित के प्रति स्नेह और संवेदना का साहित्य है। किसान से लेकर श्रमिक तक इस युग में काव्य के विषय बने। सामाजिक सुधार के जो आंदोलन चल रहे थे उन सब की छटा तो इस युग के काव्य में थी ही, पौराणिक जीवन और चरित्रों के संबंध में भी युगसापेक्ष काव्य की रचना हुई। इस युग के कवियों ने केवल जीवनवादी स्थूल काव्य की रचना नहीं की, बल्कि प्रकृति शुभ भावों तथा प्रेम और सौंदर्य के लिए भी काव्य की सृष्टि हुई। काव्य में खड़ी बोली की पूर्ण प्रतिष्ठा की गई। प्रिय-प्रवास, रामचरित चिंतामणि आदि महाकाव्य जहाँ लिखे गये वही खंडकाव्य और स्फुट कविताएँ भी लिखी गई जिसमें गीत और प्रगति तो थे ही, पुराने छंदों में भी खड़ी बोली की कविताएँ लिखी गई। इस युग में सही अर्थों में उपन्यास का लेखन आरंभ हुआ और कहानियों की रचना का शुभारंभ।⁷⁵

द्विवेदी युग में निबंध अपने वैभव के चरम उत्कर्ष पर पहुँचे, रेखाचित्र भी इस युग में लिखे गये तथा निबंधों के विषय का विस्तार भी हुआ। इस युग का साहित्यकार प्रत्येक क्षेत्र में जीवन से ओत-प्रोत था। रामचन्द्र शुक्ल जैसा निबंधकार इसी युग की देन है। आलोचना और समीक्षा का श्रीगणेश भी इस युग से ही हुआ। 20वीं शताब्दी

के यह दो दशक हिन्दी के आधुनिक साहित्य के इतिहास के अनन्य वैभवशाली दशक हैं जिनकी शक्ति और क्षमता हिन्दी को भारतीय भाषाओं में उच्च धरातल पर प्रतिष्ठित करती है।

अनुवाद का कार्य 19वीं शताब्दी में ही आरम्भ हो गया था। जहाँ कालिदास की रचनाओं, अंग्रेजी साहित्य और बंगला साहित्य का अनुवाद हुआ वहीं अनुवाद की परिधि बड़ी व्यापक हुई। भारतीय और विदेशी भाषाओं के, यहाँ तक कि मूल अरबी फारसी से भी अनुवाद का कार्य इस युग में हुआ और बड़े व्यापक पैमाने पर हुआ।⁷⁶

द्विवेदी युग हिन्दी साहित्य का एक ऐसा नियामक युग है जिसने भावी साहित्यिक रचना को नई दिशा दी। केवल साहित्य की रचना ही इस युग में नहीं हुई, हिन्दी और देवनागरी के प्रचार का कार्य भी किया गया। देश को एक भाषा देने का आंदोलन नागरी प्रचारिणी सभा ने उठाया और सन् 1911 में उसने हिन्दी साहित्य सम्मेलन की स्थापना कर इस आंदोलन को परिपुष्ट किया। भाषा और साहित्य के चिंतन का मंच हिन्दी साहित्य सम्मलेन ने बड़ा व्यापक कार्य किया। हिंदी को घर-घर पहुँचाने के लिए हिन्दी साहित्य की रचना हो रही थी और हिन्दी की संपन्नता में इसके द्वारा अभिवृद्धि हो रही थी।

मैथिलीशरण गुप्त जी का हिन्दी प्रेम विशेष उल्लेखनीय है। वे हिन्दी भाषा के यथेष्ट लोकप्रिय न होने पर भी खेद प्रकट करते हैं। उनकी दृष्टि में हिन्दी भाषा को अपना मानो राष्ट्रीय विचारों को विकसित करना है। इसीलिए राष्ट्रीयता के अन्य तत्त्वों तथा इकाइयों के साथ ही गुप्त जी ने देशवासियों से हिन्दी भाषा को अपनाने का भी आग्रह किया-

ग्राम-ग्राम में ग्रन्थागार,
करे ज्ञान-गुण का वितार।
बढ़े हिन्दी का प्यार,
भरें राष्ट्र भाषा भण्डार।⁷⁷

सारांश यह है कि मैथिलीशरण गुप्त जी ने युग के साथ चलने की अद्भुत क्षमता है। और उनकी प्रतिभा कालानुसारणी है, जिसकी प्रशंसा करते हुए आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है- “गुप्त जी की प्रतिभा की सबसे बड़ी विशेषता है, कालानुसरण की क्षमता, अर्थात् उत्तरोत्तर बदलती हुई भावनाओं और काव्य-प्रणालियों को ग्रहण करते चलने की शक्ति।”⁷⁸

1. डॉ० उदयभानु सिंह - महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग पृ०-सं० -1,
2. अयोध्या सिंह - भारत का मुक्ति संग्राम पृ० - 23,
3. वही - पृ० -23,
4. ए० आर० देसाई - भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि पृ०-सं० - 274-248,
5. अयोध्या सिंह -भारत का मुक्ति संग्राम पृ० - 136-137,
6. वही, पृ० - 170-171,
7. वही, पृ० - 171,
8. वही, - पृ० -172,
9. अयोध्या सिंह - भारत का मुक्ति संग्राम पृ० -172-173,
10. डॉ० वीरेन्द्र कौशिक - द्विवेदी-युग की पृष्ठभूमि और नाथूराम शंकर - पृ० 22,
11. अयोध्या सिंह - भारत का मुक्ति संग्राम पृ० -176,
12. वही, पृ० - 177,
13. डॉ० वीरेन्द्र कौशिक - द्विवेदीयुगीन पृष्ठभूमि और नाथूराम शंकर - पृ० 23,
14. भक्तराम - द्विवेदीयुगीन काव्य पर आर्य समाज का प्रभाव पृ० सं० -53
15. डॉ० वीरेन्द्र कौशिक - द्विवेदी-युग की पृष्ठभूमि और नाथूराम शंकर - पृ० 24.
16. अयोध्या सिंह - भारत का मुक्तिसंग्राम पृ० -169,
17. वही, पृ० - 403-404,
18. वही, पृ० - 404-405,
19. ए० आर० देसाई - भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि पृ० - 276,
20. अयोध्या सिंह - भारत का मुक्तिसंग्राम पृ० -409,
21. ए० आर० देसाई - भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि पृ० - 277-278,
22. डॉ० शिवकुमार शर्मा- हिन्दी साहित्यिक युग और प्रवृत्तियाँ पृ० 450,
23. ए० आर० देसाई - भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि पृ० - 280-281,
24. वही, पृ० 293,
25. डॉ० द्वारिकाप्रसाद सक्सेना - हिन्दी के आधुनिक प्रतिनिधि कवि- पृ० 84-85,
26. भारत-भारती (अतीत खण्ड) मैथिलीशरण गुप्त पृ० - 91,

27. डॉ० जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी - मैथिलीशरण गुप्त की काव्य यात्रा पृ० -120
28. वही, पृ० 121,
29. ए० आर० देसाई - भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि पृ० - 31-27,
30. डॉ० वीरेन्द्र कौशिक - द्विवेदीयुगीन पृष्ठभूमि और नाथूराम शंकर - पृ० 46.
31. किसान (प्रार्थना) मैथिलीशरण गुप्त पृ० -9,
32. अयोध्या सिंह - भारत का मुक्तिसंग्राम पृ० -9,10,
33. वही, पृ० - 12
34. डॉ० उदयभानु सिंह - महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग पृ०-सं० -4,
35. अयोध्या सिंह - भारत का मुक्तिसंग्राम पृ० -17,
36. विश्व-वेदना- मैथिलीशरण गुप्त - पृ०-17,
37. भारत-भारती - मैथिलीशरण गुप्त पृ० - 127,
38. डॉ० उदयभानु सिंह - महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग पृ०-सं० -5,
39. डॉ० वीरेन्द्र कौशिक - द्विवेदी युग पृष्ठभूमि और नाथूराम शंकर - पृ० 48,
40. ए० आर० देसाई - भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि पृ० - 84,
41. पनूमचन्द्र तिवारी - द्विवेदीयुगीन काव्य - पृ०- 108,
42. ए० आर० देसाई - भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि पृ० - 84,
43. डॉ० उदयभानु सिंह - महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग पृ०-सं० -5,
44. ए० आर० देसाई - भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि पृ० - 194-196,
45. वही, पृ० -209,
46. भारत-भारती (भविष्यत् खण्ड) मैथिलीशरण गुप्त पृ० - 171,
47. डॉ० द्वारिकाप्रसाद सक्सेना - हिन्दी के आधुनिक प्रतिनिधि कवि- पृ० 80,
48. ए० आर० देसाई - भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि पृ० - 211-212,
49. वही, पृ० - 219-220,
50. डॉ० मंजु लता तिवारी -मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में नारी पृ० -27,
51. ए० आर० देसाई - भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि पृ० - 191,
52. डॉ० उदयभानु सिंह - महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग पृ०-सं० -6,

53. ए० आर० देसाई - भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि पृ० - 229,
54. अयोध्या सिंह - भारत का मुक्तिसंग्राम पृ० -36,
55. सुधाकर पांडेय - हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास (नवम भाग) पृ० सं०-7.
56. ए० आर० देसाई - भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि पृ० - 232,
57. डॉ० वीरेन्द्र कौशिक - द्विवेदीयुगीन पृष्ठभूमि और नाथूराम शंकर - पृ० 39-40,
58. वही, पृ० - 40,
59. वही, पृ० - 41,
60. भारत-भारती - मैथिलीशरण गुप्त पृ० - 170,
61. भारत-भारती - मैथिलीशरण गुप्त पृ० - 37,
62. डॉ० वीरेन्द्र कौशिक - द्विवेदी युग पृष्ठभूमि और नाथूराम शंकर - पृ० 42,
63. सुधाकर पांडेय (संम्पा.)-हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास (नवम भाग) पृ० सं०-10
64. डॉ० वीरेन्द्र कौशिक - द्विवेदी युग पृष्ठभूमि और नाथूराम शंकर - पृ० 43,
65. अनद्य - मैथिलीशरण गुप्त पृ० - 11-31,
66. डॉ० वीरेन्द्र कौशिक - द्विवेदी युग पृष्ठभूमि और नाथूराम शंकर - पृ० 44,
67. मंगल घट- मैथिलीशरण गुप्त पृ० - 232-233,
68. काबा और कर्बला - मैथिलीशरण गुप्त पृ० - 46,
69. राजा प्रजा - मैथिलीशरण गुप्त पृ० - 46,
70. डॉ० द्वारिकाप्रसाद सक्सेना - हिन्दी के आधुनिक प्रतिनिधि कवि- पृ० 87,
71. सुधाकर पांडेय (संम्पा.)-हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास (नवम भाग) पृ० सं०-22
72. वही, पृ० - 23-24,
73. वही, पृ० - 24-27,
74. डॉ० उदयभानु सिंह - महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग पृ०-सं० -13,
75. सुधाकर पांडेय - हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास (नवम भाग) पृ० सं०-28
76. वही, पृ० - 28-29,
77. हिन्दू (प्रचार प्रसंग) मैथिलीशरण गुप्त पृ० 126,
78. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल - हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० 334,

पंचम अध्याय

मैथिलीशरण गुप्त जी के काव्य की प्रवृत्तियों का समीक्षत्मक अध्ययन

काव्य-परिचय

निबंध काव्य -

- ▶ आख्यानक लघु-निबंध।
- ▶ निराख्यानक लघु-निबंध।
- ▶ आख्यानक वृहत्-निबंध।
- ▶ संकलनात्मक निबंध-काव्य।

पत्रिका -

अनुवाद -

- ▶ संस्कृत के रूपकों का अनुवाद।
- ▶ बंगला के -काव्यों का अनुवाद।
- ▶ अंग्रेजी रूपांतर का अनुवाद।

अन्य साहित्य-

- ▶ नाट्य-रचनाएँ
- ▶ भाषण।
- ▶ संस्मरण।
- ▶ पत्र।
- ▶ आलोचना।
- ▶ रेडियो-वार्ता।
- ▶ कहानी।

मैथिलीशरण गुप्त के सम्पूर्ण साहित्य का नवीन दृष्टिकोण से मूल्यांकन।

मैथिलीशरण गुप्त जी के काव्य की प्रवृत्तियों का समीक्षात्मक

अध्ययन-

मैथिलीशरण गुप्त का जन्म 19वीं शताब्दी के अंतिम दौर में हुआ था और उन्होंने आज़ाद देश को कई वर्षों तक जाना पहचाना। वह सामंती परिवेश के विशेष संस्कारों में जन्मे थे पर उन्होंने स्वयं को उससे मुक्त किया और स्वतंत्रता संघर्ष में सक्रिय भाग लिया। अपनी रचनाओं से गुप्त जी ने देश-प्रेम की भावना का प्रचार किया।¹

भारत के इतिहास में 19 वीं शताब्दी का समय पुनर्जागरण काल के नाम से प्रसिद्ध है। ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना के बाद राजनीतिक चेतना के साथ प्रबुद्ध भारतीयों में सांस्कृतिक, साहित्यिक एवं धार्मिक भावना का संचार हुआ।

हिन्दी साहित्य का भारतेन्दु युग इस पुनर्जागरण के लिए अपने कर्तव्य निर्वाह में पूरी तरह सजग होकर भागीदार बना। पराधीन भारत में भी स्वाधीनता की गूंज इसी युग के सहित्यकारों में पूरी तरह ध्वनित हुई। भारतेन्दु युग के कवियों ने पराधीनता के पाश की पीढ़ी से छुटकारे की कामना की और ब्रिटिश राज्य की सुख-सुविधाओं के बीच अपने स्वातन्त्र्य की कामना में वे मौन तोड़कर मुखरित हो उठे।²

पुनर्जागरण का यह स्वर भारतेन्दु युग के साथ समाप्त नहीं हुआ बल्कि और अधिक वेग से द्विवेदी युग में गुंजित हुआ। हिन्दी साहित्य के इतिहास में यह युग 1901 से 1920 तक माना जाता है। इस युग को नैतिकतावादी, आदर्शवादी सुधारवादी आंदोलन युग कहा जाता है। द्विवेदी युग के कवियों में अपनी सर्वाधिक लोकप्रियता, सहज-सरल भाषा और कथा प्रसंगों की मार्मिकता के कारण मैथिलीशरण गुप्त का नाम शीर्ष पर है। यदि उत्तर भारत के हिन्दी काव्य के नवजागरण का इतिहास लिखा जायेगा तो राष्ट्रकवि गुप्त जी का नाम पहली पंक्ति में, पहले स्थान पर होगा।

बीसवीं सदी में भारत ने परतंत्रता की वेदना को सहते हुए आक्रोश की मुद्रा में करवट बदली थी। तिलक गोखले, लालालाजपतराय, महात्मा गांधी आदि राजनैतिक नेताओं के साथ क्रांतिकारियों का दल भी देश में आजादी के लिए उठ खड़ा हुआ था। साहित्यिक क्षेत्र में भी स्वतंत्रता प्राप्ति की लहर, सभी भाषाओं के मूर्धन्य कवियों की रचनाओं में लक्षित होने लगी थी उर्दू शायर इकबाल, बंगाल के कवि रवीन्द्रनाथ, तमिल

के कवि सुब्रह्मण्यम भारती और हिन्दी के कवि मैथिलीशरण गुप्त इनमें प्रमुख थे। गुप्त जी का क्षेत्र हिन्दी भाषी होने के कारण सबसे विस्तृत था, अतः उनका प्रभाव भी अन्य कवियों की अपेक्षा व्यापक जन-मानस को स्पर्श करने वाला बना। इसके सिवा उन्हें सबसे लम्बे समय तक कवि कर्म में लीन रहने का अवसर मिला और स्वाधीन भारत में भी 17 वर्ष तक उन्होंने अपनी वाणी को भारत-जागरण में लगाया।³

मैथिलीशरण गुप्त ने अपने काव्यों में देशभक्ति की भावना को सर्वोच्च स्थान प्रदान किया और अपनी कविताओं के माध्यम से राष्ट्रीय भावों का सर्वाधिक प्रचार एवं प्रसार किया।

आचार्य गुलाबराय ने लिखा है कि - "गुप्त जी की कविता में राष्ट्रीयता और गांधीवाद की प्रधानता है।"⁴

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने भी स्पष्ट घोषणा की है - "राष्ट्र की और युग की नवीन स्फूर्ति, नवीन जागृति के समृति-चिन्ह हमें हिन्दी में सर्वप्रथम गुप्त जी के काव्य में ही मिलते हैं।"⁵

मैथिलीशरण गुप्त ने अपनी रचनाओं द्वारा देशभक्ति के उद्दीप्त भावों को जन-जन के हृदय में भरने का स्तुत्य प्रयत्न किया, देशवासियों को अपने गौरवमय अतीत से अवगत कराया, उनकी वर्तमान दुरावस्था के कारुणिक चित्र अंकित किए और उन्हें पराधीनता की बेड़ियों से मुक्त होने के लिए प्रोत्साहित किया।

काव्य-

श्री मैथिलीशरण गुप्त गत अर्द्धशताब्दी से अनवरत साहित्य-सेवा कर रहे हैं। मैथिलीशरण गुप्त का रचना काल साठ वर्षों की कालावधि में परिव्याप्त है। 20वीं शती की आरंभिक और अविकसित नवचेतना को लेकर उनका साहित्य-प्रवेश हुआ और अपने जीवन की संध्या तक वे स्वनिर्दिष्ट पथ पर आगे बढ़ते ही रहे। उनका काव्य निरंतर विकासशील रहा।

इन साठ वर्षों में स्वतंत्रता-संग्राम के अनेक पड़ाव आये। आरंभिक नवजागरण से लेकर नवोत्थान तक की सांस्कृतिक यात्रा सम्पन्न हुई, देशभक्ति तथा राष्ट्रीयता के अनेक आयाम प्रकट हुए- एवं महात्मा गांधी तथा उनकी पूर्ववर्ती और परवर्ती चिन्ता-धारा से भारतीयता उद्बुद्ध, सक्रिय एवं अग्रसर होती रही। जातीयता और क्षेत्रीयता की

क्षुद्र सीमाएँ टूटी तथा मानवता का जयगान हुआ अब तक गुप्त जी की 40 मौलिक पुस्तकें निकल चुकी हैं। उनकी मौलिक रचनाओं का संक्षिप्त परिचय क्रमानुसार इस प्रकार है:-

रंग में भंग-

मैथिलीशरण गुप्त जी की सर्वप्रथम मौलिक रचना रंग में भंग संवत् 1910 में प्रकाशित हुई। यों तो 'सरस्वती' आदि पत्रिकाओं में गुप्त जी की कविताएँ इससे पहले भी निकलती रही, पर यह पहली पुस्तक है- युवक कवि का प्रथम प्रयास। कवि मैथिलीशरण ने एक ऐतिहासिक घटना लेकर रंग में भंग जैसे रोचक काव्य की रचना खड़ी बोली में की। गुप्त जी ने प्रदर्शित किया कि खड़ी बोली गद्य के ही नहीं पद्य के भी उपयुक्त है और उसमें भी सरस एवं कला पूर्ण काव्य की रचना हो सकती है।

रंग में भंग एक खण्ड काव्य है जिसमें बूंदी एवं चित्तौड़ के नरेशों की एक महत्वपूर्ण घटना कविताबद्ध हुई है।

रंग में भंग खण्डकाव्य में राजपूतों का अद्भुत वीरत्व प्रदर्शित हुआ है। इसकी कथावस्तु मुख्यतः दो घटनाओं से संबन्ध रखती है। प्रथम घटना का विषय है चित्तौड़ के महाराणा का विवाहोपरांत अपने श्वसुर बूंदी नरेश से विग्रह। द्वितीय घटना चित्तौड़ में नकली किले की रक्षा करते हुए हाड़ा कुंभ की मृत्यु से संबन्ध रखती है। यह वर्णनात्मक लम्बी कविता है।⁶

कवि ने नव-वधू, राज-कवि, राणा खेतल, राणा लाखा, हाड़ा कुंभ आदि जातीय पात्रों की अवतारणा की है। इसमें गुप्तजी की नवयुग की पुनरुत्थानवादी प्रवृत्तियाँ भी प्रकट हुई हैं। उन्होंने नारी की उच्चता, मातृ-भूमि का प्रेम तथा जीवन के नैतिक मूल्यों को प्रधानता दी है।

जयद्रथ वध-

जयद्रथ वध कवि श्री मैथिलीशरण गुप्त जी की द्वितीय रचना है। इसका प्रकाशन सर्वप्रथम सन् 1910 में हुआ। गुप्त जी की प्रारम्भिक रचनाओं में भारत भारती को छोड़कर इसकी प्रसिद्धि सर्वाधिक रही। यह एक खण्डकाव्य है कथा का आधार महाभारत है।⁷

जयद्रथवध की कथावस्तु सात सर्गों में विभक्त है प्रथम सर्ग में अभिमन्यु-के वध की घटना का वर्णन किया गया है। द्वितीय सर्ग में पांडवों के शोक की व्यंजना की गई है। तृतीय सर्ग में कृष्ण ने अर्जुन का प्रबोधन किया है और पांडवों को सांत्वना दी है। अभिमन्यु का दाहसंस्कार वर्णित करते हुए कवि ने उसकी माता और पत्नी के करुण विलाप का विधान किया है। चौथे सर्ग में अर्जुन ने शंकर से पाशुपतास्त्र की प्राप्ति की है। यह अतिप्राकृत वस्तु निरूपण है और इसमें अतिमानवीय कार्य का विवरण दिया गया है। कवि ने कृष्ण की योगमाया के द्वारा यह कार्य संपादित करवाया है।

पंचम सर्ग में कौरव-पांडव-युद्ध की भीषणता का विवरण दिया गया है। जयद्रथ अर्जुन की प्रतिज्ञा को असफल बनाने के लिए सूर्यास्त तक अपने को छिपाए रखने का प्रयास करता है तथा कौरवों के द्वारा उसकी रक्षा का प्रयत्न किया जाता है। इस सर्ग में अर्जुन का विस्मयकारी युद्ध वर्णित हुआ है और भीम का यद्धोन्माद दिखाया गया है। षष्ठ सर्ग में जयद्रथ-वध की घटना निरूपित हुई है। भूरिश्रवा के वध के प्रसंग में अर्जुन ने अपने शूर-धर्म का अख्यान किया है। सप्तम सर्ग में कथा का उपसंहार वर्णित हुआ है। विजयी अर्जुन कृष्ण के साथ अपने शिविर में लौट आते हैं और पांडवों को हर्षोल्लास का अनुभव होता है।⁸

इस काव्य के नायक अर्जुन हैं और कृष्ण अवतारी चरित्र हैं। पांडव सत्य पक्ष के तथा कौरव असत्य पक्ष के पात्र हैं। कवि ने अपने पात्रों को भावनाशील बनाया है और वे मुख्यता सात्विक और सरल हैं अथवा क्रूरकर्मा और कुटिल हैं।

जयद्रथ-वध की वर्णन शैली रसात्मक है, जिसमें शृंगार, वीर, करुण और शांत रसों के मार्मिक स्थलों की नियोजना की गई है। कवि ने न्याय का समर्थन, सत् का प्रतिपादन और शील का आदर्श व्यक्त करने के लिए यह रचना प्रस्तुत की है। भारतीय संस्कृति के दांपत्य और वीरत्व विषयक आदर्शों को प्रकट करते हुए कवि ने अपनी भक्ति-भावना को भी अभिव्यक्त किया है। इस काव्य में गुप्त जी के भाषा-संस्कार का, रसात्मक वर्णन का और सुविन्यस्त कथावस्तु का सौंदर्य स्पष्ट होता है। यह उनका प्रथम खंडकाव्य है, जो हिन्दी-जगत में लोकप्रिय हुआ था।⁹

पद्य प्रबंध-

पद्य-प्रबंध समय-समय पर लिखी गई भिन्न-विभिन्न प्रकार की कविताओं का संग्रह है जो कि संवत् 1912 में प्रकाशित हुआ। विषय की दृष्टि से इसमें संगृहीत कविताओं में कोई समानता नहीं है। पौराणिक, ऐतिहासिक और सामयिक विषय इसमें मिलते हैं पौराणिक विषयों में वनवास, और मुनि का मोह प्रधान है। न्याय दर्शन और बाजी प्रभु देश पाड़े दोनों ऐतिहासिक हैं, और शिक्षा, मक्खीचूस, पंजरबद्ध शुक सामाजिक विषय हैं।

विविध विषयों पर आधारित रचनाओं का संकलन होने से इसमें प्रायः सभी रसों का समावेश है। भाषा भी सभी रचनाओं की समान नहीं है फिर भी खड़ी बोली का सुष्ठुरूप पद्य-प्रबंध में मिलता है। गुप्त साहित्य में पद्य-प्रबंध का द्विगुणित महत्व है एक तो इसके लघुकाय रोचक अख्यान साकेत जैसे कलापूर्ण प्रबंधकाव्य के रचयिता गुप्त के भावी विकास की ओर संकेत करते हैं, दूसरे विविध विषयों पर पद्यबद्ध विचार गुप्त जी के राष्ट्रकवि रूप का पूर्वाभास देते हैं।¹⁰

भारत-भारती-

रचनारंभ रामनवमी सन् 1912 को हुआ और समाप्ति जन्माष्टमी सन् 1913 को की गई। यह प्रायः सोलह महीनों में रची गई। इसकी रचना में कवि ने हाली और कैफी के मुसदसों से लाभ उठाया। हाली का 'मद्दो-जजे-इस्लाम' मुसलमानों के नवजागरण का गीति-काव्य है और वही इस काव्य रचना का प्रेरक ग्रंथ बना।¹¹

प्रचार की दृष्टि से भारत-भारती गुप्त जी की सर्वश्रेष्ठ रचना है। एक समय था कि जब भारत-भारती के पद्य प्रत्येक हिन्दी भाषी के कंठ पर थे। भारतीयों में राष्ट्रीय चेतना की जागृति में इस पुस्तक का बहुत हाथ रहा है। भारत-भारती के प्रचार की व्यापकता एवं जन-जागरण की प्रचण्डता से सशंक बिहार गवर्नमेंट ने इस पर प्रतिबंध लगा दिया। जिसके कारण कवि को जेल-यात्रा भी करनी पड़ी।

काव्य की दृष्टि से भारत-भारती काफी सरस है। भाषा ओजमयी और शैली प्रभावपूर्ण है। उत्तर-भारत में भारत-भारती का इतना प्रचार था कि स्कूलों-पाठशालाओं में इसके पद्य गाए जाते थे, स्वतंत्रता के पुजारी देशसेवक इसका गान करते हुए सत्याग्रह

आन्दोलनों में भाग लेते थे। स्व० राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्र प्रसाद और काका कालेलकर आदि नेताओं एवं विद्वानों ने इसके महत्त्व को राष्ट्रीय आन्दोलनों में इसके योगदान को कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार किया है।

शकुन्तला-

शकुन्तला श्री मैथिलीशरण गुप्त जी की नारी-चरित्र-प्रधान कृति है। इसे गुप्तजी ने स्फुट अख्यानों के रूप में रचा है और अभिज्ञान शकुन्तल की कथा वस्तु के अनुरूप क्रमबद्ध किया है। प्रारंभ में इसका प्रकाशन खंडशः सरस्वती में हुआ था। बाद में संगृहीत करके पुस्तकाकार में सन् 1914 में प्रकाशित किया। इसे निरा पद्यात्मक प्रबंध भी कहा गया है।¹²

इस काव्य की कथावस्तु का विभाजन प्रसंगों के आधार पर किया गया है। 'उपक्रम' में मूलकथा की रसात्मकता को तथा शकुन्तला के आकर्षक चरित्र के महत्त्व को प्रकट किया गया है। 'जन्म और बाल्यकाल' में शकुन्तला के जन्म और कण्व के आश्रम में उसके लालित-पालित होने के वृत्तांत का संक्षेप में विवरण दिया गया है। 'दर्शन' में शकुन्तला और दुष्यन्त की प्रथम भेट का वर्णन करते हुए कवि ने दोनों के मन में पूर्वारोग का उदय दिखाया है। 'पत्र' शीर्षक काव्यांश में शकुन्तला के पूर्व-राग की अवस्था का वर्णन करते हुए उसके प्रेम-पत्र की रचना का विवरण दिया गया है। 'अवधि' प्रसंग में संयोग शृंगार का संक्षिप्त वर्णन किया गया है। और दोनों प्रेमियों के विदा-बेला के मार्मिक संवादों को रखा गया है। 'अभिशाप' में प्रिय के ध्यान में मग्न शकुन्तला के दुर्वासा के द्वारा अभिशप्त होने की घटना का वर्णन किया गया है। इसमें विप्रलंभ-जन्य जड़ता का चित्रण हुआ है। 'विदा' वस्तुतः बेटी की विदा है, जिसमें कण्व के वात्सल्य को अभिव्यक्त करते हुए प्रस्थानोधत शकुन्तला के आसन्न आश्रम-त्याग का करुण दृश्य आलेखित हुआ है। इसमें सुगृहिणी के शील और सदाचार का उल्लेख किया गया है। कण्व ने आदर्श पत्नीत्व के समाचरण का उपदेश भी दिया है। 'त्याग' प्रसंग कारुणिक है, जिसमें दुष्यन्त ने गर्भिणी शकुन्तला को शापवश विस्मृत ही नहीं, परिव्यक्त भी किया है। 'स्मृति' अंश में मुद्रिका की प्राप्ति होने पर दुष्यन्त को प्रियतमा की सुधि हो आई और पुरुष के वियोग का यहाँ पर वर्णन हुआ है। 'कर्तव्य' अंश में राजकीय न्याय के प्रसंग के द्वारा दुष्यन्त के निष्पुत्र गार्हस्थ्य जीवन

के क्षोभ को उद्दीप्त किया गया है। 'मिलन' कथांत का काव्यांश है, जिसमें दुष्यंत की दानव-जय का वर्णन करते हुए हेमकूट पर कश्यप और अदिति के आश्रम में उनके आने, सर्वदमन का सिंह के साथ क्रीड़ा करने और अपराधी पति का परिव्यक्ता पत्नी के साथ पुनर्मिलन होने, आदि प्रसंगों का विवरण दिया गया है।¹³

इस रचना की छंद-योजना वैविध्यपूर्ण है और पदावली प्रवाहमयी। रस की दृष्टि से इसमें शृंगार के दोनों पक्षों का वर्णन हुआ है। इसकी भाषा पूर्व रचनाओं की अपेक्षा परिमार्जित खड़ी बोली है। इस काव्य में प्राचीन भारत की सुसंस्कृत नारी के गौरव-गान को प्राथमिकता दी गई है।

तिलोत्तमा-

'तिलोत्तमा' एक पौराणिक नाट्य रचना है। इसका सर्वप्रथम प्रकाशन सन् 1915 में हुआ। इसमें नाट्यकला के विविध नियमों का पालन हुआ है। यह एक उद्देश्य रचना है। बन्धु-विरोध से उत्पन्न सर्वनाश को दिखाना कवि का उद्देश्य रहा है।

तिलोत्तमा की कथावस्तु महाभारत के 'सुन्दोपसुन्दोपाख्यान' पर आधारित है। देवराज इन्द्र और दौत्यराज सुन्द में जानी दुशमनी थी सुन्द अपने भाई उपसुन्द के साथ ब्रह्मजी की तपस्या करके अजेय होने का वर लेता है, परन्तु उनके साथ यह भी शर्त थी कि भाई-भाई में झगड़ा होने पर अजेय नहीं होंगे। उसी बल पर देवराज इन्द्र से युद्ध करके बड़े-बड़े वीरों समेत उनको परास्त किया और उनके अधिपति बन बैठे। दुखी देवतागण ने ब्रह्मजी की शरण में जाकर रक्षा की प्रार्थना की। उन्होंने सृष्टि की समस्त वस्तुओं की सुन्दरता को तिल-तिल एकत्र करके तिलोत्तमा अप्सरा की सृष्टि की वह सुन्दोपसुन्द को एकसाथ अपनी ओर आकृष्ट करने में समर्थ हुई। आखिर दोनों भाइयों का नाश आपसी कलह से हुआ। देवता सुखी हुए। इसी कथानक के आधार पर गुप्तजी ने 'तिलोत्तमा' की रचना की।¹⁴

चन्द्रहास-

चन्द्रहास नाट्य पद्धति के अनुसार रचा हुआ एक रूपक है। इसमें भाग्यवाद का समर्थन हुआ है। इसका सर्वप्रथम प्रकाशन सन् 1916 में हुआ था। देव-दानव से परे इसकी कथा मानव से सम्बन्धित है। चन्द्रहास नाटक में चन्द्रहास के चरित्र का विकास दिखाने का प्रयास किया गया है। कवि ने उसे आदर्श व्यक्ति कल्पित किया है, जो बाल्यावस्था से लेकर राज्यारोहण तक अपने सद्गुणों का विकास करता गया है।¹⁵

कुंदलपुर के महामंत्री की इच्छा थी कि भविष्य में उसके पुत्र मदन को राज्य मिले किन्तु इसके विपरीत एक भविष्यवाणी हुई कि चन्द्रहास राजा बनेगा। फलस्वरूप महामंत्री धृष्टबुद्धि द्वारा चन्द्रहास के प्राण संकट में पड़ जाते हैं। प्रथम बार उसे राजदूतों के हाथ जंगल में मारने भेजते हैं। राजदूत उसपर दया खाकर उसकी छठी उंगली काटकर छोड़ देते हैं। चन्द्रहास उसके बाद कुन्तलेश के सामंत कुलिंदक का पोष्यपुत्र बन जाता है। यह खबर पाकर धृष्टबुद्धि वहाँ पहुँचता है। अपने पुत्र मदन के नाम चन्द्रहास द्वारा एक पत्र भेजता है जिसमें चन्द्रहास को 'विषय कनी' देने का उल्लेख था। धृष्टबुद्धि की पुत्री विषया के हाथ पत्र पड़ जाता है जो कनी को काजल से मिटा देती है। परिणामतः चन्द्रहास के साथ उसकी शादी सम्पन्न होती है। धृष्टबुद्धि की चाल न चलने पर वह अत्यन्त खिन्न होता है और दामाद होते हुये भी अपने उद्देश्य पर अडिग रहता है। आखिर महाराजा कौतूलप कुंदलपुर का राज्याधिकार चन्द्रहास को सौंप देते हैं। मंत्री चन्द्रहास को विजनेश्वरी के मन्दिर में भेजता है जहाँ उसकी हत्या का प्रबंध किया गया था। परन्तु नियति की प्रेरणा से चन्द्रहास 'कौतूलप' के पास जाता है और मदन मन्दिर को धृष्टबुद्धि अपनी योजना की सफलता को देखने के लिए मन्दिर पहुँचा तो अपने पुत्र को मरा पाया। फलस्वरूप वह आत्महत्या कर लेता है। किन्तु देवी की कृपा से दोनों पुनर्जीवित होते हैं। अंत में धृष्टबुद्धि चन्द्रहास के राजा बनने पर कौतूलप के साथ वनप्रस्थाश्रम ग्रहण कर वन-गमन करता है। यह नाटक की सुखांत परिणति है।¹⁶ संक्षेप में चन्द्रहास एक आदर्शवादी रचना है जिसका नाट्यविद्या की दृष्टि से महान मूल्य न होते हुए भी युगीन महत्व है।

पत्रावली-

'पत्रावली' में मैथिलीशरण गुप्त जी ने ऐतिहासिक आधार पर सात पत्र गीतियाँ लिखी हैं। इसका प्रकाशन सन् 1917 में हुआ। इसके प्रथम पत्र में राणा पृथ्वीराज ने महाराणा प्रताप को अकबर की अधीनता न स्वीकार करने की उत्तेजना दी है। दूसरा पत्र प्रताप का जवाब है जिसमें अपनी आन पर कभी आंच न आने देने की कसम है। तीसरा पत्र वीर शीवाजी का औरंगजेब के प्रति है जिसमें जज़िया नामक कर लगाने के विरुद्ध अपनी आवाज़ उठाई है। चौथे पत्र का विषय है औरंगजेब का अपने अन्त काल में विगत करनी पर पश्चाताप प्रकट करना। पाँचवे पत्र में महारानी सीसोदिनी ने युद्ध से हारकर लौटे हुए पति के प्रति अपना उद्गार व्यक्त किया है। छठा पत्र महारानी

अहल्याबाई का दीवान गंगाधरराव के प्रति है। आखिरी पत्र रूपनगर की राजकुमारी 'रूपवती' का महाराणा 'राजसिंह' के नाम पर है। आखिरी पत्र अत्यधिक आत्माभिव्यक्ति-प्रधान है कुल मिलाकर कवि की दृष्टि वस्तु पर अधिक और कलाशिल्प पर कम पड़ी है।¹⁷

वैतालिक-

राष्ट्रकवि गुप्त जी ने एक सांस्कृतिक जागरण-गीत भी लिखा है, पर वह मूलतः राष्ट्रवादी प्रवृत्तियों का ही काव्य है। वैतालिक की रचना सन् 1917 में हुई और उसका पुस्तकाकार सन् 1918 में हुआ। इसमें गुप्त जी ने भारतवासियों को जगाया है तथा अपनी संस्कृति का पाश्चात्य संस्कृति के साथ सामंजस्य स्थापित करने का उपदेश दिया है।¹⁸ इस काव्य में चिरनिद्रित व्यक्ति को, उसकी चेतना को झकझोर डालने की शक्ति है, किन्तु काव्यगुण की दृष्टि से यह रचना गुप्त जी की प्रारंभिक कृतियों में अधिकांश से निम्नतर कोटि की है- क्योंकि इसमें बौद्धिक व्याख्यान है, हृदय-प्रसूत भावाभिव्यंजना नहीं इसीलिए इसमें रस का प्रायः अभाव है। कवि का शिल्प इस लघुकाय काव्य में निश्चित रूप से निखरा हुआ है।

किसान-

किसान की कथावस्तु एक किसान का संपूर्ण जीवन है, जिसमें उसके सुख-दुःख, आमोद-प्रमोद समाहित है। इसका प्रथम प्रकाशन सन् 1917 में हुआ था ।

कल्लू और कुलवती की जीवन-कथा का अख्यान करते हुए कवि ने कृषक-वर्ग के जीवन, उनके शील तथा उनकी दुर्दशा का वर्णन किया है। ये पात्र अपने जातीय गुणों का प्रदर्शन करते हैं।

कवि श्री मैथिलीशरण गुप्त जी ने इस खण्डकाव्य को सर्गों में विभाजित न करके शीर्षको में विभक्त किया है। 'प्रार्थना' अंश में किसान ने अपनी दुर्दशा का वर्णन करते हुए भगवान से अपने उद्धार के हेतु प्रार्थना की है। 'बाल्य और विवाह' के अन्तर्गत यह सौख्य, शान्ति, समृद्धि आदि से युक्त अपने आरंभिक जीवन का विवरण प्रस्तुत करता है। 'गार्हस्थ्य' में पुलिस, जमींदार और साहूकार के अत्याचारों का वर्णन करते हुए वह अपने माता-पिता के निधन का वृत्तांत निरूपित करता है। 'स्वस्वांत' में किसान को सामाजिक शोषण और न्यायनियम पूर्णतः निःस्व कर देते हैं। 'देशत्याग' में उसके

कुली-जीवन के वृत्तांत का विवरण दिया गया है। 'फिजी' अंश में अधिकारियों का अनैतिक आचरण प्रकट करते हुए कथानायक ने अपनी पत्नी की मृत्युका करुणोत्पादक वर्णन किया है। 'प्रत्यावर्तन' में उसके स्वदेश लौट आने का विवरण दिया गया है और उसकी कृतज्ञता की तथा मातृभूमि-प्रेम की व्यंजना हुई है। 'अंत' अत्यंत संक्षिप्त प्रसंग है, जिसमें टिगरिस के युद्ध में किसान के वीरगति पाने की घटना का वर्णन किया गया है।¹⁹ संक्षेप में किसान एक आत्म-कथात्मक खंडकाव्य है। और कल्लू जातीय विशेषताओं से संयुक्त पात्र। उसकी दुरवस्था भारतीय कृषक की ही करुणा कथा है।

यह एक भावनाशील आख्यान-वर्णन है। गुप्त जी ने इसमें कृषक-समस्या, कुली-प्रथा, सैनिक-जीवन, आदि सामयिक विषयों का निरूपण करते हुए अनैतिक कार्यों और सदोष आचरणों को अनिष्टकारी सिद्ध किया है। पुलिस, जमींदार, महाजन शासनाधिकारी आदि सामाजिक जीवन की विकृतियाँ हैं। कवि ने मानवता की भावना पर बल देते हुए और अनैतिक दुष्कृतियों का उल्लेख करते हुए यह करुण रस का खंडकाव्य रचा है।

अनद्य-

अनद्य एक गीति नाट्य है जिसका प्रथम प्रकाशन सन् 1925 में हुआ था। कवि ने इसका अंक विभाजन किए बिना इसे सत्रह खंडों में बांटा है। प्रत्येक खंड एक नये दृश्य को प्रस्तुत करता है। 'अनद्य' की कथा वस्तु बुद्ध कथा पर आधारित है। इसका नायक 'मध' अधहीन है, अतः नायक की प्रधानता में नाटक का नाम 'अनद्य' रखा गया है। मध आदर्श पुरुष है। उसके द्वारा गाँधीवाद का समर्थन हुआ है। विषम विश्व के कोने में डट जाने या हट जाने की द्विधा लेकर ही वह प्रकट होता है। आखिर डटकर विषमता के विपाटन के लिए काम करता है। अंत में सफलता की सिद्धि भी होती है।²⁰

संवाद अत्यन्त दीर्घ होने से अरोचक- से लगते हैं। एक-दो स्थानों में लेखक ने औचित्य का प्रदर्शन किया है। विषाद की अंतर्धारा से परे संपूर्ण रूप में रस की अभिव्यक्ति की ओर कवि का ध्यान नहीं गया है। यह अभिनय योग्य नहीं, पाठ्य-प्रधान है। छन्द एवं गति की प्रधानता इसमें प्रकट है जो खड़ी-बोली के विकास की परिचायिका है।

पंचवटी-

साहित्यकार गुप्त जी का प्रसिद्ध खंडकाव्य 'पंचवटी' का सर्वप्रथम प्रकाशन सन् 1925 में हुआ था। पंचवटी के रचना-काल के आसपास ही गुप्तजी ने अधिकांशतः पौराणिक प्रबंध रचे हैं। पंचवटी में राम-कथा के ऐसे प्रसंग की उद्भावना की गई है, जिसमें लक्ष्मण को प्रमुखता प्राप्त हो सके। राम-कथा के प्रस्तुत अंश को कवि ने स्वच्छंद प्रकृति के वातावरण में तथा पारिवारिक परिवेश में, उसके सम्पूर्ण माधुर्य, कारुण्य और मानवीय आदर्श के साथ चित्रित किया है। लक्ष्मण का आत्म संलाप शूर्पणखा का उनसे एकांत मिलन और उसकी प्रणय-याचना, दोनों की तर्कमयी उक्तिमत्ता, लक्ष्मण की अपेक्षा राम को कोमल समझकर उन्हीं के प्रति शूर्पणखा का प्रणय-निवेदन, एक ही आदर्श को तर्क के रूप में प्रस्तुत करके राम और लक्ष्मण दोनों के द्वारा उस प्रस्ताव की अस्वीकृति, शूर्पणखा के कथन, कृत्य और उग्ररूप, लक्ष्मण के द्वारा शूर्पणखा का विरूपीकरण, पारिवारिक उल्लास, देवर भाभी परिहास, पात्रों की स्वाभाविक चेष्टाएँ, परिस्थितियों तथा मनोभावनों का घात-प्रतिघात, आदि पंचवटी में विद्यमान हैं। इनमें से केवल शूर्पणखा के नासिकाच्छेदन के अतिरिक्त सभी प्रसंगों की नवीन उद्भावना की गई है।²¹

चरित्र चित्रण में गुप्त जी ने अपने आदर्शवादी दृष्टिकोण को अपनाया है। लक्ष्मण इस काव्य में प्रधान पात्र हैं। राम और सीता अप्रधान पात्र हैं। राम का शील और औदार्य उच्चकोटि का है। सीता पारिवारिक जीवन में माधुर्य का समावेश करने वाली रमणी है।

कलाशिल्प की दृष्टि से यह कृति पूर्ववर्ती समसामयिक रचनाओं में सर्वश्रेष्ठ है। शृंगार वीर और हास्य रसों की अभिव्यक्ति संयमित रूप में हुई है। काव्य में संवादशैली कहीं कहीं नाटकीयता का पुट देते हुए सजीव रहती है। प्रकृति के रम्य प्रांगण में पंचवटी की छाया में घटित घटनाओं को कवि ने उसके अनुरूप पृष्ठभूमि देकर प्रस्तुत किया है। प्रकृति चित्रण पंचवटी की छाया में घटित घटनाओं को कवि ने उसके अनुरूप पृष्ठभूमि देकर प्रस्तुत किया है। प्रकृति चित्रण के साथ भाव-चित्रण भी निखर उठे हैं। काव्य की भाषा प्रांजल एवं प्रसादपूर्ण है।²²

स्वदेश-संगीत-

स्वदेश-संगीत राष्ट्रकवि जी की 65 कविताओं का संकलन है जिसका प्रथम प्रकाशन सन् 1925 में हुआ था। पुस्तकाकार में इसका प्रकाशन होने के पहले इनमें

से अधिकतर कविताओं का प्रकाशन मासिक पत्रिकाओं में हो चुका था। अतः यह एक दशक की रचना मानी जा सकती है। इनमें देशभक्तियुक्त कविताएँ संकलित हैं। स्वदेश-संगीत की रचनाएँ मुख्यतः दो भागों में विभक्त होगी। गांधीजी के राजनीति क्षेत्र में प्रवेश करने के पूर्व की रचनाएँ और उनके नेतृत्व काल की रचनाएँ। दोनों ही इस गीति-संग्रह में संकलित हैं। अतएव उसमें राष्ट्रीय जागरण, मातृभूमि प्रेम, सामाजिक ह्यस के प्रति क्षोभ, उत्थान के लिए प्रार्थना, पर्वों और त्यौहारों का माहात्म्य-दर्शन, अतीतकालीन उत्कर्ष के प्रतिपूजा भाव तथा हिन्दी भाषा के द्वारा राष्ट्रोन्नयन की धारणा के साथ-साथ स्वतंत्रता-संग्राम का उत्साह, राष्ट्रीयता का उल्लास, विदेशी शासन के प्रति आक्रोश, असहयोग आन्दोलन का प्रशस्ति गान, प्रवासी भारतीयों के प्रति संवेदना, पूर्व और पश्चिम की संस्कृतियों के पारस्परिक संघात से उत्पन्न नवयुग का स्वागत, साम्प्रदायिक ऐक्य का आग्रह, हरिजनोद्धार का उच्चार ध्वज-वंदना तथा स्वातंत्र्य युद्ध में नारी का आह्वान अभिव्यक्ति पाते हैं।²³ संक्षेप में राष्ट्रीय जागृति और स्वातंत्र्य चेष्टा दोनों की स्वदेश संगीत में गीति व्यंजना हुई है। वस्तुतः स्वदेश-संगीत भी भारत-भारती की कोटि में आता है। भारतवासियों को जागरण का संदेश देना ही इसका उद्देश्य है।

हिन्दू-

भारत-भारती के तौर पर लिखा हुआ एक जातीय काव्य है हिन्दू इसका सर्वप्रथम प्रकाशन सन् 1927 में हुआ था। यह जागरण का काव्य न होकर आग्रह और अनुरोध का काव्य है। इसमें केवल आधुनिक युग लक्ष्य करके सामाजिक, धार्मिक तथा जातीय विषयों पर कवितायें लिखी गई हैं और सामाजिक जड़ता, व्यक्तिगत निश्चेष्टता, धार्मिक असहिष्णुता, जातीय अनुदारता आदि को दूर करने का प्रयत्न किया गया है। जातीय सम्मिलन को इष्ट मानकर कवि अंग्रेजों, पारसियों, ईसाइयों आदि को भी संबोधित करता है तथा पर्वों और त्यौहारों तथा देवी देवताओं के विषय में भी अपना मंतव्य व्यक्त करता है। भारत-भारती नवोत्थित राष्ट्र की ओजमयी वाणी है। हिन्दू जातीय जागृति का नीतिवादी काव्य है। भारत-भारती में नव-निर्माण की बलवती आकांक्षा है। और हिन्दू में जातीय सुरक्षा की हितैषिता तथा सामाजिक शांति व्यवस्था की राष्ट्रवादी चिंता।²⁴

शक्ति-

शक्ति दुर्गासप्तशती के आधार पर चौसठ षट्पदियों में लिखा हुआ खण्डकाव्य है। इसका प्रथम प्रकाशन सन् 1927 में हुआ था। संघे शक्ति के सिद्धान्त की स्थापना

ही इसमें हुई है। दैत्यों के आतंक पीड़ित देवतागण विष्णु की शरण में जाते हैं। विष्णु उनकी मदद करने में असमर्थ निकले। तब सभी देवों के सम्मिलित तेज से मातृभूमि का जन्म होता है। उसके द्वारा महिषासुर का मर्दन होता है। शुभ-निशुभ और उनके परिकरों के साथ भी शक्ति का युद्ध हुआ। देवी ने उन पर विजय पाई। इस प्रकार देव-गण आततायियों से छुटकारा पा सकें और उन्हें स्थायी शांति उपलब्ध हुई।

इस लघु खंड काव्य में वीर रस का परिपाक हुआ है और कवि ने युद्ध-वर्णन को प्रमुखता दी है। यत्र-तत्र संवादों तथा नाटकीय प्रसंगों के द्वारा वर्णनात्मक वस्तु-शिल्प को चमत्कारपूर्ण बनाया गया है।²⁵

सैरन्ध्री-

'सैरन्ध्री का सर्वप्रथम प्रकाशन सन् 1927 में हुआ था। महाभारत में वर्णित सैरन्ध्री और कीचक के कथानक को लेकर गुप्त जी ने इसकी रचना की है। यह नायिकाप्रधान काव्य है।

पांडव अज्ञातवासकाल में विराट् राजा के यहाँ छद्म वेश में रहते हैं। द्रौपदी सैरन्ध्री के रूप में रानी सुदेष्णा की सेवा करती है। इन दिनों में विराट राजा के साले कीचक की दृष्टि सैरन्ध्री पर पड़ती है। वह इच्छा-पूर्ति के लिए बहन की सहायता मांगता है। पहले वह एतराज करती है, आखिर विवश होकर भीम-गज-युद्ध का चित्र सैरन्ध्री के द्वारा कीचक के पास भेजती है। कीचक ने अपना प्रेम-प्रस्ताव रखते हुए उसे पकड़ना चाहा। सैरन्ध्री हाथ छुड़ाकर विराट-सभा में पहुँचती है। कीचक वहाँ भी पहुँचकर उस पर प्रहार करता है आखिर सैरन्ध्री रात को भीम से मिलकर कीचक को उचित रूप में मजा चखाने की योजना बना लेती है। दूसरे दिन भी कीचक मिला तो सैरन्ध्री ने उसे रात को अपने शयनकक्ष में आने का निमंत्रण दिया। निश्चित समय पर भीम ही उससे मिला और उसने कीचक का काम तमाम किया।²⁶

साहित्यकार गुप्त जी ने छोटे कथानक को लेकर अत्यन्त सुन्दर ढंग से सैरन्ध्री का चित्रण किया है। सैरन्ध्री के पात्रों के चरित्र चित्रण में गुप्त जी सफल हुए हैं। सुदेष्णा का अंतर्द्वन्द्व काव्य को सजीव बनाता है। मूलतः स्त्री चरित्र के महत्त्व की घोषणा गुप्त जी ने इसके द्वारा की है।

रस की दृष्टि से इसमें करुण की प्रधानता है। एक दो स्थानों पर रौद्र का पुट भी मिलता है। पूर्ववर्ती काव्यों की अपेक्षा सैरन्ध्री में गुप्त जी की शैली निखर उठी है, भाषा परिमार्जित है, और उपदेशात्मक सूक्तियाँ यत्र-तत्र मिलती हैं²⁷

वनवैभव-

इसका आधार महाभारत का एक छोटा-सा कथानक है। 'जैसी करनी वैसी भरनी' वाली कहावत की सार्थकता इस कथा से होती है। इसका प्रथम प्रकाशन सन् 1927 में हुआ था।²⁸

एक समय जब पांडव वनवास भोग रहे थे, तब दुर्योधन अपने राजकीय ठाटबाट के साथ उन्हें चिढ़ाने के लिए, 'जले पर नमक छिड़कने' के उद्देश्य से, मृगया का बहाना बनाकर वनयात्रा करता है। परामर्शदाता शकुनि और मित्र कर्ण उसके साथ जाते हैं। कौरवों के वन-प्रवेश का आतंककारी रूप चित्रित किया गया है। पूर्वार्द्ध में पांडवों के वनवासी जीवन का विवरण दिया गया है वे धर्म-निष्ठ, शांत और उद्योगी हैं। उनका जीवन सर्वथा सात्विक और सरल है।

इसके उत्तरार्द्ध में कौरवों के वन-विहार का वर्णन किया गया है। वे सुखद चाँदनी रात में गंधर्वों के जलाशय में क्रीड़ा करने लगे। रोकने पर भी जब वे न रुके तब गंधर्वराज चित्ररथ से उनका युद्ध हुआ। चित्ररथ और दुर्योधन ने एक दूसरे पर वाक् प्रहार भी किए। अंत में दुर्योधन पराजित हुआ और बंदी बनाया गया। इसकी सूचना पांडवों के पास पहुँची तो युधिष्ठिर ने अर्जुन को उनके रक्षार्थ के लिए भेजा। अर्जुन ने चित्ररथ को युद्ध में हराकर दुर्योधन को छुड़ाया और सबको साथ लेकर धर्मराज के सामने प्रस्तुत हुआ। युधिष्ठिर की भेट में दुर्योधन लज्जित हो गया। उसका सारा अभिमान चूर-चूर हो गया।²⁹

इस काव्य में करुणा की भावना सर्वोपरि है। अतएव यह वीर रस का काव्य नहीं है। इसमें मुख्यतः शांत रस की व्यंजना ही की गई है। कवि ने कोमल भावों को प्रमुखता दी है और उन्हें मुख्य भाव-धारा का सहयोगी बनाया है। इस काव्य में राजनीतिक दृष्टिकोण भी प्रकट हुआ है। भाई-भाई में शत्रुता होते हुए भी यदि कोई दूसरी शक्ति आक्रमण करे तो पारस्परिक बैर-भाव को भूलकर उन्हें एक हो जाना चाहिए। यह प्रासंगिक कथन है और कवि की राष्ट्रवादी मनोवृत्ति का उद्गार भी है।

वकसंहार-

इसका सर्वप्रथम प्रकाशन सन् 1927 में हुआ था। महाभारत के प्रसिद्ध कथानक को लेकर उसमें उपयुक्त परिवर्तन एवं परिवर्धन करके गुप्त जी ने इसकी रचना की है। इसमें भी नारी चरित्र की महत्ता घोषित की गई है।³⁰

पांडव लाक्षा-भवन से किसी प्रकार बच निकले और एकचक्रा नगरी में एक ब्राह्मण परिवार के अतिथि हुए। उस नगर का एक व्यक्ति प्रतिदिन राजाज्ञा से वाकासुर का भक्ष्य बनाकर भेजा जाता था। इस प्रकार राज्य व्यवस्था चल रही थी, पर वह ब्राह्मण परिवार अतिशय धर्म-निष्ठ था और संतोषमय जीवन व्यतीत कर रहा था। एक दिन उस ब्राह्मण-परिवार की बारी आई। उन्हें अपने एक स्वजन को वक का भक्ष्य बनाकर भेजना था। पूरा परिवार शोक संवत्त हो उठा। उनके सम्मुख यह समस्या उपस्थित हुई कि किसकी बलि दी जाये? उनका दुःख देखकर कुंती ने अपने पुत्रों में से किसी को भेजने का वचन दिया। बहुत वाद-विवाद के बाद भीम को भेजने की बात पक्की की गई, भीम द्वारा वकासुर का वध किया जाता है। इसी कथानक को कवि ने कल्पना के ढांचे में ढालकर सुन्दर रूप प्रस्तुत किया है।³¹

काव्य में करुण रस की प्रमुखता है परन्तु प्रासंगिक रूप में वात्सल्य, प्रेम, उत्साह आदि भावों की भी व्यंजना हुई है। शैली की दृष्टि से इस काव्य का ऊँचा स्थान है। संवाद सजीव एवं आकर्षक है। भाषा कांतिमयी तथा प्रांजल है। गुप्त जी के चरित्र प्रधान खंडकाव्यों में इसका ऊँचा स्थान है।

विकट भट-

यह श्री मैथिलीशरण गुप्त जी का सर्वप्रथम अतुकान्त काव्य है। यह आख्यानक निबन्ध काव्य के अन्तर्गत रखा जा सकता है इसका प्रकाशन सन् 1928 में हुआ था। इसका कथानक जोधपुर के इतिहास से सम्बन्धित है। आन पर जान देने वाले वीर राजपुत्रों के दर्पपूर्ण कार्यों का वर्णन इसमें हुआ है।³²

एक दिन जोधपुर का राजा विजय सिंह पोकरण के सामन्त देवीसिंह से पूछता है कि उसके रूठने पर क्या होगा। अनेक बार पूछने पर वह कह बैठा कि 'नवकोटि मारवाड़' को वह उलट दे और जोधपुर की बात ही नहीं क्योंकि वह उसकी कटार की पर्वली पर पड़ा रहता है। इस उत्तर के फलस्वरूप देवीसिंह को दूसरे दिन जान से हाथ धोना पड़ा। पोकरण के आक्रमण में उसका पुत्र सबलसिंह भी मारा गया। इसके बारह वर्ष बाद सवाई सिंह, जो देवीसिंह का पौत्र था, पोकरण का सामन्त बना। वह जोधपुर बुलाया गया। विधवा माता ने उसे वीरोचित शिक्षा दे रखी थी उस वीर बालक ने सभागृह में विजय सिंह की बातों का निडर होकर अपने कुल-गौरव के अनुरूप उत्तर दिया। राजा ने उसे अपना सामन्त बनाया।³³

गुरूकुल-

गुरूकुल का सर्वप्रथम प्रकाशन सन् 1928 में हुआ था। सिख-गुरूओं के जीवन चरित्र एवं उनके वीरतापूर्ण कृत्यों का वर्णन इस काव्य में हुआ है।³⁴

“गुरूकुल में महाकाव्य होने की प्रबन्धात्मकता नहीं है। चारित्रिक विविधताओं से खंडकाव्य के अंतर्गत रखा भी नहीं जा सकता। “लेखक ने तवारीख न लिखकर गुरूओं का इतिवृत्त लिखने का प्रयत्न किया है”।³⁵ अतः यह इतिहास भी नहीं हो सकता। डॉ० कमलाकान्त पाठक के अनुसार “इस रचना का वस्तु विधान सुगठित अवश्य है, पर वह कथावस्तु के प्रकृष्ट अनुबन्ध का उदाहरण नहीं है। अतएव वृहत् निबन्ध-रचना है जो अनेक अनुच्छेदों में विभाजित है।”³⁶

गुरू नानक से लेकर वर्तमान समय तक के गुरूओं का वर्णन गुरूकुल में हुआ है। गुरूओं की वीरता, उनके उत्कृष्ट मानवीय गुण, उनके चारित्र्य की विशेषता आदि इसके प्रतिपाद्य हैं। आनुषंगिक रूप में शक्ति एवं घटनाओं का उल्लेख भी इसमें हुआ है। गुरूकुल काव्य-गुणों से युक्त काव्य नहीं है। इसका कारण उसके प्रणयन में अंतःप्रेरणा का न होना है। वीरता एवं कारुणिक प्रसंगों के रहते हुए भी रस क्षीण ही होते हैं। शिल्प की दृष्टि से गुरूकुल का स्थान गुप्त जी के काव्यों में निम्न कोटि का नहीं है। काव्य में यत्र-तत्र सुंदर चित्रांकन, अप्रस्तुत विधन मार्मिक एवं सूक्ष्म वर्णन आदि मिलते हैं। भाषा परिमार्जित खड़ी-बोली है। संक्षेप में गुरूकुल में सर्वधर्म मंत्री का परिचय दिया गया है।

झंकार-

झंकार का सर्वप्रथम प्रकाशन सन् 1929 में हुआ था। सामयिकता के प्रभाव से प्रेरणा पाकर गुप्त जी ने इसके गीतों की रचना की थी। इसके गीत आत्मपरक और आध्यात्मिक हैं। सन् 1929 तक हिन्दी में छायावादी और रहस्यवादी गीतों की भरमार हो गई थी। उसके प्रभाव से बचकर रहना समय से पिछड़ना था।

झंकार में संगृहीत गीतों में अधिकांश भक्ति परक हैं जो कवि का प्रिय विषय है। प्रगीत विषयगत न होकर विषयीगत भी है। वास्तव में गुप्त जी सूक्ष्म भाव संवेदनों के सौन्दर्य की व्यंजना नहीं करते। परिस्थितियों के बीच हृदय सौन्दर्य का उद्घाटन करते हैं। उन्हें असुन्दर के प्रतिविरक्ति भी जगानी पड़ी है।³⁷

झंकार का महत्त्व दो प्रकार से है- (1) छायावादी काव्य-धारा के आरंभिक विकास में झंकार की प्रगीतियों का अविस्मरणीय स्थान है।

(2) गुप्त जी के काव्य विकास में प्रगीत-शैली के कारण अभिव्यक्ति का वैविध्य उत्पन्न हुआ तथा वस्तु शिल्प में स्वानुभूति व्यंजना की प्रत्यक्ष पद्धति व्यवहृत हुई।³⁸

संक्षेप में युग-चिंतन एवं शैली के प्रतिनिधित्व की दृष्टि से कवि का प्रयास सफल है, किन्तु कवि के व्यक्तित्व से असंपृक्त होने के कारण यह संग्रह कवि की अन्य कृतियों के समान लोक-प्रिय न हो सका।

साकेत-

आधुनिक युग के श्रेष्ठतम महाकाव्यों में परिगणित साकेत मैथिलीशरण गुप्त की अमर कृति है। पूर्णरूप में साकेत का सर्वप्रथम प्रकाशन सन् 1932 में हुआ था। किन्तु इसके पाँच सर्गों की रचना सन् 1914 और 1918 के बीच में करके 'सरस्वती' में प्रकाशित कर चुके थे। 'साकेत' की रचना के सम्बन्ध में यह एक सर्वविदित बात है कि श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने 'काव्ये उपाक्षिता' नाम पर एक लेख लिखा था। इसमें सहृदयों का ध्यान काव्य जगत से उपेक्षित कुछ पात्रों के प्रति आकृष्ट किया था। इसके आधार पर आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'कवियों की उर्मिला-विषयक उदासीनता' नामक एक लेख लिखा। उनके प्रिय शिष्य श्री मैथिलीशरण गुप्त जी ने उस लेख से प्रेरणा पाकर साकेत का प्रणयन किया।³⁹

'साकेत' द्वादश सर्गों का एक महाकाव्य है जिसमें महाकाव्य के बहुत से लक्षणों की पूर्ति हुई है। साथ ही साथ गुप्त जी ने अपनी मौलिक उद्भावनाओं से भी काम लिया है। नारी की महत्ता, पारिवारिक सम्बन्ध, राजा-प्रजा का सम्बन्ध, देश-भक्ति, कला, उपयोगितावाद आदि पर व्याख्यान भी इसमें हुआ है।

साकेत के भावपक्ष और कला-पक्ष भी अत्यन्त पुष्ट है। भावपक्ष की दृष्टि से शृंगार अंगी रूप में और अन्य रस अंग रूप में आये हैं। शृंगार के दोनो पक्षों -संयोग और वियोग का भी सूक्ष्म वर्णन किया गया है। साकेत में प्रयुक्त भाषा प्रौढ़ भावनुकूल एवं प्रांजल खड़ी बोली है।

“सब मिलाकर साकेत गुप्त जी की काव्य साधना का केतु है। जो युग एवं भारतीय जीवन का प्रतिनिधि ग्रन्थ है।”⁴⁰

यशोधरा-

साकेत की उर्मिला देवी का कवि के प्रति कृपापूर्ण संकेत और भाई सियारामशरण गुप्त के अनुरोध के फलस्वरूप मैथिलीशरण गुप्त जी ने 'यशोधरा' का प्रणयन सन्

1932 में किया। कवि के शब्दों में यशोधरा कविता, गीत, नाटक, गद्य, -पद्य और तुकान्त अतुकान्त सब कुछ है।¹¹

यशोधरा की कथावस्तु इतिहास प्रसिद्ध सिद्धार्थ के महानिष्क्रमण से सम्बंधित है। सोती गोपा एवं सद्यः जात शिशु को आधी रात के अवसर पर अकेले छोड़कर महल से निकल कर सिद्धार्थ का भागना और बुद्ध बनकर वापस आना कथा का ऐतिहासिक अंश है। बाकी उपालम्भ आदि कवि की कान्त कल्पना का परिचायक है।

इस काव्य के पात्र हैं यशोधरा, राहुल, गौतम, शुद्धोदन महाप्रजावती, नन्द, छन्दक, गंगा, गौतमी, चित्रा और विचित्रा । यशोधरा राहुल, गौतम के अतिरिक्त अन्य सभी पात्र औपचारिक हैं और उनका कोई चरित्र नहीं है।

यशोधरा का रचनाकाल छायावादी युग होने के कारण रचना-शिल्प पर उसका प्रभाव पड़ा है। संवाद -शैली यशोधरा की सबसे बड़ी विशेषता है। यशोधरा और राहुल के संवाद से ही कथा का विकास होता है, साथ-साथ कथा का प्राण तत्त्व भी वही है।

यशोधरा की भाषा शुद्ध और मसृणा खड़ी बोली है जो गीतिकाव्य के उपयुक्त कांतकोमल भी है। संक्षेप में भारतीय नारी जीवन के त्याग और सहिष्णुता की इतनी करुण व्यंजना कही नहीं देखी जा सकती। यशोधरा निःसन्देश भारतीय नारीत्व का प्रीतिक है।

द्वापर-

‘द्वापर’ का सर्वप्रथम प्रकाशन सन् 1936 में हुआ था। द्वापर की रचना के पूर्व तक कवि पुराणों में महाभारत और रामायण से कथानक लेकर काव्य-सृष्टि करता रहा तो द्वापर में भागवत को अपना काव्य-विषय बनाते नज़र आता है। गुप्त जी ने श्रीमद् भागवत के कथानक में समुचित परिवर्तन और परिवर्द्धन के साथ मौलिक उद्भावनाएँ करके द्वापर का प्रणयन किया है द्वापर गुप्त जी की काव्य-साधना में एक नये मोड़ का परिचायक है। जिसमें नारी सम्बन्धी गुप्त जी की भावना स्पष्ट होती है। द्वापर सोलह खंडों का एक काव्य है। प्रत्येक खंड में एक-एक पात्र का भावोच्छ्वास प्रकट किया गया है। भाव की तीव्रता एवं आत्मभिव्यक्ति की मार्मिकता के कारण गीति काव्य की सी अनुभूति इसमें आई है।⁴² डॉ० कमलाकान्त पाठक के अनुसार - ‘द्वापर’ प्रगीति काव्य ही नहीं बल्कि श्रेष्ठ प्रगीत काव्य है।’⁴³

सिद्धराज-

सिद्धराज का प्रकाशन सन् 1936 में हुआ था। कवि ने पाँच सर्गों में सिद्धराज जयसिंह के जीवनाख्यान का वर्णन किया है। पर यह उसके सम्पूर्ण जीवन का आख्यान नहीं है। उसके राजत्व-काल की कतिपय प्रमुख घटनाओं के आधार पर, जो ऐतिहासिक हैं, कवि ने कथात्मक पद्धति से जयसिंह का चरित्र विकसित किया है। अतएव यह चरित्र-प्रधान वर्णनात्मक खंडकाव्य है।

जयसिंह बारहवीं शताब्दी में पाटन राज्य का अधिपति हुआ था। इस काव्य में प्रधानतः उसके क्षात्ररूप या शूर वीरत्व का प्रदर्शन हुआ है। उसके उच्च व्यक्तित्व की दुर्बलता प्रकट की गई है। और तत्कालीन भारत की राजनीतिक परिस्थिति का चित्रण हुआ है। युद्ध-वीरत्व, धार्मिक उदारता, आदर्श राज्य व्यवस्था, प्रजा की सौख्य-समृद्धि, मातृभूमि-प्रेम, आदि को उसी के माध्यम से प्रकट किया गया है।⁴⁴

मंगल-घट-

मंगल-घट का प्रथम प्रकाशन सन् 1937 में हुआ था। मंगल-घट 62 कविताओं का एक संग्रह है। इनमें निवेदन, मातृभूमि, स्वर्ग सहोदर, मेरा देश, स्वप्नोत्थित, कर्तव्य, भाषा का संदेश, भारतवर्ष, बाजीप्रभु देश पांडे, न्यायादर्श, निन्यानवे का फेर, संसार और आर्य भार्या- ये तेरह कविताएँ पद्य-प्रबन्ध एवं स्वदेश-संगीत में भी दी गई हैं। 'प्रणाम' झंकार में भी मिलता है। 'महाराणा पृथ्वीराज का पत्र' पत्रावली में और 'नकली किला' रंग में भंग में संगृहीत है।⁴⁵

विभिन्न समय की रचना होने के कारण मंगल-घट में विषय विविधता के साथ रस वैविध्य भी मिलता है। रचना-शिल्प की दृष्टि से सभी रचनाएँ एक-सी नहीं हैं। आख्यानक लघु निबन्धों में वर्णनात्मक शैली अत्यन्त रोचक बन पड़ी है। 'मंगल-घट' पद्य प्रबन्ध का विकसित रूप कहा जा सकता है।

मंगल-घट की रचनाओं में प्रयुक्त भाषा का अंतर भी दृष्टिगोचर है। रचना के समय का अंतर ही इसका कारण है। कवि के विविध समय की भावना की प्रतिनिधि रचनाओं के संकलन होने के कारण मंगल-घट का अपना ऐतिहासिक महत्त्व भी है।⁴⁶

नहुषः

इस काव्य का सर्वप्रथम प्रकाशन सन् 1940 में हुआ था। कवि ने इसमें मानव के दानव न होकर देव बनने की गाथा गाई है।

नहुष की कथा महाभारत के उद्योगपर्व में वर्णित है। इस काव्य का सात अंशों में विभाजन किया गया है। इसके प्रमुख पात्र हैं। नहुष और इन्द्राणी, बाकी नारद, उर्वशी, वरुण और कुबेर अप्रधान पात्र हैं। नहुष का चरित्र अत्यन्त उज्ज्वल है। वह कर्मठ एवं पुरुषार्थी है। अपने पतन में भी उत्थान की उत्कृष्ट अभिलाषा उसके चरित्र की विशेषता है-

उठना मुझे ही नहीं एक मात्र रीते हाथ
मेरे देवता भी और ऊँचे उठें मेरे साथ।⁴⁷

नहुष एक मानवतावादी चरित्र-प्रधान खंडकाव्य है, जिसमें कवि ने नारी का सतीत्व, पुरुष की उत्थान-चेष्टा और अपनी देशभक्ति भावना को अभिव्यक्त किया है।

कुणाल-गीत-

इसका सर्वप्रथम प्रकाशन 1942 में हुआ था। गीतिकाव्य होते हुए भी हृदयपक्ष की अपेक्षा बुद्धिपक्ष ही इसमें प्रबल है। यह गुप्त जी के जीवन दर्शन को भी व्यंजित करता है।

‘कुणाल-गीत’ की कथावस्तु इतिहास प्रसिद्ध है। इसकी कथा इस प्रकार से है की-अशोक अपने बलिष्ठ एवं बुद्धिसम्पन्न पुत्र कुणाल को सीमा प्रांत के एक-विद्रोह दमन के लिए भेजते हैं। उनकी पत्नी कांचनमाला को भी साथ ले जाने की अनुमति देते हैं ताकि कश्मीर का भी वह दर्शन कर सके। इन दिनों में कुणाल की सौतेली माँ राजमुद्र से अंकित एक आदेश-पत्र सीमा प्रांत के अधिकारी के नाम भेजती है कि कुणाल को अंधा करके निष्कासित करें। अधिकारी ने राजाज्ञा का पालन किया। अंधा कुणाल अपनी पत्नी समेत भिक्षाटन करते, गाते-फिरते एक दिन पाटलिपुत्र पहुँचा रात के वक्त उसके गीत की आवाज़ अशोक के कानों में पड़ी। वह प्रासाद से उतरकर पुत्र से मिला और पिता के पुण्य से पुत्र को दृष्टि लाभ हुआ।⁴⁸

कुणाल-गीत में विश्व-बन्धुत्व की व्यापक भावना, सांस्कृतिक वैशिष्ट्य-समन्वित चरित, चरित्रोत्कर्ष और बुद्ध के करुणावाद की त्रिवेणी प्रवाहित हुई है। कुल मिलाकर इसमें 75 गीत हैं। उनमें अधिकांश कांचन माला को लक्ष्य करके गाये गये हैं। अंधकारपूर्ण जीवन में जीवनसंगिनी कांचनमाला ही उसका एकमात्र आश्रय था। कुणाल के उज्ज्वल पुरुषत्व एवं कांचनमाला के अंचल नारीत्व का चित्रण कवि ने उचित रंगों से किया है।

अर्जन और विसर्जन-

‘अर्जन और विसर्जन’ दो आख्यानक लघु निबन्धों का संग्रह है। इसका प्रथम प्रकाशन सन् 1942 में हुआ था। ‘अर्जन’ में सीरिया के सातवीं शताब्दी के तथा ‘विसर्जन’ में उत्तरी अफ्रीका के आठवीं शताब्दी के इतिहास की घटनाओं का आख्यान किया गया है।

‘अर्जन’ शीषर्क आख्यानक-रचना में सीरिया की राजधानी दमिश्क पर अरबों के आक्रमण का वर्णन हुआ है। इस्लाम-प्रचार का विवरण देते हुए कवि ने धर्म-परिवर्तन की घटना को प्रेम-कथा के साथ ग्रंथित कर दिया है। नायिका इउडोसिया धर्म-निष्ठ, देशभक्त तथा अनन्य प्रेममयी है और अपने प्रेमी के विधर्मी तथा देश-द्रोही हो जाने पर वह वह प्राण-त्याग करके अपने आदर्श की रक्षा करती है। गुप्त जी ने धर्म-भावना और प्रेम-भावना का द्वन्द्व चित्रित किया है तथा त्याग का महत्त्व और अर्जन का विद्रूप दिखाया है।

‘विसर्जन’ रचना में अरबों का उत्तरी अफ्रीका पर आक्रमण निरूपित हुआ है। अरबों की हार हुई, पर मूर-रानी काहिना प्रसन्न न हो सकी। उसके आदेश से ट्रेंजियर से ट्रिपली तक का देश मरू-श्मशान बना दिया गया, क्योंकि घर-फूँक नीति अपनाने के कारण अरबों के आक्रमण का भय न रहा। स्वतंत्रता का अर्जन करने के लिए मूरों ने अपनी सभ्यता तक को नष्ट कर दिया।⁴⁹

सन् 42 के भारतीय स्वतंत्रता के ‘भारत छोड़ो’ आन्दोलन की पृष्ठभूमि में लिखी गई यह कृति इस उद्देश्य को व्यंजित करती है। कि स्वतंत्रता का अर्जन करने के लिए बड़ा से बड़ा त्याग श्रेयस्कर भी है।

काबा और कर्बला-

काबा और कर्बला का सन् 1942 में प्रथम प्रकाशन हुआ था। काबा और कर्बला का कर्बलांश एक खंडकाव्य है। जिसमें मुहम्मद साहब के नाती इमांमहुसैन की आत्माहुति की गाथा गाई है। काबा अंश में इकतीस स्फूट कविताएँ संगृहीत की गई हैं। वे प्रधानतया मुहम्मद साहब के जीवन सम्बन्धी कुछ मुख्य घटनाओं और उपदेशों से सम्बद्ध हैं। किन्तु अन्य इस्लाम धर्मावलम्बियों का गुण भी उनमें निरूपित किया है। इसके प्रणयन का उद्देश्य गुप्त जी ने आवेदन में कहा है। कि “देश में आंतरिक सुख-शान्ति के लिए हमको हिल-मिलकर ही रहना होगा.... हमें एक-दूसरे के प्रति उदार और सहिष्णु होना होगा, एक-दूसरे से परिचय और प्रेम बढ़ाना होगा।”⁵⁰

इमांमहुसैन के प्रति गुप्त जी का बड़ा आदर और उनके बलिदान के प्रति बड़ी सहानुभूति है। गुप्त जी के ही शब्दों में ‘बहुत से शत्रुओं के संहार की अपेक्षा उनकी वीरता उनके बलिदान में ही अपनी विशेषता रखती है। इस प्रकार उनकी करुणा अधीर रोने में नहीं गंभीर होने में ही अपना महत्त्व प्रकट करती है।’⁵¹ इससे हुसैन के चरित्र की महानता स्पष्ट है।

‘काबा और कर्बला’ में रस प्रायः क्षीण है। इसका कारण बौद्धिकता है। कर्बला में वात्सल्य, उत्साह, त्याग आदि से परिपुष्ट शोक भावना की व्यंजना हुई है। भाषा पूर्वकृतियों के समान ही है। बीच-बीच में उर्दू शब्दों का अनिवार्य प्रयोग हुआ है। संवाद भी पात्रानुकूल है।

विश्व-वेदना-

वैतालिक की रचना के पश्चात् और प्रथम महायुद्ध की समाप्ति होने पर कवि ने ‘विश्व-वेदना’ की रचना आरंभ की थी, पर उस समय थोड़ा ही अंश लिखा जा सका था। बीस वर्ष के पश्चात् सन् 1939 में विश्व-युद्ध छिड़ जाने की आशंका के कारण इसकी रचना में वह पुनः प्रवृत्त हुआ। सन् 1943 में यह रचना संपूर्ण हुई और प्रकाशित भी। वैतालिक जागरण-गीति है और विश्व वेदना युद्ध विरोधिनी सांस्कृतिक गीति है। दूसरे महायुद्ध के महानाश को, जो सारे विश्व के लिए वेदनाजन्य था, कवि ने इसमें वाणी दी है।⁵²

अजित-

अपने कारावास जीवन की स्मृति के रूप में मैथिलीशरण गुप्त जी ने कारावास नाम से प्रस्तुत रचना का प्रणयन शुरू किया था परन्तु अजित नाम से सन् 1946 में यह प्रकाशित हुआ। यह आत्मकथानक शैली पर लिखा गया सामयिक जीवन से सम्बन्ध एक वर्णनात्मक खण्डकाव्य है। इसमें वर्णित घटनायें सच्ची हैं। देशकाल और पात्र ही विभिन्न हैं।⁵³ कवि का यह अपना कथन है। इसमें कवि ने जेल-जीवन का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है। साथ ही साथ ग्रामीण जीवन और उनकी विविध समस्याएँ सामाजिक और राजनैतिक दृष्टि से दण्डित व्यक्तियों के सुन्दर चित्र आदि भी मिलते हैं। अनुभवहीन एक युवक का भारत स्वतंत्रता के मोह में आतंकवादी और क्रान्तिकारी बनना आखिर उसकी अनुपादेयता के अनुभव से अहिंसा के सिद्धान्त को अपनाकर लक्ष्य के लिए काम करना इसका मुख्य विषय है। इस दृष्टि से इसका विषय राजनैतिक है। अजित का सन्देश अहिंसा के महत्व की घोषणा है। साथ-साथ जेल-जीवन अपराधियों के सुधार के लिए अनुपयुक्त होने की सूचना भी है।

प्रदक्षिणा-

इसका प्रथम प्रकाशन सन् 1950 में हुआ था। 'प्रदक्षिणा' एक आख्यानक निबंध-काव्य है, जिसमें सम्पूर्ण रामचरित का आख्यान एक सौ छब्बीस पद्यों में किया गया है।

'प्रदक्षिणा' आख्यान-काव्य में गुप्त जी ने राम-कथा का संक्षेप करते हुए उसके सारांश का वर्णन किया है। इसीकारण यह खण्ड काव्य नहीं है। उन्होंने 'मानस' के कथा-क्रम को अपनाया है तथा 'साकेत' के रामाख्यान का घटनात्मक विवरण प्रस्तुत किया है।

गुप्त जी ने मंगलाचरण में राम के साथ-साथ लक्ष्मण की भी वंदना की है। राम का अवतरण धर्म की रक्षा के लिए हुआ था और उन्होंने आर्य-संस्कृति को विकसित किया था। इसी प्रकार सीता हरण के प्रसंग की नियोजना ने राम, सीता और लक्ष्मण के हृद्देश में झाँकने का कवि को अवसर मिला है। राम-रावण-युद्ध के वर्णन को गुप्त जी ने विशेष रूप से आकर्षक बनाया है।

गुप्त जी राम के साथ-साथ रहे हैं। पुष्प-वाटिका-प्रसंग को भी उन्होंने छोड़ दिया है और चित्रकूट-प्रसंग का अख्यान 'मानस' के अनुसार न करके 'साकेत' के अष्टम सर्ग के अनुरूप किया है।⁵⁴

पृथिवीपुत्र-

प्रस्तुत संग्रह का प्रकाशन सन् 1950 में हुआ था। इसमें दिवोदास, जयिनी और पृथ्वीपुत्र नाम के तीन संवाद हैं, जो कथात्मक भी हैं। इनमें दिवोदास प्रतीक के पहले अंक में छपा था। जयिनी उसके भी कई वर्ष पूर्व सुधा में छपी थी। पृथ्वीपुत्र इसी वर्ष नया समाज में भी प्रकाशित हुआ है।⁵⁵ ये क्रमशः पौराणिक, ऐतिहासिक और काल्पनिक कथानक हैं।

ये तीनों अपने आप में पूर्ण और प्रौढ़ रचनाएँ हैं। दिवोदास मानवता के महत्त्व की घोषणा करता है तो जयिनी आदर्श सहधार्मिणी के कर्तव्य को प्रस्तुत करती है और पृथ्वीपुत्र में नीच-निन्दित हिंसा वृत्ति की हेयता तथा मानवतावाद की स्पृहणीय शान्ति प्रियता प्रकट है।⁵⁶

प्रस्तुत रचना गुप्त जी के महान् आदर्श की प्रतीक है, जो मानव की महत्ता घोषित करने के साथ ही साथ हिंसा का विरोध और विश्वव्यापी शान्ति एवं सुख का स्वागत करती है। इसका रचना शिल्प पुष्ट है। भाषा, भाव और अभिव्यक्ति प्रणाली सुन्दर तथा श्रेष्ठ है।

हिडिम्बा-

यह रचना भी कवि की अन्य रचनाओं की तरह प्रबल दार्शनिक दृष्टिकोण से युक्त है। इसके कथानक का आधार महाभारत है। परन्तु गुप्त जी ने अपनी मौलिक उद्भावनाओं द्वारा इसके प्रतिपादन में संस्कार व परिष्कार किया है।

लाक्षागृह से बचे हुए पाण्डवों का वन में विचरण करते वक्त भीम से हिडिम्बा का परिणय होना इसका आधार है। परन्तु गुप्तजी ने हिडिम्बा को दानवी से मानवी ही नहीं वैष्णव भक्त भी बना दिया है। कुन्ती और हिडिम्बा के संवादों में कवि ने नर-राक्षस, प्रेम-त्याग तथा नारीत्व पर प्रकाश डाला है। हिडिम्बा का चरित्र-चित्रण भी कवि ने बड़ी सहानुभूति से किया है।

इस काव्य में प्रमुखता शृंगार रस को है, जो वीर रस की पृष्ठभूमि पर खूब निखर उठा है। हिडिम्बा में कवि की चित्रांकन शैली, बिम्ब व प्रतीक योजना के भी उदाहरण मिलते हैं। भाषा ओज और माधुर्य गुणों से युक्त है। काव्य में हिडिम्बा के नारीत्व की आदर्शवादी परिणति गुप्त जी के संवेदनापूर्ण दार्शनिक दृष्टिकोण की परिचायिका है।⁵⁷

अंजलि और अर्घ्य-

इसका प्रथम प्रकाशन सन् 1950 में हुआ था। पूज्य राष्ट्रपिता के निधन पर शोक ग्रस्त कवि ने उनके प्रति अपनी हृदयांजलि एवं आत्मा का अर्घ्य ही प्रस्तुत संग्रह द्वारा प्रस्तुत किया है। बापू जी का जीवन अनेक मानव-मूल्यों का साक्षात्कार था। कवि ने उनमें अपने ही जीवन-दर्शन की अनुभूति की। उनके कार्य कलापों में अपने जीवन-लक्ष्य का साधन ढूँढा। उस लक्ष्य के एकाएक उड़ जाने से कवि का हृदय बिहल हो उठा। अंजलि और अर्घ्य में उसी का वाणी रूप प्रस्तुत किया गया है।⁵⁸ महात्मा गांधी के निधन पर कवि ने यह उक्ति लिखी थी -

“अरे राम, कैसे हम झेलें अपनी लज्जा, उसका शोक?
गया हमारे ही पापों से अपना राष्ट्र-पिता परलोक।”⁵⁹

गुप्त जी ने गांधी जी के व्यक्तित्व में आदर्श लोक-हित साधक को देखा है, उनके बहुमुखी कार्यों का नैतिक महत्त्व समझा है, उनके मानवतावादी गुणों का श्रद्धापूर्वक स्मरण किया है और उनकी क्रान्तिदर्शिता को अपनी भक्ति-भावना समर्पित की है। काव्य में रस का पूर्ण परिपाक न होकर शोक, लज्जा तथा ग्लानि की भाव-शबलता ही प्रकट हुई है।

जय भारत-

साहित्यकार गुप्त जी की काव्य-साधना की विजयित्री लालित एक विशाल काव्य कृति है जय भारत। इसका सर्वप्रथम प्रकाशन सन 1952 में हुआ था। इसका प्रणयन महाभारत के आधार पर 47 खण्डों में किया गया है। प्रत्येक खंड पात्र या प्रसंगों के नाम पर अभिहित किया गया है। जयभारत एक निश्चित समय-परिधि में न लिखा जाकर समय-समय पर लिखे खण्डों का, जिनका अलग अस्तित्व भी है, संकलन है।⁶⁰

जयभारत में धर्म का तत्त्व कवि के जीवन-दर्शक के रूप में समाहित हुआ है और वही उसका मानवतादर्श है।

मुख-पृष्ठ पर ही कवि ने युधिष्ठिर की इस उक्ति में धर्म की चरित्रोत्कर्ष-विधायिनी महत्ता का उल्लेख किया है-

जीवन-यशस्-सम्मान-धन-संतान सुख सब मर्म के,
मुझको परन्तु शतांश भी लगते नहीं निज धर्म के।⁶¹

महाभारत के सभी पात्र इसके भी पात्र हैं। भीष्म पितामह सशक्त, त्यागी और समद्रष्टा हैं, द्रोणा वीर और विद्वान् हैं, धृतराष्ट्र अन्धा और पुत्र-वत्सल हैं, कृष्ण धर्म-ज्ञाता, विवेकी महापुरुष हैं। युधिष्ठिर, साधुनिष्ठ भीम महाबली, अर्जुन अभिमानी शूर और निष्ठावान हैं, दुर्योधन कुटिल, हठी और विद्वेषी हैं, कर्ण पुरुषार्थी हैं, शकुनी छलिया और जयद्रथ लम्पट तथा कायर हैं।

स्त्री पात्रों में कुन्ती क्षत्राणी मां हैं। द्रौपदी जो जयभारत की नायिका हैं, सच्ची गृहलक्ष्मी, सहनशीला भी हैं। इस प्रकार जयभारत के पात्र अपने व्यक्तित्व से युक्त हैं।

जय भारत में प्रायः सभी रसों का परिपाक हुआ है। इसका अंगी रस वीर है। किन्तु परिसमाप्ति शान्त रस में है। अन्य रस अंगी रूप में आये हैं, विशेषकर शृंगार, करुण और रौद्र ।

युद्ध-

यह कवि श्री गुप्त जी के जय-भारत के युद्ध शीर्षक खण्ड का स्वतंत्र पुस्तकाकार प्रकाशन है। इस रूप में इसका प्रथम प्रकाशन सन् 1956 में हुआ था। इसे अख्यान काव्य के अन्तर्गत रखा जा सकता है। इसमें महाभारत का युद्ध विशद रूप में वर्णित है। युद्ध सम्बन्धी कवि का अपना दृष्टिकोण भी यथास्थान प्रकट हुआ है। इसमें महाभारत के युद्ध विषयक भीष्म, द्रोणा, कर्ण और शल्य पर्वों का अख्यान हुआ है। युद्धारंभ से लेकर दुर्योधन के गदा-युद्ध में परास्त होने तक के इतिवृत्त को युद्ध का वर्ण्य-विषय बनाया गया है। भाषा, भाव और अभिव्यक्ति में इसका महत्त्वपूर्ण स्थान है।⁶²

राजा-प्रजा-

यह साहित्यकार मैथिलीशरण गुप्त जी की एक मौलिक रचना है। इसका प्रथम प्रकाशन सन् 1956 में हुआ था। राजा और प्रजा नाम के इसके दो खण्ड हैं। दोनों ओर से कवि ने अपने ही मत प्रस्तुत किये हैं।

प्रथम खण्ड में राजा प्रजा को सम्बोधन करके प्रजातन्त्र के दोषों को समझाते हैं और उसके विरुद्ध आवाज़ उठाने से सावधान करते हैं। प्रजा खण्ड में प्रजा राजा को अपने ही में मिल जाने का परामर्श देती है। अपनी त्रुटियों से अवगत होते हुए भी वह राजतन्त्र के बदले प्रजातन्त्र को ही पसन्द करती है।

इस प्रकार कवि ने राजतन्त्र और प्रजातन्त्र के दोनों पक्षों को प्रस्तुत किया है। परन्तु कवि राजतन्त्र के समर्थक के रूप में ही प्रकट होता है।

बौद्धिक रचना होने की वजह से राजा-प्रजा का काव्य-शिल्प श्रेष्ठ नहीं हो पाया है। भाषा प्रौढ़ एवं परिमार्जित है।

विष्णुप्रिया-

इसका सर्वप्रथम प्रकाशन सन् 1957 में हुआ था। बंगाल के महाप्रभु श्री चैतन्य देव की विरहिणी नायिका की जीवन-गाथा को प्रमुखता देते हुए इसका प्रणयन हुआ है। ऊर्मिला और यशोधरा के चित्रण से सधी एवं मंजी हुई गुप्त जी की लेखनी विष्णुप्रिया में निखर उठी है।

बंगाल में जगन्नाथ और शची के पुत्र के रूप में गौर का जन्म हुआ था। शिक्षा काल में वह अतीव तेज़ निकला। यथा समय विष्णु प्रिया से गौर की सगाई हुई। द्विरागमन की बेला में गृहप्रवेश के अवसर पर ठोकर खाकर विष्णुप्रिया के पैर के अंगूठे से रक्त निकला। गौर ने अपने हाथ से उसे रोक लिया। उसके बाद उनके आनन्दपूर्ण जीवन में एक दिन गौर माता और पत्नी से 'अनुज्ञा लेकर पितृ-पिण्ड देने गया के लिए निकला। गया में देव-दर्शन के समय गौर भावावेश में अचेत हो गया। इस घटना के उपरान्त घर लौटने पर गौर भगवद्-भक्ति में अधिकाधिक डूबने लगा। अखिर माता से अनुज्ञा लेकर घर छोड़ा। गौर के पीछे महाप्रभु चैतन्य निकले। एक दिन संयासी चैतन्य घूमते-घूतते अपने गाँव पहुँचे। माता दर्शन के लिए गई। विरहिणी विष्णुप्रिया उनकी इच्छा जानकर मिलने नहीं गई। एक दिन दर्शन हुए तो चैतन्य ने उसका परिचय पूछा। विष्णुप्रिया ने मुहंतोड़ जवाब दिया। चैतन्य ने क्षमा मांगी।⁶³

अपने जीवन को सम्पूर्णतया पति के चरणों में समर्पण कर आहों को जूँत करके जीने वाली विष्णुप्रिया का चरित्र-चित्रण कवि ने अत्यन्त सुन्दर ढंग से किया है। चैतन्य भवोन्माद में लीन है तो विष्णुप्रिया सेवा-निरत है।

काव्य में करुण रस की प्रधानता है। शिल्प की दृष्टि से पूर्ववर्ती गीति-काव्यों की अपेक्षा इसका स्थान ऊँचा है। काव्य की भाषा प्रसाद और माधुर्यपूर्ण है।

निबंध-काव्य-

निबंध-काव्य उस काव्य रूप का कथनीय है, जो विषय अथवा आख्यान का वस्तु परिबंध स्वीकार करता है। पर जिसे प्रबंध -काव्य की संज्ञा नहीं दी जा सकती। यह वस्तुतः बाह्यार्थ-निरूपक काव्य है। इसमें कवि की अनुभूति अथवा दर्शन की अप्रच्छन्न व्यंजना नहीं की जाती बल्कि दृश्य-जगत के क्रिया-कलापों और उनकी प्रेरक संवेदनाओं का आख्यान किया जाता है। यहाँ कवि अपने को अप्रत्यक्ष रूप में प्रकट करता है। उसका माध्यम वस्तु अथवा व्यापार होता है। ऐसी रचनाएँ प्रकथनात्मक अथवा विवरण प्रधान होती हैं।⁶⁴

हिन्दी में प्रबन्ध और निबंध काव्य का अन्तर अब प्रायः सर्वमान्य हो गया है। श्री रामदहिन मिश्र के अनुसार प्रबन्ध काव्य में प्रबन्ध प्रकृष्टता होती है और कथावस्तु का विस्तार रहता है। महाकाव्य एकार्थ काव्य और खंडकाव्य उसी के भेद हैं। काव्य का निबंध कथनीय काव्यगत वस्तु योजना की साधारणता का द्योतक है। कथात्मक अथवा वर्णनात्मक कविता, जो कई पद्यों में लिखी जाती है, निबंध-काव्य कही जाती है। निबन्ध-काव्य को डॉ० दशरथ ओझा ने केवल वर्णनात्मक काव्य-रूप माना है, जिसमें किसी व्यक्ति, स्थान, दृश्य अथवा यात्रा का वर्णन रहता है। आचार्य वाजपेयी जी ने गुप्त जी के आरंभिक काव्य के संबंध में विवेचन करते हुए यह निर्देश किया है- “गुप्त जी की आरंभिक रचनाएँ निबंधात्मक होती थीं। उन निबंधों में कभी किसी आख्यान का माध्यम रहा करता था। और कभी बिना आख्यान के ही कोई बात कही जाती थी। इन दोनों आरंभिक काव्य-प्रकारों में निर्माण की दृष्टि से अधिक अन्तर नहीं था, थोड़ा बहुत अन्तर था तो आकार का। आख्यान कुछ लम्बे होते थे और निराख्यानक रचनाएँ कुछ छोटी होती थीं, यद्यपि इसके अपवाद भी मौजूद हैं और मिल जाते हैं।”⁶⁵

आचार्य शुक्ल ने ‘भारत-भारती’ और ‘हिन्दू’ के काव्य-रूप को कोई नाम ही नहीं दिया है, पर उन्हें प्रबन्ध-काव्य और गीति-काव्य से अलग कोटि की कृतियाँ माना है।⁶⁶

संक्षेप में, निबन्ध काव्य वह काव्य-रूप है, जो आकार में लघु अथवा वृहत् हो सकता है, जो आख्यानक अथवा निराख्यानक हो सकता है तथा रचना-पद्धति की दृष्टि से विवरणात्मक अथवा वर्णनात्मक हो सकता है। उसे गद्य-साहित्य के विषय प्रधान निबंध तथा छोटी कहानी से मिलती-जुलती पद्य रचना समझना चाहिए।

गुप्त जी के निबंध-काव्य को निम्नलिखित वर्गों में विभाजित करके प्रत्येक वर्ग की कला के विकास का पृथक् रूप से चिंतन मनन करना उपयोगी होगा, यथा-

1. आख्यानक लघु-निबंध
2. निराख्यानक लघु-निबंध।
3. आख्यानक वृहत्-निबंध।
4. संकलनात्मक निबंध-काव्य।

आख्यानक लघु-निबंध-

गुप्त जी ने आख्यानक लघु-निबंधों की रचना अपने अभ्यास काल में आरंभ की थी। 'कविता-कलाप' में संकलित उनकी चित्रों पर रची गई कविताएँ इसी श्रेणी में आती हैं। 'सरस्वती' में प्रकाशित उनकी आरंभिक आख्यानक-निबंध रचनाएँ 'पद्य-प्रबंध' और 'मंगलघट' में भी संगृहीत हुई हैं। किसी प्रसिद्ध कथा-प्रसंग के आधार पर कवि ने वर्णनात्मक पद्य-रचना की है तथा उसके द्वारा किसी न किसी नैतिक उपदेश को अभिव्यक्त किया है। 'विकट-भट' तथा 'अर्जन और विसर्जन' भी लघु आख्यानक रचनाएँ हैं।

कविता-कलाप-

गुप्त जी की अभ्यासकालिक आख्यानक रचनाएँ, जो सचित्र छपी थी और जो चित्रों पर लिखी गई थी, 'कविता-कलाप' में संगृहीत हुई हैं। ये सत्ताइस रचनाएँ हैं। इनमें से कुछ रचनाएँ पौराणिक हैं और कुछ काल्पनिक। महाभारत, रामायण, रघुवंश, आभिज्ञान शाकुंतल आदि से मुख्यतः इनके कथा-प्रसंगों का चयन किया गया है।

निराख्यानक लघु-निबंध काव्य-

गुप्त जी ने आख्यानक लघु-निबंध-काव्य की अपेक्षा निराख्यानक लघु-निबंध काव्य की रचना कम की है। यह कवि की अभ्यासकालिक काव्य पद्धति का एक प्रकार

था, जो निर्माण काल में भी थोड़ा बहुत बना रहा, पर तत्पश्चात् इसका प्रयोग नहीं हुआ। इन्हें विषय प्रधान कविताएँ समझना चाहिए, जो मुक्तक रचनाओं से भिन्न कोटि की रचनाएँ हैं। ये प्रायः 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई थी, जिनका संकलन पद्य-प्रबंध, स्वदेश-संगीत और मंगल-घट में किया गया स्वदेश-संगीत में जिन पाँच पद्य-निबंधों को रक्खा गया वे पद्य-प्रबन्ध में भी संकलित हुए हैं।⁶⁷

सामाजिक निबंध-काव्य-

गुप्त जी अपने आरम्भिक कवि जीवन में समाज के प्रायः सभी अंगों पर विषय-प्रधान कविताएँ लिखी थी। उन्होंने प्राचीन सामाजिक और सांस्कृतिक उन्नति की भूमिका पर आधुनिक भारतीय समाज की दुर्दशा के चित्र खींचे थे। यह समाज-सुधार की प्रवृत्ति का ही परिणाम था प्राचीन-भारत, ब्राह्मणों से विनय आदि उनकी इसी प्रकार की रचनाएँ हैं। ब्राह्मणों से उन्होंने निवेदन किया है कि हिन्दू समाज में अग्रगण्य होकर यदि वे कर्तव्य-पालन न करेंगे तो अतीत का समृद्ध भारत केवल स्वप्न बना रहेगा और भारत की उन्नति भी न हो सकेगी, यथा-

यदि अब भी तुम कर्तव्य न पालोगे अपना,
तो रह जावेगा पूर्वकाल निश्चय सपना।
हिन्दू-समाज के दोष तुम्हीं पर आते हैं,
सब बातों में अगुआ ही पूछे जाते हैं।⁶⁸

गुप्त जी ने सरस्वती में प्रकाशित अपनी कतिपय रचनाओं में स्त्री-शिक्षा तथा अछूतोद्धार का भी समर्थन किया है। मंगलघट की आर्य-भार्या रचना में भारतीय नारी का गौरव-गान हुआ है और स्वदेश-संगीत के मातृ-मंगल में उसका नव जागरण प्रकट किया गया है।

सांस्कृतिक विषय-

पद्य-प्रबंध में कतिपय रचनाओं के विषय सामाजिक पर्व और धार्मिक त्योहार हैं। यह समाज के सांस्कृतिक पक्ष को उद्घाटित करने का प्रयास है। रामनवमी, जन्माष्टमी, विजय-दशमी, होली, होली का हर्ष आदि उनकी इसी प्रकार की रचनाएँ हैं।

'रामनवमी' में भगवान से अवतार-ग्रहण करने के लिए प्रार्थना की गई है यथा-

प्राबल्य पापों का बड़ा है, पुण्य पंगु हुआ पड़ा ।
दुष्काल-दानव-सा अड़ा है, रोग राक्षास-सा खड़ा ।⁶⁹

‘विजय-दशमी की भी यही भाव-भूमि है, पर उसमें राष्ट्रवादी चेतना प्रमुख है और अवतार की कामना के स्थान पर कर्मण्यता की भावना प्रकट की गई है, यथा-

शक्ति दो भगवान् हमें कर्तव्य का पालन करें।
मनुज होकर हम न परवश पशु-समान जियें-मरें।⁷⁰

कवि ने सामाजिक उत्सवों को तत्त्व-पूर्ण और विज्ञान-सम्मत माना है तथा उनकी रक्षा का प्रयत्न किया है। विश्व-प्रेम, जनसेवा और रहस्यात्मक प्रवृत्ति को लेकर गुप्त जी ने धार्मिक कविताएँ भी लिखी थी, जो प्रगीतात्मक अथवा मुक्तक थी, उन्हें निबंध-काव्यों का रूप नहीं दिया गया।

देशभक्ति-

देशभक्ति की भावना से प्रेरित होकर कवि ने प्राचीन भारत, पूर्व-प्रभा आदि रचनाएँ लिखी थी, जिनमें यह व्यंजित हुआ है कि वह अतीत कालीन भारत, जो सर्वत्र सम्मानित हुआ है, कवि की श्रद्धा-भक्ति का विषय है, यथा-

जगत् ने जिसके पद थे छुए, सकल देश ऋणी जिसके हुए।
ललित लाभ कला सब थी जहाँ, वह हरे, अब भारत है कहाँ?⁷¹

इस प्रवृत्ति का विकास भारत-भारती में दिखाई पड़ा, जो स्वदेश-संगीत के राष्ट्रवाद में पुष्टता पा सका तथा व्यापक होकर सांस्कृतिक भावना के रूप में परिवर्तित हुआ।

प्रकृति-

प्रकृति-विषय रचनाएँ भी गुप्त जी ने इसी समय लिखी थी, यथा- ग्रीष्मागमन निदाघ-वर्णन, वर्षा-वर्णन, हेमंत, संध्या-वर्णन आदि। ये रचनाएँ नैतिकता का उपदेश व्यक्त करती हैं। सौंदर्य-चित्रण की ओर कवि की प्रवृत्ति नहीं हुई। ये नीरस और शुष्क समझी गयी हैं और इन्हें काव्यत्व ने रिक्त माना गया है। पर वह प्रायः मुक्तक पद्यों में दिखाई पड़ती हैं, निबंध-काव्यों में नहीं।

निराख्यानक निबंध-काव्य की रचना आख्यानक निबंधों की अपेक्षा परिणाम में कम है और वह काव्य-गुणों के सम-स्तर पर भी नहीं है। कवि की पुनरुत्थानवादी काव्य-धारा के आरंभिक प्रयासों के रूप में इन्हें महत्व दिया जा सकता है। निराख्यानक कविताएँ विषय-वैविध्य को प्रकट करती हैं और कवि की भावनाशील नैतिकता तथा

उपदेशक वृत्ति को स्पष्ट करती है। इनमें कवि की युग-चेतना, उत्थान-चेष्टा, असंकीर्ण जातीयता और देश-भक्ति की भावना अभिव्यक्त हुई है।

आख्यानक वृहत् निबंध-काव्य -गुरूकुल-

इस वर्ग के अन्तर्गत गुप्तजी की गुरूकुल रचना ही आती है। गुरूकुल में सिक्ख-गुरूओं के जीवन-चरित्र का आख्यान किया गया है और उनकी धार्मिकता, वीरता तथा मानवता के गुणों का प्रतिपादन हुआ है। इसमें विषय-प्रतिपादन की प्रधानता है। कथावस्तु के धारावाहिक वर्णनों को चरित-काव्य के रूप में ढाला गया है। अतएव उसका वस्तुशिल्प निबंधात्मक है, प्रबंधात्मक नहीं। खण्डकाव्य की सीमा में इतनी चारित्रिक विविधता स्वीकृत ही नहीं हो सकती। इन्हीं कारणों से गुरूकुल को आख्यानक वृहत् निबंध काव्य कहा गया है।⁷²

गुरूकुल में सिक्खों के इतिहास की पृष्ठभूमि पर सिक्ख-गुरूओं के त्याग और बलिदान के आख्यान का वर्णन किया गया है। कवि का लक्ष्य ऐतिहासिक क्रम के अनुसार सिक्ख-गुरूओं की परम्परा का वर्णन और उनका चारित्रिक महत्त्व स्पष्ट करना है।

निराख्यानक वृहत् निबन्ध-काव्य-

इस वर्ग में गुप्त जी की तीन रचनाएँ आती हैं, भारत-भारती, हिन्दू और राजा-प्रजा। भारत-भारती उनकी निर्माणावस्था के आरंभ में रची गई और हिन्दू की रचना निर्माणावस्था की समाप्ति के समय हुई। राजा-प्रजा की रचना हाल में ही की गई। वह प्रौढ़ोत्तर-कालिक कृति है। ये तीनों विषय-प्रधान काव्य हैं, जिनमें से प्रथम रचना पुनरुत्थान वाद तथा अविकसित राष्ट्रवाद की अभिव्यक्ति है, दूसरी रचना जातीय जीवन का काव्य है जिसमें सामाजिक शांति-व्यवस्था की स्थापना के लिए नैतिक उपदेश दिए गये हैं, तथा तीसरी रचना में मानवतावादी कवि की लोकतंत्र में निष्ठा, सर्वोदयी प्रवृत्ति और अंतर्राष्ट्रीय सह अस्तित्व की भावना प्रकट हुई है।⁷³

भारत-भारती उद्बोधन-काव्य है और हिन्दू उपदेश काव्य । राजा-प्रजा में राष्ट्र के नवनिर्माण का विनम्र आदेश व्यक्त हुआ है। प्रथम दो रचनाएँ उपदेश-निष्ठ हैं और अंतिम रचना सोदेश्य कृति है।

संकलनात्मक निबंध काव्य-

गुप्त जी की ऐसी दो रचनाएँ हैं, जो स्वरूप में निबन्धात्मक, रचना-विधान में संकलनात्मक और वर्ण्य विषय की दृष्टि से आख्यानक हैं। एक स्वतन्त्र काव्य रचना है और दूसरी का अधिकांश भाग गुप्त जी के दो अन्य काव्यों से संकलित हुआ है। पहली रचना 'काबा और कर्बला' आख्यान-काव्य का प्रथम खंड अथवा काबा- अंश है। दूसरी रचना 'प्रदक्षिणा' है, जिसका दो तिहाई अंश साकेत और पंचवटी से संकलित किया गया है और एक तिहाई अंश नई रचना है।⁷⁴

'काबा और कर्बला' क्रमबद्ध धारावाहिक रचना नहीं है, उसके स्पष्टतः दो खंड हैं। काबा और कर्बला स्थान-विशेष हैं, जिनसे सम्बद्ध घटनाओं का वर्णन किया गया है। काबा मुख्यतः नबी मुहम्मद साहब के जीवन-चरित से संबंधित रचना है और कर्बला हुसैन की बलिदान-कथा से संबंधित रचना है। काबा अंश में वर्णन-क्रम अटूट नहीं है। कवि ने इसमें अनेक छोटी-छोटी निबन्धात्मक रचनाएँ लिखी हैं, जिनका संकलित रूप 'काबा' खंड है। इसके विपरीत कर्बला खंड पूर्ण आख्यान काव्य है, अतएव 'काबा' को खंडकाव्य या प्रबन्ध-रचना नहीं माना जा सकता क्योंकि पहले खंड में कवि ने मुहम्मद साहब के चरित-विषयक तथा काबा अर्थात् इस्लाम से संबंधित घटनाओं का निबन्धात्मक और अलग-अलग वर्णन किया है। उसे विशिष्ट आख्यान रचना नहीं कह सकते, वह स्फुट निबंध-रचनाओं का संकलन है।

'प्रदक्षिणा' इससे भिन्न-प्रकार की काव्य रचना है। वह एक संपूर्ण आख्यान-काव्य है। उसमें राम के चरित्र का संक्षिप्त आख्यान या वर्णन किया गया है। वह संकलनात्मक कृति इसलिए है कि स्वतंत्र और नवीन काव्य के रूप में उसकी रचना नहीं हुई। वह कवि के अन्य काव्यों की उपजीवी रचना है और उसका थोड़ा-अंश ही नई सृष्टि है। उसका संक्षिप्त आकार जिसमें कथा का सरस-प्रवाह ही सर्वोपरि है और चरित्र चित्रण का कोई प्रयास नहीं दिखाई पड़ता, उसे निबंध काव्य की संज्ञा देते हैं।⁷⁵

निबंध-काव्यों की सृष्टि गुप्तजी का आरंभिक तथा प्रासंगिक कार्य है। वे मुख्यता कथाकार कवि हैं और प्रबंध काव्य-शिल्प उनका प्रतिनिधि कार्य। वस्तुव्यंजना,

शील-निरूपण और भावाभिव्यक्ति उनके वर्णनात्मक काव्य-शैली के मुख्य उपादान हैं। वस्तुनिष्ठ कला के निर्माता होने के कारण निबंध-काव्य उनकी काव्य-धारा में सहायक प्रवाह के रूप में सम्मिलित हुआ है।

पत्रिका-

मैथिलीशरण गुप्त जी अपने युग के सर्वाधिक लोकप्रिय कवि थे। गुप्त जी ने 1905 से 1964 तक कुल 60 वर्षों तक हिन्दी की निरन्तर सेवा की आचार्य पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी का प्रसाद और 'सरस्वती' का प्रोत्साहन पाकर गुप्त जी ने लड़खड़ाती खड़ी बोली को पद्य के क्षेत्र में खड़ा किया। वे खड़ी-बोली के महाकवियों में से हैं।

सन् 1900 से 1920 तक के काल को एक विशिष्ट साहित्यिक युग की संज्ञा दी जा सकती है। इस युग को नीतिवादी और इतिवृत्तात्मकता प्रधान कहा गया है। उसमें पौराणिकता की ओर रुझान की प्रधानता बतलाई गई है। इस युग की पत्रपत्रिकाओं के प्रत्येक अंक में हमें आधुनिक साहित्यिक चेतना के विकास के सूत्र मिलेंगे।

इस युग के पूर्व हिन्दी पत्र पत्रिकाओं की स्थिति बड़ी दयनीय थी। प्रथम तो उसके पाठक ही अत्यल्प थे, क्योंकि हिन्दी भाषा तब तक उनकी रोटी रोज़ी से नहीं जुड़ी थी। हिन्दी पढ़ने की ओर उनका झुकाव नहीं था। दूसरे, पराधीन देश की पत्र-पत्रिकाओं पर शासक वर्ग का बड़ा नियंत्रण था। तीसरे अधिकांश जनता का अशिक्षित होना भी एक कारण था।⁷⁶

इस युग के प्रमुख साप्ताहिक भारतमित्र, हिंदी बंगवासी, हितवार्ता, श्री वेंकटेश्वर समाचार, बिहार-बंधु, भारत-जीवन थे। हिन्दोस्तान एक दैनिक पत्र था, जो उस समय प्रकाशित होता था। छतीसगढ़ मित्र, सुदर्शन, बाह्यण तथा हिन्दी प्रदीप उस काल के मासिक पत्र थे। इन सब पत्रों में भारतेन्दु शैली की प्रधानता थी

बीसवीं शताब्दी की पत्रकारिता पर दृष्टिपात करते समय जो बात सबसे पहले आकर्षित करती है। वह है युग का राष्ट्रीय जागरण। इस शताब्दी में धर्म और समाज सुधार के आन्दोलन कुछ पीछे पड़ गए और जातीय चेतना ने धीरे-धीरे राष्ट्रीय चेतना का रूप ग्रहण कर लिया। फलतः अधिकांश पत्र साहित्य और राजनीति को ही लेकर चले।

इन बीस वर्षों की अवधि में लगभग बीस हिन्दी दैनिक समाचार पत्र निकले, पर इनमें अधिकतर पत्रों का जीवन बड़ा अल्प था। यथा- अभ्युदय, भारतजीवन, श्री वेंकटेश्वर समाचार, जयाजी प्रताप, आनंद आदि। आज, वर्तमान, दैनिक प्रताप भविष्य, विजय आदि तो सन् 1920 में निकले, जिनमें आज ही ऐसा पत्र है जो आज तक पूरे यश के साथ हिन्दी साहित्य जगत की सेवा कर रहा है।⁷⁷

मैथिलीशरण गुप्त जी हिन्दी की सभी प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं के साथ लेखक तथा कवि के रूप में संबंधित रहे हैं। उनका काव्यारंभ भारत-मित्र, वैश्योपकारक, राघवेन्द्र, पाटलिपुत्र, मोहिनी और सरस्वती के माध्यम से हुआ।⁷⁸

मैथिलीशरण गुप्त जी की पहली कविता 1905 ई० में कोलकत्ता से प्रकाशित मासिक वैश्योपकारक में प्रकाशित हुई थी तत्पश्चात् वे सरस्वती में आए।⁷⁹

हिन्दी साहित्यजगत् में सरस्वती का आविर्भाव इंडियन प्रेस के स्वामी श्री चिंतामणि घोष की अध्यक्षता तथा नागरी प्रचारिणी सभा, काशी के संस्थापक श्री श्यामसुंदरदास के संपादकत्व में सन् 1900 में मासिक रूप में हुआ। इसके उद्देश्य तथा विषय के संबंध में प्रारंभ में ही पत्रिका में लिखा हुआ है - इसके नवजीवन धारण करने का केवल यही मुख्य उद्देश्य है कि हिन्दी रसिकों के मनोरंजन के साथ ही साथ भाषा के सरस्वती भंडार की अंगपुष्टि, वृद्धि और यथार्थ पूर्ति हो तथा भाषा सुलेखकों की ललित लेखनी उत्साहित और उत्तेजित होकर विविध भाव भरित ग्रंथराशि को प्रसव करे।⁸⁰

संपादन और प्रकाशित सामग्री के उच्च स्तर का होते हुए भी आरंभ में सरस्वती को हिन्दीजगत् से उत्साहवर्धक समर्थन नहीं मिला। प्रकाशक को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। पर इतना होने पर भी प्रथम तीन वर्षों में ही सरस्वती ने हिन्दी संसार में अपना स्थान बना लिया था। उस समय वह हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ पत्रिका मानी जाने लगी थी। उस समय के उत्तर प्रदेश और बिहार के अधिकांश प्रसिद्ध और प्रतिष्ठित हिन्दी लेखक उसके साथ सहयोग करने लगे थे। ऐसे समय पर सन् 1903 में सरस्वती की कमान महावीर प्रसाद द्विवेदी के हाथों में आई। आरंभ में द्विवेदी जी को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। पर धीरे-धीरे उन्होंने सरस्वती के लेखकों

का एक मंडल बना लिया जिसमें विविध विषयों के विशेषज्ञ थे। द्विवेदी जी सर्वदा नई प्रतिभाओं की खोज में रहते थे। वे नए और होनहार साहित्यप्रेमी युवकों को हिंदी में लिखने को प्रोत्साहित करने लगे।⁸¹

भाषा के परिष्कार के क्षेत्र में भी सरस्वती ने बहुत बड़ा कार्य किया। इसके पूर्व भाषा में एकरूपता नहीं थी व्याकरण की बड़ी शिथिलता थी। द्विवेदी जी ने सरस्वती द्वारा इसका बड़ा विरोध किया। भाषा की एकरूपता के साथ-साथ कविता के लिए खड़ी बोली की पुष्टि भी सरस्वती की एक बहुत बड़ी उपलब्धि थी। इसके द्वारा आधुनिक खड़ी बोली की कविता को प्रतिष्ठा मिली। हिंदी के कितने ही कवियों ने, जो आज हमारे मूर्धन्य कवि माने जाते हैं, इसी के प्रोत्साहन से ही अपनी काव्यसाधना में सफलता प्राप्त की।

गद्य के साथ पद्य में खड़ी बोली की प्रतिष्ठा भारतेन्दु युग में ही हो गयी थी पर उसमें व्याकरणिक व्यवस्था और सफाई नहीं थी। कहीं नियमों का उल्लंघन था तो कहीं अवधी और ब्रज के शब्दों का मिश्रण द्विवेदी जी ने सबसे पहला काम सरस्वती के माध्यम से इन्हें दूर किया। सरस्वती की प्रतिष्ठा बढ़ गयी।

मैथिलीशरण गुप्त जी के मन में सरस्वती से जुड़ने की अदम्य आकांक्षा जगी और 'महावीर' की शरण में गये, जहाँ उन्हें प्रोत्साहन मिला और मार्ग निर्देशन भी गुप्त जी ने सरस्वती में लिखना प्रारंभ कर दिया। द्विवेदी जी ने इनकी पहली कविता लौटा दी और उसके साथ उन्होंने भाषा और विषय सम्बन्धी कुछ निर्देश लिख भेजे। मैथिली बाबू ने इन निर्देशों का पालन सुयोग्य शिष्य की भाँति किया और वे सरस्वती में प्रकाशित होने लगे।⁸² गुप्त जी की रचनाएँ द्विवेदी जी से व्यवस्थित और परिष्कृत होकर सरस्वती में छपने लगी। अन्य पत्रों में गुप्त जी यदा-कदा की लिख सके, क्योंकि आचार्य द्विवेदी जी इसे अनुचित मानते थे। सुधा, माधुरी और विशाल-भारत से गुप्तजी का अपने जीवन के मध्य-काल में संबंध रहा है। हिन्दी की प्रत्येक पत्र-पत्रिकाएँ गुप्त जी की रचना छापने के लिए उत्सुक रहती थी। इन दिनों भी उनकी रचनाएँ आजकल, नई धारा, नया समाज, नवनीत, धर्म-युग आदि में जब-तब दिखाई पड़ती हैं। प्रतीक में भी उनकी

कविताएँ छपी हैं। गुप्त जी की हस्तलिखित कविताएँ जो पुस्तकाकार नहीं छपी, प्रायः त्यागभूमि, विशाल-भारत, सुधा, हंस, विश्वमित्र, वैशाली, कल्याण, माधुरी, भारत, सीता, हरिजन, कुमार आदि पत्रों में प्रकाशित हुई हैं।⁸³

अनुवाद-

अनुवाद भी साहित्य का एक अंग है। गुप्त जी ने मौलिक रचनाओं के साथ-साथ अपनी अनूदित, कृतियों से भी हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि की है। उन्होंने तीन भाषाओं से अनुवाद कार्य किया है।

मैथिलीशरण गुप्त जी की ख्याति मूल-रचनाकार के रूप में जितनी है, उतनी अनुवाद के रूप में नहीं। उन्होंने मुख्यतः अपने निर्माण काल में संस्कृत, बँगला और अंग्रेजी-फारसी भाषाओं के काव्य और नाटक अनूदित किए। इनके अतिरिक्त उन्होंने खड़ी बोली गद्य को पद्य-बद्ध भी किया। 'मेघनाद-वध' का उनका काव्यानुवाद सर्वाधिक लोकप्रिय हुआ। ये अनुवाद भाषांतर मात्र नहीं हैं, काव्याभिव्यक्ति के रूपान्तर हैं। कवि ने सुभाषितों और कालिदास के काव्य-प्रसंगों के भावानुवादों से अनुवाद कार्य को आरंभ किया और बंगला के माध्यम से विदेशों के कतिपय राष्ट्र-गीत हिन्दी में रूपान्तरित किए। कालिदास के 'अभिज्ञान शाकुंतल' की छाया लेकर कवि ने 'शकुंतला' काव्य की रचना की। तत्पश्चात् माइकेल मधुसूदन दत्त और नवीनचन्द्र सेन के कुछ बँगला काव्य-ग्रंथों को उसने हिन्दी में अनूदित किया। बँगला के काव्यानुवादों के साथ-साथ वह भास के नाट्यानुवादों के कार्य में भी प्रवृत्त हुआ और उसने कई नाटकों को हिन्दी में रूपान्तरित किया, जिनमें से दो नाट्यानुवाद पुस्तकाकार प्रकाशित हुए। उमर खय्याम की रूबाइयों को फिट्जरेल्ड के अंग्रेजी अनुवाद के आधार पर उन्होंने हिन्दी में अनूदित किया तथा मूल के फारसी संस्करण से भी सहायता ली। तात्पर्य यह है कि गुप्त जी का अनुवाद कार्य वैविध्यपूर्ण है और बहुमुखी भी।⁸⁴

संस्कृत के रूपकों का अनुवाद-

गुप्त जी का व्यवस्थित अनुवाद-कार्य सन् 1908 में आरंभ हुआ। उन्होंने सर्वप्रथम कालिदास के 'अभिज्ञान शाकुंतल' से प्रभावित होकर स्वतंत्र रूप से खंडकाव्यात्मक रचना प्रस्तुत की। शकुंतला काव्य नाट्यानुवाद नहीं है, पर वह कालिदास की कृति की

छाया को लेकर ही रचा गया है। इसे भावानुवाद भी कह सकते हैं। कवि ने काव्य-विधान अपना रक्खा है और कालिदास की कुछ उक्तियों को रूपान्तर किया है। आशय यह है कि गुप्त जी का शकुंतला काव्य कालिदास की कृति पर आधारित है और उन्होंने कुछ श्लोकों का पद्यानुवाद भी किया है यथा -

मूल - “इतः प्रत्यादेशात्स्वजनमनुगन्तुं व्यवसिता
स्थिता विष्ठेत्युच्चैर्वदति गुरुशिष्ये गुरुसमे।
पुनर्दृष्टिं वाष्पप्रसरकलुषामर्पितवती
मयि क्रूरे यत्तत्सविषमिव शल्यं दहति माम्।”⁸⁵

अनुवाद - रक्खा इधर प्रिया को मैंने न जब कुड़क कर,
त्यों छोड़कर चले जब मुनिशिष्य भी घुड़ककर।
तब दृष्टि हाय, उसने जो अश्रु-पूर्ण डाली।
वह डस रही मुझे है बनकर कराल व्याली।⁸⁶

गुप्त जी ने शकुंतला की रचना मूल ग्रंथ से विशेष रूप से प्रभावित होकर ही की थी। यह गुप्त जी की आरंभिक काव्य कृति है।

भास के नाटयानुवाद-

संस्कृत से गुप्त जी द्वारा अनुदित भास के दो नाट्य ही प्रकाशित हुए हैं। वे ‘स्वप्नवासवदत्ता’ और ‘दूत-घटोत्कच’ हैं। ‘स्वप्न वासवदत्ता’ भास की सर्वोत्तम नाट्य रचना है। इन नाट्यरचनाओं का अनुवाद गुप्त जी ने सन् 1915 के आप-पास किया था। अनुवाद की भाषा संस्कृत बाहुल खड़ी बोली है। अनुवाद में कवि की सफलता अवलोकनीय है।

स्वप्नवासवदत्ता-

यह महाकवि भास -प्रणीत स्वप्नवासवदत्तम् का हिन्दी अनुवाद है। संक्षेप में स्वप्न वासवदत्ता की कथा इस प्रकार है-

वत्सदेश के राजा उदयन राज्य-च्युत होकर रानी वासवदत्ता और मंत्री यौगन्धनारायण के साथ लावाणक नामक गाँव में निवास करते हैं। उदयन के विषय में सिद्धो की भविष्यवाणी है कि मगधराज दर्शक की बहन पद्मावती से विवाह करने पर उनको पुनः

राज्य-प्राप्ति होगी। परन्तु वासवदत्ता के रहते हुए उदयन अन्य किसी कन्या को पत्नी रूप में स्वीकार करने को तैयार नहीं है। फलतः स्वामीभक्त मन्त्री यौगन्धनारायण षडयंत्र रचते हैं। अचानक एक दिन लावाणक गाँव में आग लग जाती है-- और वासवदत्ता तथा मन्त्री यौगन्धनारायण अन्तर्धान हो जाते हैं। प्रचारित कर दिया जाता है कि वासवदत्ता अग्नि में जल गई और उसको बचाने के प्रयत्न में यौगन्धनारायण भी नहीं बच सके। यही से स्वप्नवासवदत्ता की कथा आरंभ होती है।

तत्पश्चात् उदयन और पद्मावती का विवाह सम्पन्न होता है। और अन्त में सब भेद खुलने पर उदयन और वासवदत्ता का पुनः संयोग होता है। भरतवाक्य के साथ नाटक समाप्त हो जाता है।⁸⁷

मैथिलीशरण गुप्त जी ने स्वप्न वासवदत्ता में गद्य का अनुवाद गद्य में और श्लोकों का पद्य में किया है। यथा-

मूल पद्य- “राजा-पद्मावती,
शरच्छशाङ्कगौरैण वाताविद्वेन भामिनी।
काशपुष्पलवेनैदं साक्षुपातं मुखं मम।
(आत्मगतम्) इयंबाला नवोद्वाहा सत्यं श्रुत्वा व्यथां ब्रजेत्,
कामं धीर स्वभावेयं स्त्री स्वभावस्तु कातरः।”

अनुवाद - “ राजा - पद्मावती,
जो ये शारदीय-शशि से सित काश-कुसुम हैं मन भाये,
उड़ते हुए रजःकण इनके आँखों में आँसू लाये।
(स्वागत) यह नूतन विवाहिता बाला सच सुनकर दुख पावेगी,
धीरा है, पर सहज कातरा, नारी-प्रकृति न जावेगी।”⁸⁸

2. दूतघटोत्कच

मूल - “घटोत्कचः - कथं दुःशासनो व्याहरति। अरे दुःशासन, अराजानामभवतां चक्रायुध : हं भो।

मुक्तायेन यदा पुरा नृपतयः प्रभ्रष्ट मानोच्छयाः
येनर्ध्यं नृपमंडलस्य मिषतो भीष्माग्रहस्ताद्धृतम्।
श्रीर्यस्याभिरता नियोग सुमुखी श्रीवक्षशय्यागृहे
श्लाघ्यः पार्थिव पार्थिवस्तव कथं राजा न चक्रायुध :।

दुर्योधन - दुःशासन, अलं विवादेन,

राजा वा यदि वा राजा बली वा यदि वा बली।

बहुनात्र विमुतेन् किमाह भवतां प्रभुः।”

अनुवाद - घटोत्कच-क्या-क्या ? क्या भगवान् चक्रायुध राजा नहीं हैं ?

मुक्त जिन्होंने जरासन्ध के बन्धन से नृप-वृन्द किया,

इच्छुक राजाओं के रहते जिन्हें भीष्म ने अर्घ्य दिया।

प्रकृत चंचला कमला जिनके देह-गेह में है अचला,

राजाओं के राजा चक्रायुध राजा कैसे नहीं भला।

दुर्योधन - “दुःशासन जाने दो। (घटोत्कच से)

राजा हो कि अराजा हो वह, बली हो कि अबली हो वह,

इससे क्या? तेरे उस प्रभु ने, जो कहलाया हो सो कह।⁸⁹

उपर्युक्त उद्धारणों के आधार पर प्रस्तुत अनुवादों के संबंध में यह कहा जा सकता है कि गुप्त जी ने सम्यक् अनुवाद किए हैं, अर्थात् अपनी ओर से संक्षेप अथवा वृद्धि करने की चेष्टा नहीं की है। उन्होंने प्रायः शाब्दिक अनुवाद किए। गुप्त जी ने अनुवाद कार्य में उपलब्ध अनुवादों से सहायता भी ली है।

बँगला-काव्यों के अनुवाद-

बँगला-काव्य से गुप्त जी ने माइकेल मधुसूदन दत्त के तीन ग्रंथों का तथा नवीनचन्द्र सेन के ‘पलासीर-युद्ध’ काव्य का ‘मधुप’ उपनाम से अनुवाद किया। मधुसूदन दत्त के अनूदित ग्रंथ ‘विरहिणी ब्रजांगना’, ‘वीरांगना’ और ‘मेघनाद-वध’ हैं।

विरहिणी ब्रजांगना-

सन् 1912 में गुप्त जी प्लेग के प्रकोप के कारण सपरिवार बैठकही गाँव में कुछ समय तक रहे थे। वही ‘विरहिणी ब्रजांगन’ काव्य का अनुवाद किया गया। इस पद्यानुवाद के दो उद्देश्य थे - “एक तो इस पुस्तक की कविता इतनी मधुर है कि उसने लेखक को विवश किया कि किसी तरह इसका रसास्वादन हिन्दी प्रेमियों को कराया जाय।”

“दूसरा कारण यह है कि इस ओर भी शिक्षित समुदाय का ध्यान आकर्षित हो और भिन्न-भिन्न भाषा के कवियों की रचनाएँ अनुवादित होकर मातृभाषा की श्रीवृद्धि

यह हिन्दी में बँगला गीति-काव्य का प्रथम पद्यानुवाद था। इसके बाद रवीन्द्रनाथ के गीतों के ही अनेक कवियों ने प्रायः बँगला से पद्य-रूपान्तर किए। विरहिणी ब्रजांगना अनुवाद के निम्नलिखित उदाहरण उनके मूल बँगला-रूप के साथ-साथ यहाँ द्रष्टव्य हैं-

मूल - “फूटिचे कुसुम कुल मंजु कुंस बनेरे
यथा गुनमनि
हेरिमोर श्याम चाँद पीरीतेर फूल-फाँद
पाते लो धरनी।
कि लज्जा हा धिक् तरे छय ऋतू बारे-बारे
आमार प्राणेर धन लोभे से रमणी ?
चल सखि, शीघ्र जाइ पाछे माधवे हराइ
मनिहारा फनिनि कि बाँचे लो स्वजनि।”⁹¹

अनुवाद - “मजु कुंज में जहाँ श्याम है, खिले सुमन मन भाये है,
मेरे प्रिय को देख धरा ने फूल-जाल फैलाये है।
हा, कैसी लज्जा है, धिक है जो षट्ऋतु को वरती है-
वह रमणी मेरे प्रिय-धन पर मोहित होकर मरती है।
चल सखि, शीघ्र चलें जिसमें फिर गमा न बैठें मोहन को,
जी सकती है कब तक फणिनी खोकर मणिरूपी धन को।”⁹²

प्रस्तुत अनुवाद में गुप्त जी ने मार्मिक भावाभिव्यक्ति की है, जो सरल ही नहीं, मुधर भी बन पड़ी है। माइकेल की भाव-प्रतिभा कल्पना-शीलता से गुप्त जी निश्चय ही प्रभावित हुए हैं। गुप्त जी पद्य-बंध की आवश्यकता के कारण कतिपय शब्द घटाए-बढ़ाए हैं।

वीरांगना-

‘वीरांगना’ और ‘मेघनाद-वध’ काव्यानुवाद संवत् 1984 में प्रकाशित हुए, पर इन्हें प्रायः संवत् 1980 के आसपास ही रूपान्तरित किया गया।

वीरांगना काव्य में एकादश सर्गबद्ध पत्र-गीतियों का अनुवाद हुआ है। ये सभी पत्र पौराणिक स्त्री पात्रों ने अपने-अपने प्रेमियों के प्रति आत्म-निवेदन के रूप में प्रस्तुत किए हैं। पर वीरांगना काव्य एकान्त शृंगारिक रचना नहीं है। श्री योगेन्द्रनाथ बसु का कथन है- कि “वीरांगना काव्य ‘मेघनाद-वध’ और ब्रजांगना’ काव्य का संयोग सूत्र है और मधुसूदन दत्त की प्रतिभा के गंभीर और कोमल अंशों का संगम-स्थल है।”⁹³ स्वयं

अनुवादक का कथन है कि वह उक्त अनुवाद कार्य में उसके ओज तथा माधुर्य से प्रभावित होकर प्रवृत्त हुआ है।⁹⁴ यथा-

मूल - लक्ष्मणेर प्रति शूर्पणखाः
 “के तुमि-विजन बने भ्रमहे एकाकी,
 विभूति-भूषित-अंग? कि कौतुके, कह,
 वैश्वानर, लुकाइच भस्मेर माँझा रे ?
 मेघेर आड़ाले जन पूर्णशशी आजि?”⁹⁵

अनुवाद - लक्ष्मण के प्रति शूर्पणखा :
 “कौन तुम भस्म से विभूषित, गहन में
 घूमते हो एकाकी, बताओ यह मुझको ?
 पावक छिपा है किस कौतुल से राख में,
 मानों अंबुदों की आड़ में हो पूर्ण चन्द्रमा।”⁹⁶

वीरांगना एक उत्तम अनुवाद है यह मूल के अत्यंत निकट है। भाव और विचार-अवयव ही नहीं प्रायः मूल का क्रम भी इसमें सुरक्षित है। यथा- एक पंक्ति का रूपान्तर एक पंक्ति में ही कौशल पूर्वक हुआ है-

मूल - केमने ए अपमान सब धैर्य धरि? ⁹⁷
 (केमने = कैसे, सब = सहन करूँ)

अनुवाद - कैसे सहूँ ऐसा अपमान धैर्य धरके ⁹⁸

वीरांगना एक विश्वसनीय अनुवाद है। इसमें मूल के भाव और विचार ही नहीं शब्द-प्रतीक तक रूपान्तरित है, फिर भी इसमें मौलिक-रचना का-सा रस है। गुप्त जी की पदावली प्रसादमयी है और मूल रचनाकर की कहीं ओजमयी और कहीं माधुर्यपूर्ण। गुप्त जी ने इस अनुवाद में खड़ी बोली की शक्ति प्रकट की है।

मेघनाद-वध-

गुप्त जी का मेघनाद-वध काव्यानुवाद उनके समस्त अनुवाद कार्य का उत्कर्ष प्रकट करता है। यह अनुवाद लोकप्रिय हुआ और साहित्य-जगत में इसकी प्रसिद्धि हुई।

रामचरित से संबद्ध इस काव्य का नायक मेघनाद है- इसमें उसी के शौर्य का गान हुआ है। राम और लक्ष्मण के चरित्र की परम्परागत गरिमा मेघनाद-वध काव्य में सुरक्षित नहीं रह सकी। ऐसा प्रतीत होता है मानो यह लंका के राजकवि की कृति है। इस काव्य की विचारधारा निश्चय ही प्रस्तुत कवि के मनोनुकूल नहीं है, फिर भी वह इसके काव्य-वैभव पर मुग्ध है। इसीलिए उसने इसका अनुवाद किया है - “मेघनाद-

वध-सदृश काव्य एक प्रान्त का ही धन न रहे, राष्ट्रभाषा के द्वारा वह राष्ट्रीय संपत्ति बन जाए, इतना न हो सके तो अन्ततः उस रत्न के एक झलक हिन्दी भाषाभाषियों को भी देखने को मिल जाय ...।”⁹⁹ श्री रामकृष्ण परमहंस का यह कथन है “इस समय यही ‘मेघनाद-वध’ काव्य हिमालय पर्वत की तरह आकाश भेद कर खड़ा है, गुप्त जी को सार्थक प्रतीत हुआ।”¹⁰⁰

‘मेघनाद-वध’ एक आदर्श अनुवाद है। आरंभ से अंत तक अनुवादक ने मूल के विचार और भाव-घटक का बड़े कौशल से रूपान्तर किया है। यथा-

मूल - अभिमाने महामानी वीर कुलर्षभ
रावन, कहिला बली सिन्धु पाने चाहि,-
“कि सुन्दर माला आजि परियाछ गले,
प्रचेत : । हा धिक् ।”¹⁰¹
(सिन्धु पाने चाहि = सिन्धु की ओर देखकर, परियाछि = पहनी)
अनुवाद - सिन्धु-ओर देख महामानी राक्षसेन्द्र यों
बोला, अभिमान -वश- “क्या ही मंजु मालिका
पहनी प्रचेतः आज तुमने, हा। धिक है”¹⁰²

समग्रतः मेघनाद-वध अत्यंत सफल अनुवाद है गुप्त जी के अनुवाद ग्रंथों में ऐसा स्पष्ट अनुवाद और कोई नहीं है। इसमें मूल की आत्मा ही नहीं शरीर भी सुरक्षित है। मूल के अदम्य ओज और प्रबल प्रवाह के साथ-साथ शब्द प्रतीक और छन्द भी सफलता से रूपान्तरित हुए हैं। इतने बड़े काव्य-ग्रंथ का ऐसा सरस अनुवाद निश्चय ही प्रशंसनीय है।

पलासी का युद्ध-

बाबू नवीनचन्द्र सेन कृत ‘पलासी युद्ध’ प्रबंध-काव्य का पद्य-रूपान्तर ‘विरहिणी ब्रजांगना’ काव्यानुवाद के पश्चात् किया गया, पर दोनों प्रथम बार संवत् 1971 में प्रकाशित हुए। पलासी का युद्ध काव्यानुवाद राष्ट्रीयता की भावना से प्रेरित होकर किया गया। उसका लक्ष्य मुख्यतः विदेशी शासन के प्रति विरोध की भावना प्रकट करना था।

गुप्त जी ने मूलभाव को सार्थकता देने के लिए अपनी ओर से भी यदा-कदा कतिपय परिवर्तन किए हैं, यथा-

मूल - “समभावे सर्वदेशे श्वेत ओ श्यामले
वरषे ताहार मेष बाचाय पवने।”

अनुवाद - “सब देशों में साम्य भाव से सित-श्यामल पर
करते हैं जल-वृष्टि घूमकर उनके जलधर।
सबको उनकी वायु जिलाती है समता से,
करती उनकी आग दग्ध भी अविषमता से।”¹⁰³

मैथिलीशरण गुप्त जी ने अनुवाद कार्य में पर्याय शब्द ही नहीं रक्खे, अपनी व्यक्तिगत रुचि के अनुसार समानार्थक शब्द-संकेतों का चयन भी किया, यथा-

मूल - “शोभिछे एकटि रवि पश्चिम गगने,
भासिछे सहस्र रवि जाह्वी-जीवने।”

अनुवाद - “शोभित दिनमणि एक प्रतीची के अंचल में,
सौ-सौ दिनमणि झलक रहे हैं गंगाजल में।”¹⁰⁴

नवीन चन्द्र सेन ने यह रचना राष्ट्रीय भावनाओं से प्रेरित होकर की थी। मैथिलीशरण जी का भी यह स्वानुभूत विषय है। इसीलिए यह अनुवाद इतना भावप्रवण बन सका है। सब मिलाकर पलासी का युद्ध अनुवाद-कला की दृष्टि से अत्यन्त उत्कृष्ट काव्य-ग्रंथ है।

अंग्रेजी रूपांतर का पद्यानुवाद-

उपर्युक्त अनुवादों के अतिरिक्त गुप्त जी ने उमर-खय्याम की रूबाइयों के फिट्जरेल्ड कृत अंग्रेजी रूपान्तर का अनुवाद भी किया है। यह अनुवाद गुप्त जी ने स्वयं नहीं किया है। किन्तु अपने मित्र रायकृष्णदास के आग्रह और सहायता से किया है।

रूबाइयात उमर खय्याम-

उमर खय्याम फ़ारसी के जगत्प्रसिद्ध कवि हैं। संसार की अनेक भाषाओं में उमर की रूबाइयों का अनुवाद हो चुका है।

फिट्जरेल्ड उमर खय्याम के सबसे सफल अनुवादक माने जाते हैं। उन्होंने उमर की रूबाइयों का अंग्रेजी में पद्यानुवाद किया है।¹⁰⁵

गुप्त जी कृत उमर खय्याम की रूबाइयों का पद्यानुवाद उनकी निजी प्रवृत्तियों का द्योतक कार्य नहीं है। उन्होंने मित्रों के, विशेषता रायकृष्णदास जी के, आग्रह से उमर खय्याम की पचहत्तर रूबाइयों का हिन्दी में पद्य-बद्ध रूपांतर किया है। वे अपने इस कार्य को ‘धृष्टता’ मानते हैं, क्योंकि न तो वे फ़ारसी में मूल काव्य को पढ़ पाए, न

उसके अंग्रेजी रूपांतर का स्वयं आस्वादन कर सके। गुप्त जी को फिट्जरेल्ड -कृत अंग्रेजी अनुवाद को हिन्दी में समझाया गया है और उन्होंने उसे पद्य-बद्ध किया है।

हिन्दी में उमर खय्याम की रूबाइयों के रूपांतरों के अन्तर्गत गुप्त जी का अनुवाद सर्वप्रथम प्रकाशित हुआ। इसके एक वर्ष पश्चात् सन् 32 में स्वर्गीय केशवप्रसाद पाठक का हिन्दी काव्यानुवाद मुद्रित हुआ और इसके तीन वर्ष पश्चात् बच्चनजी का स्वतंत्र अनुवाद 'खैयाम की मधुशाला' निकला। पंतजी-कृत 'मधुज्वाला' मूल फारसी काव्य का छायानुवाद है। जिसकी रचना गुप्तजी के अनुवाद के आसपास ही हुई, पर प्रकाशन हुआ सन् 48 में कवि के समक्ष उमर खय्याम की रूबाइयों के बँगला भाषा में दो काव्यानुवाद थे और गुजराती भाषा में एक अनुवाद। हिन्दी में इसके स्फुट अनुवाद पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए थे। गुप्त जी ने प्रायः सभी उपलब्ध अनुवादों से लाभ उठाया।¹⁰⁶

गुप्त जी द्वारा इस पद्यानुवाद के निम्नलिखित उदाहरण द्रष्टव्य हैं यथा-

गुप्तजी- "रचकर प्रिये, कहीं हम दोनों विधि-विरुद्ध कोई षडयंत्र
उसकी दुःखपूर्ण रचना पर पा लें विजय वशीकर मंत्र
तो टुकड़े-टुकड़े कर उसके, जितना संभव हो उतना,
क्या फिर उसको बना न लें हम इच्छा के अनुसार स्वतंत्र"

फिट्जरेल्ड - " Ah, Love could thou and I with fate conspire,
To grasp this Sorry scheme of Things entire,
would not we shatter it to bits-and then
Re-mould it nearer to the Heart's Desire!"¹⁰⁷

गुप्त जी ने अंग्रेजी रूपान्तर का प्रामाणिक पद्यानुवाद किया है। उपर्युक्त उदाहरणों में गुप्त जी ने स्पष्टतः मूल का प्रयत्नपूर्वक अनुसरण किया है। गुप्त जी का अनुवाद साधु और सरल है।

अन्य साहित्य-

गुप्त जी की काव्य-प्रवृत्तियाँ वैविध्यपूर्ण हैं। सम्पूर्ण हिन्दी जगत में राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त अपनी काव्य-कला के लिए प्रसिद्ध हैं। पर इसके अतिरिक्त उन्होंने नाट्य-रचनाएँ, भाषण, संस्मरण, रेडियो-वार्ता, कहानी आदि गद्य-रचनाएँ भी उपस्थिति की हैं।

नाट्य-रचनाएँ-

गुप्त जी ने मुख्य रूप से तीन प्रकाशित और एक अप्रकाशित नाटक लिखे हैं-

लीला-

लीला पद्य-नाट्य की रचना सन् 1910 में हुई। यह अप्रकाशित कृति है। इसमें कवि ने सीता-स्वयंवर की कथा का रामलीला के अभिनयों से प्रभावित होकर नौ दृश्यों में वर्णन किया है। यह भावुकतामयी रचना है। और इसमें मुख्यतः कवि की भक्ति-भावना व्यक्त हुई है। आरंभिक रचना होने के कारण न इसमें उच्चकोटि का काव्यत्व है, न नाट्योत्कर्ष। इसके संवाद पद्यबद्ध हैं और शैली नाटकीय, अतएव यह पद्य-नाट्य है।¹⁰⁸

तिलोत्तमा-

तिलोत्तमा का प्रकाशन सन् 1916 में हुआ। यह एक पौराणिक नाटक है जिसकी कथा-वस्तु हरिहर पुराण, महाभारत के आदि पर्व से दोहित की गई है। तिलोत्तमा एक अप्सरा है जिसकी सुन्दरता के बारे में कहा जाता है कि ब्रह्मा जी ने सुन्द एवं उपसुन्द राक्षसों को मारने के लिए विराट् विश्व की सुषमा को तिल-तिल एकत्रित कर लिया जिससे उसका नाम तिलोत्तमा पड़ा।

तिलोत्तमा नाटक में 11 पुरुष, 6 स्त्री पात्र पाँच अंक हैं शीर्षक की दृष्टि से नायिका-प्रधान नाट्य रचना है। पर नायिका का प्रवेश अंतिम अंक में होता है। सामाजिक आधार पर यह नाटक एक 'बन्धु विरोध' के कुफल को प्रदर्शित करने के लिए रचा गया है, तभी तो नाटककार प्रारंभ में ही कहता है -“ होता है बन्धु विरोध जहाँ, सर्वनाश ही उचित वहाँ। ”¹⁰⁹

चन्द्रहास-

चन्द्रहास का प्रकाशन सन् 1918 में हुआ। उनका कथानक जैमिनी पुराण से लिया गया है। इसमें 6 पुरुष, 3 स्त्रियाँ तथा कुछ दासी पात्र हैं। नाटक में 5 अंक तथा प्रत्येक अंक में 5-5 दृश्य भी हैं। नान्दी पाठ के बाद नट-नटी के वार्तालाप से नाटक का प्रारंभ होता है। और भरत वाक्य से समाप्ति।¹¹⁰

अनघ-

इसका प्रकाशन सन् 1927 ई0 में हुआ था। इसमें 12 पुरुष, 4 स्त्री तथा अंक के स्थान पर विविध शीर्षक दिये गए हैं। वस्तुतः यह बौद्धकालीन गीति-नाट्य है।

इसीलिए इसका नाट्य-शिल्प तिलोत्तमा और चन्द्रहास से भिन्न है। इसमें श्रव्य-काव्य की समस्त विशेषताएँ पाई जाती हैं। फलतः रंगमंच का ध्यान नहीं रखा गया है। इसके सत्रह दृश्यों में कथा का विकास हुआ है जिनके नाम इस प्रकार हैं- अरण्य, चौपाल, मद्य का घर, उद्यान, वटच्छाया, चबूतरा, ग्राम, योजक का घर, मधुवन, एकान्त, मेड़, दग्ध-गृह, कारागार, मगद्य, राजधानी और न्याय-सभा। इसमें मद्य का घर, उद्यान तथा चौपाल के दो-दो दृश्य रखे गए हैं। नाटक का शीर्षक अनद्य अर्थात् निष्पाप मद्य रखा गया है और यही मद्य नाटक का नायक भी है। सुरभि नायिका है।¹¹¹

इन नाटकों के अतिरिक्त गुप्त जी की अनेक काव्य-रचनाओं में भी नाट्य-शैली की झलक मिलती है। यशोधरा, जयिनी, दिवोदास और पृथिवीपुत्र आदि कृतियों में भी नाटकीय संवाद-शिल्प मिलते हैं इससे प्रतीत होता है कि गुप्त जी में जहाँ काव्य की पावन धारा मिलती है। वहीं नाटक की चमत्कृत तरंगें भी। उन्हें काव्य में अधिक सफलता मिली इसीलिए उन्होंने उसे ही सर्वाधिक रचा। फिर भी उनकी नाट्य-रचनाएँ तत्कालीन परिवेश में सफल प्रयोग हैं।

भाषण-

गुप्त जी के भाषण विचार-प्रधान निबंधों का स्वरूप लिए हुए हैं। उनमें कवि ने विवरण-प्रधान व्याख्यात्मक गद्य-शैली का व्यवहार किया है। मुख्य रूप से जिस प्रसंग पर कवि ने भाषण लिखा है, उसी विषय पर उसने अपने विचार प्रकट किए हैं। जयंती आदि उत्सवों के भाषण कवि-जीवन के संस्मरणों से संयुक्त हैं। उन्हें प्रभावशाली रूप देने का प्रयास नहीं किया गया, पर वे अर्जव, मार्दव तथा सौष्टवादि गुणों से संयुक्त अवश्य हैं उनमें चमत्कार-साधन की प्रवृत्ति भी लक्षित हुई है। सन् 48 में झाँसी के कल्चरल क्लब में पढ़ा गया भाषण कवि की उत्कृष्ट गद्य-रचना है।¹¹²

संस्मरण-

आत्मकथात्मक और संस्मरणात्मक रचनाएँ वर्णनात्मक निबंधों की शैली में लिखी गई हैं। उनमें कवि के व्यक्तिगत जीवन-संपर्कों का निरूपण हुआ है। वे मुख्यतः घटनात्मक वर्णन की शैली को उदाहृत करती हैं। उन्हें कवि ने काव्योद्धरण से अलंकृत भी किया है। जिससे उनका पांडित्य प्रकट होता है। इसी प्रकार की संस्मरणात्मक रचनाओं में लेखक के अहम् को प्रस्फुटित होने का अवकाश रहता है, पर कवि सर्वत्र

यथातथ्यता का गुण अपनाए रहा। उसे आपबीती ही कहनी थी, आत्म-विज्ञापन नहीं करना था। अतएव वह सामान्य मानवीय धरातल पर रहकर ही संस्मरण प्रस्तुत करता है। कवि ने ऐसे संस्मरण लिखे हैं, जिनमें उसे शील-सौजन्य प्रकट करने का तो अवसर मिला है, पर अपने गुण-गौरव को व्यक्त करने का प्रसंग नहीं आया। 'प्रसाद जी' 'आचार्य देव', 'गणेशजी', 'अनुज', 'हमारा-वृन्दावन' तथा 'अपने विषय में' आत्म-संस्मरणात्मक गद्य-रचनायें हैं ये कवि की भावनाशीलता को मुख्यतः अभिव्यक्त करती हैं।¹¹³

पत्र-

गुप्त जी के पत्रों में विनय, सरलता, आत्मीयता और सौजन्य-शिष्टाचार का सम्यक् निर्वहण हुआ है, किन्तु अपने मत को प्रकट करने में कवि ने कोई त्रुटि नहीं की है। पत्रों में कवि का दृष्टिकोण, उसके पक्ष का समर्थन, स्वमत का प्रतिपादन, विरोधी विचारों के विपक्ष में अपने विचारों का तर्क-सम्मत निरूपण, आत्म-निरीक्षण की प्रवृत्ति का प्रकटीकरण, आदि दिखाई पड़ते हैं। गुप्त जी के पत्रों का उनके काव्याध्ययन में महत्त्वपूर्ण स्थान है।

आलोचना-

गुप्तजी ने आलोचनात्मक निबंध तथा पुस्तक-परिचय आदि अपने निर्माण काल में लिखे थे। 'सौंदर्योपासक' और 'काव्य-प्रभाकर' की उन्होंने पुस्तक समीक्षाएँ लिखी तथा स्व० कामताप्रसाद गुरु के भाषा विषयक निबंध 'खड़ी-बोली की काव्य स्वतंत्रता' का उत्तर दिया था। गुप्त जी ने 'कला' शीर्षक एक टिप्पणी भी लिखी है, जिसमें कला विषयक अपनी धारणा को वे स्पष्ट कर सके हैं। गुप्तजी के काव्याध्ययन में इनका असंदिग्ध महत्त्व है।¹¹⁴

रेडियो वार्ता-

गुप्त जी ने सन् 1952 के पश्चात् अनेक रेडियो-वार्ताएँ प्रसारित की हैं, जिनका विषय उनकी काव्य रचना से किसी न किसी प्रकार से संबंधित है। 'मेरे कवि का आरंभ' और 'भारत-भारती' के विषय में संस्मरणात्मक रेडियो-वार्ताएँ हैं। 'मर्यादा-पुरुषोत्तमराम' -रेडियो-वार्ता में साकेत के राम की चरित-कल्पना को सुस्पष्ट तथा उदाहृत किया गया है। 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र साहित्य समीक्षा विषयक रेडियोवार्ता है, पर उसमें कवि ने

श्रद्धाजलि के रूप में भारतेन्दु के साहित्यिक महत्त्व का निरूपण किया है। रेडियो-वार्ताओं के द्वारा कवि के जीवन काव्य, रुचि-वैशिष्ट्य और उसकी साहित्यिक रसज्ञता पर प्रकाश पड़ता है।¹¹⁵

कहानी-

जनश्रुति के आधार पर कवि ने एक आख्यानात्मक गद्य-रचना प्रस्तुत की है- 'जगदेव की कहानी'। इसमें स्पष्ट शैली और सरल भाषा में जगदेव-विषयक बुन्देलखंड की लोक-कथा का वर्णन किया गया है। इसमें आख्यायिक-शिल्प का प्रयोग नहीं हुआ है। यह कथात्मक निबंध-रचना ही है।¹¹⁶

गद्य-रचनाओं में गुप्तजी के कवि-व्यक्तित्व का ही प्रकटीकरण हुआ है इनकी रचना विशेष प्रसंग उपस्थित होने पर ही की गई। इन्हें कवि की स्फुट रचना और उसका गौण कार्य समझना चाहिए।

मैथिलीशरण गुप्त के सम्पूर्ण साहित्य का नवीन दृष्टिकोण से मूल्यांकन

आधुनिक भारतीय सांस्कृतिक नवजागरण की सृजनात्मक शक्तियों की सर्वाधिक प्रबल अभिव्यक्ति का प्रथम कलात्मक विस्फोट मैथिलीशरण जी के व्यक्तित्व और कृतित्व में देखने को मिलता है। भारतेन्दु की काव्यात्मक चेतना से जो भाव और विचार-बिन्दु उमड़-घुमड़ रहे थे उनका क्रमबद्ध उद्गम स्थान मैथिलीशरण गुप्त के राष्ट्रीय सांस्कृतिक भाव-बोध में नयी अर्थच्छायाओं के साथ प्रकाश में आया।

मैथिलीशरण गुप्त जी का अविर्भाव वर्तमान शती के प्रारम्भिक काल में उस समय हुआ जिसमें काव्य-भाषा एवं काव्य विषय रीतिकालीन काव्य परम्पराओं से छाया हुआ एवं तद्युगीन प्रवृत्तियों से पूरी तरह अभिभूत थी तथा गुप्त जी ने खड़ी बोली हिन्दी काव्य, धारा को आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की प्रेरणा से नव-संस्कार प्रदान किया। गुप्त जी की प्रारम्भिक काव्य रचनाएँ ब्रजभाषा में थी, परन्तु बाद में खड़ी बोली हिन्दी के विकसित स्वरूप में अपने सर्जनात्मक दायित्व-बोध की पोषक बनी। अतः गुप्तजी ने खड़ी बोली के प्रतिष्ठापनार्थ ही अपनी सर्जनात्मक बुद्धि का परिचय नहीं दिया, बल्कि काव्यभाषा का वह स्वरूप भी प्रतिपादित किया जो कवि के रूप में उनके द्वारा प्रयुक्त भाषा, भाषा-भण्डार और अनुभूतियों के परिष्कृत प्रतिपादन में समाहित रहती है तथा जीवन के साथ-साथ मानव-मूल्यों के सर्तक चिन्तन में युग्यथार्थ का प्रतिपादन करता

है। इस दृष्टि से प्रासंगिकता के सन्दर्भ में राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त अत्यधिक प्रासंगिक सिद्ध होते हैं।¹¹⁷

द्विवेदी युगीन काव्य की जो भी प्रवृत्तियाँ हैं, वे सभी बाबू मैथिलीशरण गुप्त जी के काव्य में प्रतिफलित हैं। इतिवृत्तात्मकता, गद्यवत्ता, आदर्शवादिता, उपदेशात्मकता, कथावादिता, नीरसता, शुष्कता, शृंगार से विरक्तता, श्रुति-कटुत्व, भाषा का खुरदरापन सभी मैथिलीशरण जी की रचना में पाए जाते हैं।

मैथिलीशरण गुप्त जी ने नई कथाओं में तो नवीनता दी ही है, पुरानी कथाओं को भी उनके पूर्ण पुरातन रूप में नहीं प्रस्तुत किया। उन्हें उन्होंने नवीन और आधुनिक दृष्टि से परखा है और पुराने पात्रों को नवीन संस्पर्श दिया है। मैथिली बाबू ने साकेत में सुप्रसिद्ध रामकथा ही दी है। पर यह स्वथा नवीन है। इसमें उर्मिला और लक्ष्मण के चरित कितने निखरे हैं। कैकयी के कलंक का इसमें मनोवैज्ञानिक परिमार्जन कर दिया गया है। गृहस्थ जीवन इसमें पूर्ण्यता स्पष्ट हुआ है।¹¹⁸

मैथिलीशरण गुप्त प्रबन्धों के कवि हैं। गुप्त जी का मन भारत के अतीत में रमा है। भारत की सभ्यता और संस्कृति से उन्हें प्रेम था। भारत की वर्तमान दुर्दशा देखकर उनके मन में ग्लानि होती थी। वे भारतीयों को जगा देना चाहते थे। इसके लिए उन्होंने एक तो उद्बोधनपरक प्रेरक-काव्य रचे, जैसे भारत-भारती, वैतालिक, हिन्दू। दूसरे उन्होंने प्रेरक प्रसंगों वाले प्रबन्ध-काव्यों की सृष्टि की। इन प्रबन्धों में वीर रस प्रमुख रहा। रंग में भंग, जयद्रथ-वध, विकट-भट, सिद्धराज, गुरुकुल इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं।

मैथिलीशरण गुप्त जी आधुनिक काव्य के ऐसे पुरोहित कवि हैं जो भारतीय संस्कृति को एक क्षण के लिए भी विस्मृत नहीं कर पाते हैं। अतः समसामयिक चिन्तन के रूप में राष्ट्रीय भावना जागृत करने के कारण अपने कृतित्व की सार्थकता भारतीय संस्कृति के समन्वयवादी दृष्टिकोण की स्थापना में की है जिसके अन्तर्गत हिन्दू, किसान, साकेत, गुरुकुल जैसी कृतियों की सर्जना हुई है जिनमें पौराणिक आख्यान एवं भारतीय संस्कृति का संस्पर्श आज के उद्धत वर्तमान में निहित लगता है। जयद्रथवध, सिद्धराज, यशोधरा, जयभारत, द्वापर, विष्णुप्रिया आदि के कथ्य एक नयी चेतना और नयी व्यवस्था का संकेत देते हुए अपनी कृतित्वमय प्रासंगिकता सिद्ध करने में कहीं भी पीछे नहीं हैं।¹¹⁹

गुप्त जी जहाँ अपने युग की समस्याओं से जूझ रहे थे, वही अतीत से सन्दर्भ जोड़ते हुए, पुरातनता में नवीनता का समावेश करते हुए नवोन्मेषमयी वाणी से युवा पीढ़ी का आह्वान भी करते जा रहे थे। यही कारण है कि राष्ट्रीय भावना, राष्ट्र स्वतंत्रता एवं स्वदेशप्रियता, अखण्ड राष्ट्र की परिकल्पना ही उनके कृतित्व के विषय बनते गये हैं। वे राष्ट्रकवि बाद में बने, परन्तु राष्ट्रहित चिन्तक, राष्ट्रीय अखण्डता के पोषक और स्वदेशीय भावधारा के परिकल्पक पहले से थे। यही कारण है कि उनकी कृतित्व-धारण शक्ति उनके विचारों की अग्रगमिता और चिन्तनशील प्रगतिशीलता के कारण सदैव ही प्रासंगिक बने रहने की क्षमता रखती है।

गुप्त जी की साहित्य-साधना की चरितार्थता कालजयी है। तभी आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी कहते हैं कि - “मैथिलीशरण गुप्त दीन-दरिद्र भारत के विनीत, विनयी और नत्शिर कवि है। राष्ट्र की और युग की नवीन स्फूर्ति, नवीन जागृति के स्मृति-चिन्ह हमें हिन्दी में सर्वप्रथम गुप्तजी के काव्य में ही मिलते हैं।¹²⁰

निस्संदेह गुप्त जी के काव्य में आज भी जीवंतता विद्यमान है। मात्र राष्ट्रीयता, स्वदेशीयता आदि का आकलन ही उनकी कृतियों का प्रतिपाद्य नहीं है। और न राजनीतिक आन्दोलन ही, पर इन सबसे परे हटकर सामाजिक एवं पारिवारिक परिवेश के चिन्तन की दिशाएँ राष्ट्रकवि को कदापि अप्रासंगिक नहीं होने देती।

नारी-उत्थान का चिन्तन उस युग की समसामयिक प्रतिबद्धता थी, क्योंकि समाज-सुधारकों और राष्ट्रीय आन्दोलनकर्ताओं ने सामाजिक और पारिवारिक परिवेश से निकालकर नारी को पुरुष की सहज सहयोगिनी और गरिमामयी बनाया। गुप्त जी की काव्य-कृतियों में भी नारी का उदात्त और गरिमामयी रूप तथा प्रतिष्ठा व्याप्त है।

मैथिलीशरण गुप्त जी के काव्य-सृजन का समग्र परिवेश गांधीवादी चिन्तन रामराज्य की परिकल्पना, कृषक आन्दोलन की परिणतियों जैसी समसामयिक प्रसंगों के विविध सन्दर्भों में उद्देश्यपरक दृष्टि से सम्पन्न है। यही कारण है कि गुप्तजी का कृतित्व आज भी चिन्तक की दृष्टि से नवीन है। ओर सम्भवतः आगे की शती में भी रहेगा। क्योंकि गुप्त जी जो कुछ लिख गये हैं इस शती के आरंभकाल में वह आज के सृजनरत कवि की तद्युगीन गर्भाकांक्षा का सुपरिणाम प्रतीत होता है।

1. विजय अग्रवाल (संम्पा0) - राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त - पृ0 -65,
2. वही, पृ0 - 25,
3. वही, पृ0 - 27,
4. डॉ0 द्वारिकाप्रसाद सक्सेना - हिन्दी के आधुनिक प्रतिनिधि कवि - पृ0-73,
5. वही, पृ0 - 73,
6. डॉ0 कमलाकान्त पाठक -मैथिलीशरण गुप्त व्यक्ति और काव्य पृ0 292,
7. डॉ0 उमाकान्त - मैथिलीशरण गुप्त कवि और भारतीय संस्कृति के अख्याता पृ0 36,
8. डॉ0 कमलाकान्त पाठक -मैथिलीशरण गुप्त व्यक्ति और काव्य पृ0 294-295,
9. डॉ0 उमाकान्त - मैथिलीशरण गुप्त कवि और भारतीय संस्कृति के अख्याता पृ0 36,
10. के0एस0 मणि - मैथिलीशरण गुप्त और बल्लात्तोल का तुलनात्मक अध्ययन पृ0 - 48
11. डॉ0 कमलाकान्त पाठक -मैथिलीशरण गुप्त व्यक्ति और काव्य पृ0 183,
12. के0एस0 मणि - मैथिलीशरण गुप्त और बल्लात्तोल का तुलनात्मक अध्ययन पृ0 - 49,
13. डॉ0 कमलाकान्त पाठक -मैथिलीशरण गुप्त व्यक्ति और काव्य पृ0 290-298,
14. के0एस0 मणि - मैथिलीशरण गुप्त और बल्लात्तोल का तुलनात्मक अध्ययन पृ0 - 49-50,
15. वही, पृ0 - 50,
16. डॉ0 कमलाकान्त पाठक -मैथिलीशरण गुप्त व्यक्ति और काव्य पृ0 571,
17. डॉ0 उमाकान्त - मैथिलीशरण गुप्त कवि और भारतीय संस्कृति के अख्याता पृ0 44,
18. डॉ0 कमलाकान्त पाठक -मैथिलीशरण गुप्त व्यक्ति और काव्य पृ0 190,
19. डॉ0 कमलाकान्त पाठक -मैथिलीशरण गुप्त व्यक्ति और काव्य पृ0 -300,
20. डॉ0 के0एस0 मणि - मैथिलीशरण गुप्त और बल्लात्तोल का तुलनात्मक अध्ययन पृ0 -52,

21. डॉ० कमलाकान्त पाठक -मैथिलीशरण गुप्त व्यक्ति और काव्य पृ० -310,
22. डॉ० उमाकान्त - मैथिलीशरण गुप्त कवि और भारतीय संस्कृति के अख्याता पृ० 47,
23. डॉ० कमलाकान्त पाठक -मैथिलीशरण गुप्त व्यक्ति और काव्य पृ० -189,
24. डॉ० कमलाकान्त पाठक -मैथिलीशरण गुप्त व्यक्ति और काव्य पृ० -185,
25. डॉ० के०एस० मणि - मैथिलीशरण गुप्त और वल्लात्तोल का तुलनात्मक अध्ययन पृ० -54,
26. डॉ० के०एस० मणि - मैथिलीशरण गुप्त और वल्लात्तोल का तुलनात्मक अध्ययन पृ० -54,
27. डॉ० उमाकान्त - मैथिलीशरण गुप्त कवि और भारतीय संस्कृति के अख्याता पृ० 51,
28. डॉ० के०एस० मणि - मैथिलीशरण गुप्त और वल्लात्तोल का तुलनात्मक अध्ययन पृ० -55,
29. डॉ० कमलाकान्त पाठक -मैथिलीशरण गुप्त व्यक्तित्व और काव्य पृ० सं०- 307,
30. डॉ० राधेश्याम शर्मा -मैथिलीशरण गुप्त पृ० - 25,
31. डॉ० कमलाकान्त पाठक -मैथिलीशरण गुप्त व्यक्तित्व और काव्य पृ० सं०- 305,
32. डॉ० के०एस० मणि - मैथिलीशरण गुप्त और वल्लात्तोल का तुलनात्मक अध्ययन पृ० -56,
33. डॉ० उमाकान्त - मैथिलीशरण गुप्त कवि और भारतीय संस्कृति के अख्याता पृ० 54,
34. डॉ० के०एस० मणि - मैथिलीशरण गुप्त और वल्लात्तोल का तुलनात्मक अध्ययन पृ० -56,
35. गुरुकुल - मैथिलीशरण गुप्त पृ० - 24,
36. डॉ० कमलाकान्त पाठक -मैथिलीशरण गुप्त व्यक्तित्व और काव्य पृ० सं०- 268,

37. डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल (प्रधान सम्पा०) राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन ग्रंथ -पृ० 570,
38. डॉ० कमलाकान्त पाठक -मैथिलीशरण गुप्त व्यक्ति और काव्य पृ० - 190,
39. डॉ० उमाकान्त - मैथिलीशरण गुप्त कवि और भारतीय संस्कृति के अख्याता पृ० 57,
40. डॉ० नगेन्द्र - साकेत एक अध्ययन पृ० - 176,
41. यशोधरा - मैथिलीशरण गुप्त -पृ० - 4,
42. डॉ० के०एस० मणि - मैथिलीशरण गुप्त और वल्लात्तोल का तुलनात्मक अध्ययन पृ० -59,
43. डॉ० कमलाकान्त पाठक -मैथिलीशरण गुप्त व्यक्ति और काव्य पृ० - 549,
44. डॉ० कमलाकान्त पाठक -मैथिलीशरण गुप्त व्यक्ति और काव्य पृ० - 323,
45. डॉ० के०एस० मणि - मैथिलीशरण गुप्त और वल्लात्तोल का तुलनात्मक अध्ययन पृ० -61,
46. डॉ० उमाकान्त - मैथिलीशरण गुप्त कवि और भारतीय संस्कृति के अख्याता पृ० 63,
47. नहुष (पतन) मैथिलीशरण गुप्त पृ० - 39,
48. डॉ० के०एस० मणि - मैथिलीशरण गुप्त और वल्लात्तोल का तुलनात्मक अध्ययन पृ० -62,
49. डॉ० कमलाकान्त पाठक -मैथिलीशरण गुप्त व्यक्ति और काव्य पृ० - 223,
50. काबा और कर्बला (आवेदन) - मैथिलीशरण गुप्त पृ० - 5,
51. वही, पृ० - 4
52. डॉ० कमलाकान्त पाठक -मैथिलीशरण गुप्त व्यक्ति और काव्य पृ० - 219,
53. अजित, (निवेदन) मैथिलीशरण गुप्त पृ० 3,
54. डॉ० कमलाकान्त पाठक -मैथिलीशरण गुप्त व्यक्ति और काव्य पृ०- 287-288,
55. पृथ्वीपुत्र, (भूमिका) मैथिलीशरण गुप्त पृ० 5,
56. डॉ० उमाकान्त - मैथिलीशरण गुप्त कवि और भारतीय संस्कृति के अख्याता पृ० 71,

57. डॉ० के०एस० मणि - मैथिलीशरण गुप्त और वल्लात्तोल का तुलनात्मक अध्ययन पृ० - 65,
58. वही, पृ० - 65,
59. अंजलि और अर्घ्य - मैथिलीशरण गुप्त - पृ० 7,
60. डॉ० के०एस० मणि - मैथिलीशरण गुप्त और वल्लात्तोल का तुलनात्मक अध्ययन पृ० -66,
61. जयभारत (केशों की कथा) मैथिलीशरण गुप्त व्यक्ति और काव्य पृ० - 308,
62. डॉ० कमलाकान्त पाठक -मैथिलीशरण गुप्त व्यक्ति और काव्य पृ०- 237,
63. डॉ० के०एस० मणि - मैथिलीशरण गुप्त और वल्लात्तोल का तुलनात्मक अध्ययन पृ० - 68,
64. डॉ० कमलाकान्त पाठक -मैथिलीशरण गुप्त व्यक्ति और काव्य पृ०- 250.
65. डॉ० आचार्य वाजपेयी - आधुनिक साहित्य (भूमिका) पृ० - 26,
66. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल -हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ० -223,
67. डॉ० कमलाकान्त पाठक - मैथिलीशरण गुप्त व्यक्ति और काव्य पृ०- 261,
68. पद्य प्रबन्ध (बाह्यणों से विनय-पद्य-15) मैथिलीशरण गुप्त पृ० - 47,
69. पद्यप्रबन्ध (पद्य-7) - मैथिलीशरण गुप्त पृ० - 10,
70. स्वदेश-संगीत - मैथिलीशरण गुप्त पृ० - 31,
71. डॉ० कमलाकान्त पाठक -मैथिलीशरण गुप्त व्यक्ति और काव्य पृ० -263
72. डॉ० कमलाकान्त पाठक -मैथिलीशरण गुप्त व्यक्ति और काव्य पृ०- 268,
73. डॉ० कमलाकान्त पाठक -मैथिलीशरण गुप्त व्यक्ति और काव्य पृ०- 272,
74. डॉ० कमलाकान्त पाठक -मैथिलीशरण गुप्त व्यक्ति और काव्य पृ०- 285,
75. वही, पृ० - 285,
76. सुधाकर पाण्डेय (सम्पा०) हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास (नवम भाग) पृ०-283,
77. वही, पृ० - 285,
78. डॉ० कमलाकान्त पाठक -मैथिलीशरण गुप्त व्यक्ति और काव्य पृ०- 46,

79. सम्मेलन -पत्रिका (त्रैमासिक) सम्पा0 - डॉ0 प्रेमनारायण शुल्क पृ0 - 221,
80. सुधाकर पाण्डेय (सम्पा0) हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास (नवम भाग) पृ0-286,
81. वही, पृ0 - 288,
82. सम्मेलन -पत्रिका (त्रैमासिक) सम्पा0 - डॉ0 प्रेमनारायण शुल्क पृ0 - 241,
83. डॉ0 कमलाकान्त पाठक -मैथिलीशरण गुप्त व्यक्ति और काव्य पृ0- 47,
84. वही, पृ0 - 601,
85. वही, पृ0 - 604,
86. शकुंतला (स्मृति)- मैथिलीशरण गुप्त पृ0 - 29,
87. डॉ0 उमाकान्त - मैथिलीशरण गुप्त कवि और भारतीय संस्कृति के अख्याता पृ0 -368,
88. डॉ0 कमलाकान्त पाठक -मैथिलीशरण गुप्त व्यक्ति और काव्य पृ0- 605,
89. वही, पृ0 606,
90. विरहिणी ब्रजांगना-अनुवादक-मधुप (विज्ञापन) पृ0 मुख्य
91. डॉ0 कमलाकान्त पाठक -मैथिलीशरण गुप्त व्यक्ति और काव्य पृ0- 614,
92. विरहिणी ब्रजांगना- अनुवाद (वंशी ध्वनि) पृ0 - 6,
93. वीरांगना - अनुवादक - पृ0 102,
94. डॉ0 कमलाकान्त पाठक -मैथिलीशरण गुप्त व्यक्ति और काव्य पृ0- 622.
95. डॉ0 कमलाकान्त पाठक -मैथिलीशरण गुप्त व्यक्ति और काव्य पृ0- 623.
96. वीरांगना - (अनुवाद) पंचम सर्ग - पृ0 45,
97. डॉ0 उमाकान्त - मैथिलीशरण गुप्त कवि और भारतीय संस्कृति के अख्याता पृ0 360,
98. वीरांगना (अनुवाद) एकादश सर्ग - पृ0 99,
99. मेघनाद-वध-निवेदन पृ0,
100. वही काव्यानुवाद -निवेदन पृ0 -13,
101. डॉ0 उमाकान्त - मैथिलीशरण गुप्त कवि और भारतीय संस्कृति के अख्याता पृ0 365,

102. मेघनाद-वध (काव्यानुवाद) -प्रथम सर्ग -पृ० - 179,
103. डॉ० कमलाकान्त पाठक -मैथिलीशरण गुप्त व्यक्ति और काव्य पृ०- 618,
104. डॉ० उमाकान्त - मैथिलीशरण गुप्त कवि और भारतीय संस्कृति के अख्याता पृ० 359,
105. डॉ० उमाकान्त - मैथिलीशरण गुप्त कवि और भारतीय संस्कृति के अख्याता पृ० 372,
106. डॉ० कमलाकान्त पाठक -मैथिलीशरण गुप्त व्यक्ति और काव्य पृ०- 645,
107. वही, पृ० - 646,
108. डॉ० कमलाकान्त पाठक -मैथिलीशरण गुप्त व्यक्ति और काव्य पृ०- 565,
109. सम्मेलन-पत्रिका (त्रैमासिक) सम्पा० - डॉ० प्रेमनारायण शुल्क पृ० -215-216,
110. वही, पृ० - 216,
111. वही, पृ० - 218,
112. डॉ० कमलाकान्त पाठक -मैथिलीशरण गुप्त व्यक्ति और काव्य पृ०- 597,
113. वही, पृ० - 598,
114. वही, पृ० - 598,
115. वही, पृ० - 598,
116. वही, पृ० - 599,
117. डॉ० राघव प्रकाश (सह-सम्पा०) मैथिलीशरण गुप्त और तत्कालीन भारतीय साहित्यिक परिवेश - पृ० - 16,
118. सम्मेलन -पत्रिका (त्रैमासिक) सम्पा० - डॉ० प्रेमनारायण शुल्क पृ० - 222,
119. डॉ० राघव प्रकाश (सह-सम्पा०) मैथिलीशरण गुप्त और तत्कालीन भारतीय साहित्यिक परिवेश - पृ० - 17,
120. डॉ० राघव प्रकाश (सह-सम्पा०) मैथिलीशरण गुप्त और तत्कालीन भारतीय साहित्यिक परिवेश - पृ० - 17,

षष्ठ अध्याय

मैथिलीशरण गुप्त जी के काव्य में देशभक्ति की भावना

समीक्षात्मक अध्ययन

- ▶ भारत के प्रति प्रेम -
- ▶ अतीत में देशभक्ति -
- ▶ वर्तमान दशा के विभिन्न पक्षों में देशभक्ति -
- ▶ सामाजिक दशा और देशभक्ति -
- ▶ धार्मिक दशा और देशभक्ति -
- ▶ राजनैतिक दशा और देशभक्ति -

मैथिलीशरण गुप्त जी के काव्य में देशभक्ति की भावना समीक्षात्मक अध्ययन

मैथिलीशरण गुप्त ने अपने काव्यों में देशभक्ति की भावना को सर्वोच्च स्थान प्रदान किया और अपनी कविताओं के माध्यम से राष्ट्रीय भावों का सर्वाधिक प्रचार एवं प्रसार किया। गुप्त जी के साहित्य में देशभक्ति के निम्न रूप मिलते हैं-

भारत के प्रति प्रेम ।
अतीत में देशभक्ति ।
वर्तमान दशा के विभिन्न पक्षों में देशभक्ति ।
सामाजिक दशा और देशभक्ति ।
धार्मिक दशा और देशभक्ति ।
राजनैतिक दशा और देशभक्ति ।

भारत के प्रति प्रेम

भारत हमारी मातृभूमि है। भारत देश विशाल देश है। अपने देश से प्रेम करना देशभक्ति है। वाल्मीकीय रामायण में भगवान् राम ने देश-प्रेम की महिमा का वर्णन करते हुए कहा है-

अपि स्वर्णमयी लंका न में लक्ष्मण रोचते।
जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसि।¹

सुप्रसिद्ध साहित्यकार बंकिमचन्द्र चटर्जी ने भारत वन्दना करते हुए लिखा है-

वन्दे मातरम्।
सुजलाम् सुफलाम् मलयज-शीतलाम्
शस्यश्यामलाम् मातरम् ।²

ज्योतिप्रसाद अग्रवाल (1903-1951) ऐसे कवि संगीतकार और नाटककार थे जिन्होंने स्वाधीनता संग्राम में सक्रिय भाग लिया था। स्वाधीनता संग्राम के दौरान ज्योतिप्रसाद गीत रचकर उन्हें अपनी विशिष्ट शैली में स्वरबद्ध करते थे। इनमें से अधिकतर गीत देश-प्रेम और राष्ट्रीयता के भावों से भरपूर थे ज्योति प्रसाद भारत को वृहत्तर संस्कृति का अंग मानते थे।-

मेरे भारत की संस्कृति
मेरे स्वप्नों की संस्कृति
चिरंतन सौंदर्यमयी है ।³

उड़िया कवि राधानाथ राय की कविताओं में देशभक्ति का स्वर सबसे पहले सुनाई दिया। पराधीन भारतवर्ष की दुर्दशा देखकर उन्हें काफी दुःख हुआ था। देशभक्ति भावना से उनका हृदय लबालब भर चुका था। भारत जननी का गुणगान करते हुए उन्होंने कहा-

यह भारत भूमि हमारी जननी
नहीं पुण्य भूमि इससे बढ़कर।⁴

कन्नड़ कवि कुर्वेपु देशभक्ति की पहली शर्त मानते हैं देश के प्रति अनुराग। वह ऐसे व्यक्ति की कल्पना भी नहीं कर सकते जो अपने देश के प्रति अनुराग न रखता हो। 'मेरा देश' नामक कविता में वे लिखते हैं-

मेरा देश यह
यह मेरा देश
यों जो कहेगा नहीं
है उसका हृदय श्मशान ।⁵

तमिल में देशभक्ति की भावना सन् 1877 ई० में रामसामी राज के 'प्रताप चंद्र विलायम' नामक नाटक में भी देखने को मिलती है। इसमें देशभक्तिपूर्ण कुछ कविताएँ हैं और एक राष्ट्रवादी पात्र का चरित्रांकन किया गया है। देशभक्त नामक वह पात्र देशभक्ति की महिमा का गान निम्नलिखित शब्दों में करता है-

जिसे अपने देश से प्रेम नहीं
जिसे अपने देश वासियों से प्रेम नहीं है
वह जंगली जानवर ही है
छह इंद्रियों वाला मनुष्य कदापि नहीं है।⁶

तेलुगु कवि टेकुमल्ल कामेश्वर राव ने अपने गीतों में मातृ-देश तथा देशभक्त के महत्त्व का गौरवगान किया है-

मातृदेशमु कंटे
मरि दैवतमु लेदु
देशभक्तुनिकंटे
दिव्यमक्तुदु लेहु।⁷

(अर्थात् मातृदेश से बढ़कर अन्य कोई भगवान नहीं है। देश भक्त से बढ़कर अन्य कोई दिव्यभक्ति नहीं है।)

देशभक्ति की भावना मध्यकालीन हिन्दी कवियों में प्रबल रूप से दिखाई देती है। लगभग सभी कवियों ने उन देशभक्तों की प्रशंसा के गीत गाए जिन्होंने मातृभूमि के लिए अपना सर्वस्व बलिदान कर दिया। माखनलाल चतुर्वेदी 'एक-फूल की चाह' कविता में लिखते हैं कि फूल को न देवता के चरणों में अर्पित होने की इच्छा है, न सुंदरी के जूड़े में गुंधने की आकाँक्षा उसकी तो एक मात्र चाह है- उस रास्ते पर फेंके जाने की जिस रास्ते से देश की आज़ादी के मतवाले अपने प्राण देने के लिए शूली की ओर बढ़ रहे हों-

मुझे तोड़ लेना बनमाली उस पथ पर देना तुम फेंक।
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने जिस पथ जाएँ वीर अनेक।।⁸

आधुनिक भारतीय साहित्य में देशभक्ति की भावना का विकास एक संपूर्ण इकाई के रूप में अंग्रेजों के शासन-काल में दिखाई दिया। इतिहास इस बात का साक्ष्य है कि 19 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध से ही ब्रिटिश शासन के विरुद्ध विद्रोह तथा उनकी निरंकुशता एवं साम्राज्यवादी मनोवृत्ति के विरोध में सभी भारतीय भाषाओं के कवियों ने अपना सामूहिक आक्रोश व्यक्त किया है। भारत के सभी भाषाओं के प्रसिद्ध कवियों ने स्वतंत्रता-आन्दोलन के युग में अपनी सशक्त लेखनी द्वारा देशभक्ति की भावना से ओत-प्रोत कविताओं की रचना की है।

कवि डॉ० इकबाल ने 'तरानए हिन्द' में भारत देश की तारीफ़ में लिखा है-

सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा
हम बुलबुलें हैं इसके यह गुलिस्ताँ हमारा,

उर्दू के लोकप्रिय शायर जोश मलीहाबादी ने 'वतन' में भारत देश की महीमा का गुणगान कुछ इस प्रकार से किया है-

ऐ वतन ! आज से क्या हम तेरे शौदाई हैं
आँख जिस दिन से खुली तेरे तमन्नाई है
मुद्दतों से तेरे जल्वों के तमाशाई हैं
हम तो बचपन से तेरे आशिको - सौदाई हैं ।⁹

मैथिलीशरण गुप्त भारतीयता के कवि हैं। उनके काव्यों में भारतीयता का रंग कहीं प्रकट और कहीं अप्रकट है। लेकिन गुप्तजी कभी इस मूलधारा से विचलित नहीं हुए। अर्थात् गुप्त जी की रचनाओं का वैचारिक आधार भारतीयता की बुनियाद पर स्थित है।

गुप्त जी के काव्यों की देशभक्ति चेतना द्विवेदी युग की सर्वस्वीकृत प्रवृत्ति है, देश-भक्ति चेतना का जो अग्रगामी स्वर उनके काव्यों में गुंजायमान है उसका भारतीय सन्दर्भ कितना मूल्यवान है। “कवियों ! उठो, अब तो, अहो कवि कर्म की रक्षा करो”¹⁰ कहकर स्वयं को तथा अपने पथ के साथियों को जागृत करने का कार्य गुप्त जी ने किया है। स्पष्ट है कि गुप्त जी का मूल दृष्टिकोण दुर्दशाग्रस्त मातृभूमि के हितार्थ कवि-कर्म को परिभाषित करने का रहा है। यही से गुप्त जी की भावना का स्फुरण होता है, और वह निरंतर विकसित होती रही है।

मैथिलीशरण गुप्त जी ने ‘भारत-भारती’ में भारतभूमि को पुण्यलीला स्थल, ऋषिभूमि तथा अनेक भव-भूतियों का भण्डार बतलाते हुए भारतवर्ष का गौरव प्रकट किया है-

भू-लोक का गौरव, प्रकृति का पुण्य लीला-स्थल कहाँ
फैला मनोहर गिरि हिमालय और गंगाजल जहाँ।
सम्पूर्ण देशों से अधिक किस देश का उत्कर्ष है?
उसका कि जो ऋषिभूमि है, वह कौन? भारतवर्ष है।¹¹

गुप्त जी को भारतवर्ष की भव्यता से बड़ा मोह था, उनकी मान्यता है कि भले-ही मनुष्य विदेश में चला जाये, लेकिन उसके हृदय में सदैव ही अपने कुल की और स्वदेश-प्रेम की भावना सजग रहती है-

तुझमें अब भी कुल-रीति-नीति है मेरी,
इस कारण तुझ पर परा प्रीति है मेरी।
पाता हूँ जग में कहीं न तेरी समता,
होती विदेश में ही स्वदेश की ममता।¹²

मैथिलीशरण गुप्त जी ने मातृभूमि की रक्षा करना देशवासियों का महान् कर्तव्य माना है। वीर कुम्भा का कथन इस बात का समर्थन करता है कि माता और मातृभूमि स्वर्ग से भी श्रेष्ठ है। अतः उनकी रक्षा अपने प्राणों को देकर भी करनी चाहिए -

स्वर्ग से भी श्रेष्ठ जननी जन्मभूमि कही गई,
सेवनीया है सभी की वह महामहिमामयी।

X X X
कौन मेरे प्राण रहते देख सकता है इसे ।¹³

मैथिलीशरण गुप्त जी के काव्यों में देशभक्ति की भावना प्रचुर मात्रा में पायी जाती है। नहुष तो अपनी मातृभूमि को इतना पवित्र मानते हैं कि उस पर नक्षत्र-लोक को भी न्यौछावर करने की सोचते हैं-

मेरी भूमि तो है पुण्य भूमि वह भारती,
सौ नक्षत्र-लोक करें आके आप आरती।¹⁴

साकेत महाकाव्य में भगवान् राम अपनी जन्मभूमि अयोध्या से गौरव, गर्व और मान की कामना करते हैं-

जन्मभूमि ले प्रणति और प्रस्थान दे,
हमको गौरव, गर्व और निज मान दे।¹⁵

भारत के सांस्कृतिक गौरव का गुप्त जी ने अपने साहित्य में सुन्दर वर्णन किया है। भारत-भारती में भारतीय संस्कृति की उज्ज्वलता एवं उत्कृष्टता को बताते हुए गुप्त जी कहते हैं 'कि हमारी संस्कृति इतनी उन्नत थी कि संसार के लोग हमारा शिष्यत्व ग्रहण करते थे -

यूनान ही कह दे कि वह ज्ञानी-गुणी कब था हुआ?
कहना न होगा, हिन्दुओं का शिष्य वह जब था हुआ।
हमसे अलौकिक ज्ञान का आलोक यदि पाता नहीं,
तो वह अरब यूरोप का शिक्षक कहा जाता नहीं।¹⁶

कवि के मतानुसार नारी में देश-प्रेम, देश सेवा और स्वाभिमान तथा जातीय गौरव की भावना पुरुष से कम नहीं है। 'अर्जन-विसर्जन' काव्य में मरू की रानी मूर महिषी रानी काहिना का स्वतंत्र प्रेम और आत्मविश्वास सराहनीय हैं-

स्वतन्त्रता के अर्थ हमारे निकट कौन सा मल्यू महान्?
धन क्या, यह जीवन भी अपना कर दे हम उस पर बलिदान,
यहाँ अकिंचन होकर भी हम होंगे कभी न दीन व हीन
जब तक जगती में अपने को मान सकेंगे हम स्वाधीन।¹⁷

गुप्त जी उन्हीं नर-नारियों को और उनके सगे-सम्बन्धियों को धन्य मानते हैं। जो मातृभूमि की गौरव-रक्षा के लिए वीरगति को प्राप्त होते हैं-

किन्तु धन्य हैं वे नर-नारी धन्य, जिनके
पुत्र, पति, भाई और बंधु बड़-बड़ के
वीरगति पावें रख मान मातृभूमि का।¹⁸

अतीत-काल में देशभक्ति-

मनुष्य की प्रवृत्ति है कि वह संकट के समय अपने अच्छे तथा सुख-मय जीवन का स्मरण करता है। संकटकाल में उसे सुख के दिन याद आते हैं। जब कोई देशभक्त-प्रेमी देश को गुलामी एवं शोषण की दो पाटों के बीच पिसता हुआ देखता है तो उसे अपने देश का गौरवपूर्ण अतीत याद आता है। भारत एक ऐसा देश है जिसका अतीत अत्यन्त गौरवशाली श्रेष्ठ एवं विशाल सभ्यता का शिरोमणि रहा है। अंग्रेजों के अत्याचार से पीड़ित होकर भारतीय जनता एवं साहित्यकार अतीत का स्मरण एवं गुणगान करने लगे।¹⁹

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने भारत के अतीत का स्मरण एक देशभक्त के रूप में किया। 'भारत-भारती' गुप्त जी की पहली राष्ट्रीय कृति है, जिसमें हम अतीत गौरव की मुखरता प्रमुखता के साथ पाते हैं। भारत-भारती में गुप्त जी ने अपनी उद्बोधनात्मक एवं उपदेशात्मक शैली में, देश के हताश, दलित एवं उत्पीड़ित चैतन्य को, अतीत के गौरवास्पद शौर्य एवं वीरोचित साहस का स्मरण करते हुए, देश की दुर्दशा के विरुद्ध उठ खड़े होने हेतु ललकारा है। वे कहते हैं-

हम कौन थे, क्या हो गये हैं और क्या होंगे अभी
आओं विचारें, आज मिलकर हम समस्याएँ सभी।

X X X

जिसकी अलौकिक कीर्ति से उज्ज्वल हुई सारी मही,
था जो जगत का मुकुट है क्या हाय यह भारत वही?

X X X

कवियों उठो, अब तो अहो कवि-कर्म की रक्षा करो,
सब नीच भावों का हरण कर, उच्च भावों को भरो।²⁰

अतीत की गरिमाओं से युक्त भारत देश, सभ्यता एवं संस्कृति में दूसरे देशों से बढ़ा-चढ़ा था। साहित्य और कला-कौशल में इसकी बराबरी का कोई देश धरती पर नहीं था। इसके वीरों की बात का तो कहना ही क्या। कवि के शब्दों में -

थे कर्मवीर कि मृत्यु का भी ध्यान कुछ करते न थे,
थे युद्धवीर कि कला से भी हम कभी डरते न थे,
थे दानवीर कि देह का भी लोभ हम करते न थे,
थे धर्मवीर कि प्राण के भी मोह पर मरते न थे।²¹

इस प्रकार के वीर एवं विशिष्ट विभवों से भरे भारत को परतंत्र होकर अपनी दीन-हीन अवस्था में दिन बिताने पड़े, यह बड़ा ही दुःखदायक है। कवि को इसकी चिन्ता में आहें भरते देखिए-

भारत, कहो तो आज तुम क्या हो वही भारत अहो।
हे पुण्यभूमि ! कहाँ गई है वह तुम्हारी श्री, अहाँ।²²

आदर्श, दर्शन, समृद्धि, सभ्यता और संस्कृति की ऊँची चोटी पर विराजमान अतीत कालीन भारतवर्ष कवि के अनुसार विश्व के सभी देशों से ऊँचा, गर्वोन्नत, भव्य और महत्त्वपूर्व था-

हां, वृद्ध भारतवर्ष ही संसार का सिरमौर है,
ऐसा पुरातन देश कोई विश्व में क्या और है?
भगवान की भव-भूतियों का यह प्रथम भण्डार है।
विधि ने किया नर-सृष्टि का पहले यही विस्तार है।²³

मैथिलीशरण गुप्त जी अतीत के प्रति अखण्ड विश्वास रखते थे। वे मानते थे कि भारत की प्राचीन सभ्यता ही जनता को वह सन्देश, वह प्रेरणा दे सकती है, जिससे कल्याण हो सके। गुप्त जी का विश्वास था कि ज्यों-ज्यों अतीत की खोज बढ़ती जायेगी त्यों-त्यों हमारा वर्तमान उज्ज्वल बनता जायेगा।-

ज्यों ज्यों प्रचुर प्राचीनता की खोज बढ़ती जायगी।
त्यों त्यों हमारी उच्चता पर ओप चढ़ती जायगी।²⁴

वैज्ञानिक दृष्टिकोण से भारत का अतीत अति समृद्धिशाली रहा है। चिकित्सा के क्षेत्र में आज हम जिस पाश्चात्य-पद्धति का अनुसरण कर रहे हैं वह विश्व को भारत के अतीत की ही देन है। भारत-भारती में गुप्त जी का निम्न कथन इसका प्रमाण है-

है आजकल की डाकटरी जिससे महामहिमामयी,
वह 'आसुरी' नामक चिकित्सा है यही से ली गयी।
नाड़ी-नियत-युत रोग के निश्चित निदान हुए यहाँ
सब औषधों के गुण समझकर रस-विद्यान हुए यहाँ ।।²⁵

मैथिलीशरण गुप्त ने भारत की स्त्रियों की महिमा का भी गुणगान किया है गुप्त जी ने सुविख्यात 'भारत-भारती' के 'अतीत खण्ड' में नारी के गौरवमय आदर्श प्रस्तुत किए हैं, यथा -

गृह देवियाँ भी थी हमारी देवियाँ ही सर्वथा
 x x x
 विदुला, सुमित्रा और कुन्ती-तुल्य माताएँ रही।
 x x x
 थी धन्य सावित्री- सुकन्या और अंशुमती यही।²⁶

मैथिलीशरण गुप्त जी को भारत के उज्ज्वल अतीत और भारतीय परम्पराओं पर गर्व रहा है। गंगा, यमुना, सरयू हिमालय हमारे लिए केवल नदी और पर्वत ही नहीं है बल्कि ये हमारे गौरव के प्रतीक और हमारे जीवन के प्रेरक बन गये हैं। जिसको कवि ने साकेत की इन पंक्तियों में चित्रित किया है-

जय गंगे आनंद-तरंगे, कलरवे,
 अमल-अंचले, पुण्यजले, दिव-सम्भवे।
 सरस रहे यह भारत-भूमि तुमसे सदा,
 हम सबकी तुम एक चलाचल सम्पदा।²⁷

राष्ट्रकवि अपने काव्यों के माध्यम से भारतीय मूल्यों को अभिव्यक्ति दी है। भारतीय समाज को अपने स्वर्णिम अतीत का स्मरण करा, हीनता की भावना से मुक्त होने को संप्रेरित किया है। गुप्त जी को अपने देश की अस्मिता पर गर्व है। उर्मिला से साकेत में वे कहलाते हैं-

किस धन से है रिक्त कहो सुनिकेत हमारे,
 उपवन फल सम्पन्न, अन्नमय खेत हमारे।
 जय पयस्य परिपूर्ण सुघोषित घोष हमारे
 अगणित आकर, सदा स्वर्णमय कोष हमारे।²⁸

कवि ने भारतवर्ष को भगवद्भूमि कहा है। उन्हीं व्यक्तियों को उन्होंने धन्य और पुण्यात्मा माना है जो यहाँ उत्पन्न हुए हैं-

धन्य दशरथ-जनक-पुण्योत्कर्ष है,
 धन्य भगवद्भूमि- भारतवर्ष है।²⁹

‘वैतालिक’ का प्रकाशन सन् 1916 में हुआ। इसका लक्ष्य भारतीय जनता को देश के पूर्व गौरव को स्मरण दिलाना एवं उन्हें जागृत करना है। काव्य के प्रारम्भ में कवि कहता है-

फिर आपने को याद करो,
 उठो अलौकिक भाव भरो।³⁰

गुप्त जी जातीय-गौरव में सम्मानकर्ता और वर्तमान में जीते हुए अतीत से प्रेरित सर्जनशील विचारक कवि हैं। तभी भारत की उन्नति के सजग प्रेरक तथा भारत-गौरव के स्वप्न दृष्टा बनकर वे कहते हैं-

सन्देश यहाँ मैं नहीं स्वर्ग का लाया,
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया।³¹

मैथिलीशरण गुप्त जी ने अपनी रचनाओं द्वारा भारतीय-जनता को बराबर अतीत की ओर ले जाने का प्रयत्न किया। वे मानते थे कि पराधीनता के शिथिल वातावरण में अतीत की जय भेरी ही जागरण उत्पन्न कर सकेगी-

वही करेगा हमें सचेत और वही देगा संकेत
दे सकता है वही प्रबोध और हमें जीवन का शोध।³²

कवि भारत के स्वर्णिम अतीत गौरव का स्मरण करके दूसरों से भी उसी का स्मरण करने और जागकर काम करने का उद्बोधन करता है-

भारत माता के बच्चे, विश्वबन्धु तुम हो सच्चे।
फिर तुमको किसका भय है, उद्यत हो, जय ही जय है।³³

कवि मैथिलीशरण गुप्त जी ने लक्ष्मण के माध्यम से स्वतंत्रता संग्राम और राष्ट्रीय जागरण में स्वदेश-प्रेम की भावना को जागृत किया है और राम के माध्यम से प्रेम की सच्चाई और अनिवार्य सात्विकता की ओर संकेत किया है। देश की व्यापक भावभूमि पर जिस स्वार्थहीन प्रेम और समर्पण-भाव की अपेक्षा थी और जो तमाम अन्तर्विरोधों के बीच फल-फूल रही थी, उसका यथार्थ चित्रण अतीत की घटनाओं में बँधकर प्रस्तुत हुआ है-

“मुझे आत्म-रक्षा के पहले
है स्वदेश-रक्षा कर्तव्य
माँ के लिए छोड़ सकता हूँ
मैं ये प्राण, रहे अधिकार”।³⁴

मैथिलीशरण जी का अतीत-प्रेम, वर्तमान के सहचर्य में ही पलता रहा है। कवि ने ‘द्वापर’ में निम्नलिखित शब्दों में स्पष्टतः वर्तमान के प्रति अनुरक्ति प्रदर्शित की है-

अपने युग को हीन समझना आत्महीनता होगी,
सजग रहो, इससे दुर्बलता और दीनता होगी।
जिस युग में हम हुए, वही तो अपने लिए बड़ा है,
अहा ! हमारे आगे कितना कर्मक्षेत्र पड़ा है।³⁵

श्री गुप्त जी का सम्पूर्ण साहित्य अतीत को आदर्श मानकर, वर्तमान को प्रेरणा देने वाला साहित्य है वे वकसंहार में कहते हैं-

अब भूत चाहे भूत है
पर वह बड़ा ही पूत है
इतिहास देता है हमें इसका पता।³⁶

वर्तमान दशा के विभिन्न पक्षों में देशभक्ति-

साहित्यकार समाज में जन्म लेता है। समाज में प्रचलित परम्पराएँ, भाव और विचार उसे प्रभावित करते हैं। साहित्यकार समकालीन सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक और साहित्यिक परिस्थितियों से प्रभावित होता है। इसीलिए साहित्यकार की रचनाओं द्वारा उस काल की वास्तविक दशा का बोध प्राप्त होता है।³⁷

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने अपने साहित्य के माध्यम से वर्तमान काल में देशभक्ति के विभिन्न पक्षों को उजागर किया है। मैथिलीशरण गुप्त ने भारत की सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा साहित्यिक दुर्दशा का वर्णन किया है।

सामाजिक दशा और देशभक्ति-

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त जी का जन्म 19 वीं शताब्दी के अंतिम दौर में हुआ था और उन्होंने आज़ाद देश को कई वर्षों तक जाना पहचाना। जिस दौर से मैथिलीशरण गुप्त जी गुजर रहे थे, उसे भारतीय समाज का पुनरुत्थान, नवजागरण या रिनैसां आदि नामों से उल्लेख किया जाता है। 19 वीं शताब्दी के अंतिम दौर में स्थापित कांग्रेस ने भी धीरे धीरे यह अनुभव किया कि स्वतंत्रता के साथ सामाजिक सांस्कृतिक जागरण भी आवश्यक है।³⁸

समाज की सर्वांगीण उन्नति उसकी साधारण जनता की सुख-सुविधा एवं प्रबुद्धता पर निर्भर रहती है। भारत जैसे परतन्त्र देश में इसकी आवश्यकता सर्वोपरि है। देशभक्त कवि मैथिलीशरण गुप्त जी की दृष्टि इस पर विशेष रूप में पड़ी है।

मैथिलीशरण गुप्त जी ने साहित्य के माध्यम से अपने युग के सामाजिक विचार स्थान-स्थान पर व्यक्त किये हैं। गुप्त जी ने देखा कि समाज की प्रगति में यह ऊँच-नीच की भावना बड़ा व्याघात उत्पन्न कर रही है। आज समाज के एक वर्ग ने

अपने को उच्च एवं उन्नत समझकर समाज के दूसरे वर्ग को नीच एवं पतित कहना शुरू कर दिया है, उसे समस्त सामाजिक अधिकारों से वंचित कर दिया है तथा उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा को धूल में मिलाकर उसकी प्रगति एवं उन्नति के पथ को सदैव के लिए अवरुद्ध कर दिया है। इसलिए गुप्त जी समाज के इस पतित, दलित एवं निम्न वर्ग को भी समान आदर एवं समान प्रतिष्ठा दिलाने के लिए पुकार उठे-

उत्पन्न हो तुम प्रभु-पदों से जो सभी को ध्येय है,
तुम हो सहोदर सुरसरी के चरित जिसके गेय है।³⁹

राष्ट्रकवि गुप्त जी ने कबीर और रैदास के उदाहरण देकर समाज के इन निम्न वर्गों को भी श्रेष्ठ एवं महान् बनने के लिए सचेत और सावधान किया तथा उत्तरोत्तर उन्नति के लिए प्रेरणा प्रदान करते हुए कहा -

पूर्त कर्म कर मातृभूमि के बनो विशेष सपूत,
छूत बुरी है, अहोभाग्य है यदि हम हुए अछूत।⁴⁰

श्री मैथिलीशरण गुप्त जी की मान्यता है कि जब तक भारत के सभी वर्ग एवं सभी जातियाँ मिलकर अपनी प्रगति के लिए प्रयत्नशील नहीं होगी, तब तक न तो हम पराधीनता के शिकंजे से मुक्त हो सकते हैं और न अपनी उन्नति ही कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त हिन्दू और मुसलमानों या हिन्दू और सिक्ख अथवा हिन्दू और जैन एवं बौद्ध परस्पर लड़ते ही रहे, तो कभी सामाजिक संगठन स्थापित नहीं हो सकता और बिना संगठन के सशक्त देश की कल्पना करना व्यर्थ है। अतएव कवि ने पहले तो हिन्दू और मुसलमानों से अपील की कि पारस्परिक संघर्ष का परित्याग करें-

हिन्दू - मुसलमान दोनों अब
छोड़े वह विग्रह की नीति,
प्रकट की गई है यह केवल
अपने वीरों के प्रति प्रीति।⁴¹

तत्पश्चात् गुप्त जी ने सामाजिक एकता की स्थापना के लिए हिन्दुओं के सभी वर्गों को यह समझाया कि वे पारस्परिक मनोमालिन्य को छोड़कर मुसलमानों से प्रेम करें।

हिन्दू मुसलमान सब भाई, नित नवीन जय-गान उदार।
वैष्णव, बौद्ध, जैन आदिक हम उस पर हिंसा करें की प्यार।⁴²

भारतीय समाज में धर्म, जाति, मत, सम्प्रदाय, प्रान्तीयता, भाषा आदि के आधार पर अनेक भेद-प्रभेद दिखाई देते हैं, जिनसे निरन्तर सामाजिक विषमता की वृद्धि हो रही है और हमारी एकता एवं अखण्डता नष्ट होती चली जा रही है। अतएव गुप्तजी ने इस व्याप्त भिन्नता में भी अभिन्नता को देखने की अथवा भेद में भी अभेद दृष्टि रखने की सलाह दी, जिससे हमारी सामाजिक एकता खण्डित न हो और हम विदेशी सत्ता के चंगुल से मुक्त होकर सभी प्रकार की सुख-सुविधाएँ प्राप्त कर सकें-

अनुदारता-दर्शक हमारे दूर सब अविवेक हों,
जितने अधिक हों तन भले हैं, मन हमारे एक हों।
आचार में कुछ भेद हो पर प्रेम हो व्यवहार में
देखें, हमें फिर कौन सुख मिलता नहीं संसार में।⁴³

साहित्यकार गुप्त जी ने यहाँ तक बतलाया कि यदि समाज में कही अन्याय एवं अत्याचार दिखाई दे तो उसके विरुद्ध निर्भय होकर आवाज़ उठाओं और आन्दोलन करो-

न्याय-धर्म के लिए लड़ो तुम, ऋत-हित समझो-बूझो,
अनय-राज, निर्दय समाज से निर्भय होकर जूझो।⁴⁴

कवि मैथिलीशरण जी 'भारत-भारती' (1912ई0) में सामयिक समाज का जो सच्चा चित्र मिलता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। गुप्त जी ने भारतीय समाज के प्रत्येक पक्ष पर लिखा है। यथा-

दुर्भिक्ष मानो देह धर के घूमता सब ओर है।
हा ! अन्न ! हा ! हा ! अन्न का रव गूँजता घनघोर है।
जननी बड़ी है और शिशु उसके हृदय पर मुख धरे।
देखा गया है किन्तु वे माँ-पुत्र हैं दोनों मरे।।⁴⁵

भारत एक कृषि प्रधान देश है। मगर भारतीय समाज में कृषकों की स्थिति बड़ी दयनीय है। निरन्तर दुःख में जीवन बिताने वाले किसानों की दशा सुधारे बिना देश की उन्नति नहीं हो सकती। श्री मैथिलीशरण जी ने देश के किसानों का चित्र प्रस्तुत करके समाज सुधार की ओर सबका ध्यान आकृष्ट किया है-

जब अन्य देशों को कृषक सम्पत्ति से भरपूर हैं-
लाते कि जिनसे आठ रूपया रोज़ के मजदूर हैं,
तब चार पैसे रोज़ ही पाते यहाँ कर्षक अहो।
कैसे चले संसार उनका, किस तरह निर्वाह हो?⁴⁶

कवि गुप्त जी ने समाज में नारी की महत्ता का प्रतिपादन किया। उनकी गुलामी की दशा में भारी परिवर्तन होना चाहिए। विलास की सामग्री से परे, अर्धांगिनी के पद की सच्ची अधिकारिणी के रूप में उनका उन्नयन होना चाहिए। कवि की देशभक्ति-भावना इस दिशा में भी प्रकट हुयी है-

ऐसी उपेक्षा नारियों की जब स्वयं हम कर रहे,
अपना किया अपराध उनके शीश पर है धर रहे
भागें न क्यों हम से भला फिर दूर सारी सिद्धियाँ,
पाती स्त्रियाँ आदर जहाँ, रहती वही सब ऋद्धियाँ।⁴⁷

कवि मैथिलीशरण जी ने शिक्षा-प्रचार पर अत्यधिक बल दिया है। अज्ञानपूर्ण एवं पतनोन्मुख समाज के लिए शिक्षा, अन्धे के लिए लकड़ी के समान है। देश की शिक्षा-सम्बन्धी यह दुर्दशा विद्या-कला में हमारे अतीत गौरव की दृष्टि से अत्यन्त दुःखदायक थी। कवि के देश प्रेम ने इस पर भी जोर डाला है-

सबसे प्रथम कर्तव्य है शिक्षा बढ़ाना देश में,
शिक्षा बिना ही पड़ रहे हैं आज हम अब क्लेश में।
शिक्षा बिना कोई कभी बनता नहीं सत्पात्र है,
शिक्षा बिना कल्याण की आशा दुराशा मात्र है।⁴⁸

मैथिलीशरण गुप्त जी का ध्यान समाज में प्रचलित नशेबाजी की ओर भी गया है। उन्होंने इसके प्रभावी चित्र प्रस्तुत किये हैं। यथा-

दो-चार आने रोज़ के भी जो कुली -मजदूर हैं,
सन्ध्या-समय वे भी नशे में दीख पड़ते चूर हैं।
मर जायँ चाहे बाल-बच्चे भूख के मारे सभी,
पर छोड़ सकते हैं नहीं उस दुर्व्यसन को वे कभी।⁴⁹

कृषि-प्रधान भारत में कृषकों का पतन एवं दुर्दशा का गुप्त जी के हृदय पर भारी प्रभाव पड़ा। 'किसान' के चित्रण में यह बात स्पष्ट व्यक्त होती है। जन्म से लेकर मृत्यु तक निरन्तर दुख में दिन बिताने वाले कृषकों के प्रतिनिधि के रूप में उसका चित्रण हुआ है। कृषक के शब्दों में ही उसका दुःख सुनिये -

कड़ी धूप में तीक्ष्ण ताप से तनु है जलता,
पानी बनकर नित्य हमारा रूधिर निकलता।
तदपि हमारे लिए यहाँ शुभफल कब फलता ?
रहता सदा अभाव, नहीं कुछ भी वश चलता।⁵⁰

गुप्त जी ने अपने काव्यों में ऊँच-नीच, जाति-पाँति आदि का विरोध किया है। 'गुरुकुल' का बन्दा-वैरागी हिन्दू हो या मुसलमान किसी को भी ऊँच या नीच नहीं मानता। बल्कि उसमें निहित मानवता की भावना को ही सर्वोपरि मानता है--

हिन्दू हो या मुसलमान हो,
नीच रहेगा फिर भी नीच,
मनुष्यता सबके ऊपर है
मान्य महीमण्डल के बीच।⁵¹

भारतीय समाज में जप, तप, वेद, यज्ञ, पूजा, आदि अनेक प्रथाएँ प्रचलित हैं। कवि कि इनके प्रति अपार श्रद्धा है। परन्तु यज्ञ में ही दी जाने वाली बलि का गुप्तजी ने घोर विरोध किया है। वे बलि को क्रूर हिंसा की संज्ञा देते हुए 'शक्ति' काव्य में लिखते हैं--

इसके आगे इसके आगे पापी का संहार
लीक पीटते हैं हम जिसकी अब जीवों को मार।
कहाँ दृष्ट-वध और कहाँ यह हत्या अत्याचार?
हिंसा और वीरता के हैं भिन्न-भिन्न व्यवहार।⁵²

जय भारत में कवि ने मौका पाते ही भारतीय गरीब बच्चों की दर्द-पूर्ण गरीबी की ओर ध्यान आकृष्ट किया है। अश्वत्यामा और उसकी माँ की बातचीत अभावग्रस्त भारतीय बच्चों की कहानी है--

“संगिजनों-सा दूध पियूँगा मैं भी- बोला ।
उसकी माँ ने सजल दृष्टि से उनको देखा,
दूध कहाँ था वहाँ, दृश्य था करुण बड़ा ही।
“अम्ब दूध” फिर कहा पुत्र ने आँचल धरकर,
“वत्स, अभी” वह गई मोहिनी घर के भीतर।
ले आई यव-चूर्ण घोलकर कोरे जल में,
पीकर, पुत्र प्रसन्न, कूद बाहर था पल मे।”⁵³

‘हिन्दू’ एक ऐसी रचना है जिसमें पूरे हिन्दुस्तान का दर्द अभिव्यक्त हुआ है, कभी इतिहास के साथ तो कभी वर्तमान के साथ। हिन्दू में कवि सम्पूर्ण भारत की वेदना को लेकर प्रस्तुत हुआ है--

किन्तु नीच उठ सकें न यत्र
होंगे पतित उच्च भी तत्र।⁵⁴

भारत का सद्भाव सुन चुका हूँ मैं पहले,
वह है ऐसी भूमि विभिन्न मतों को सहले।
चाहा था इसलिए वही जाकर रह जाऊँ,
किन्तु विरोधी नहीं चाहते मैं जी पाऊँ।⁵⁸

धार्मिक-दशा और देशभक्ति-

भारतवर्ष प्रारम्भ से ही एक धर्मपरायण देश रहा है। यहाँ धर्म को लोक कल्याण तथा मोक्ष दोनों का ही प्रदाता समझा गया है। इस देश में वैयक्तिक जीवन, सामाजिक आदर्श राजनीतिक नियम, शिल्पकला, मूर्तिकला, संगीत, सहित्य आदि असम्बद्ध रूप से विकसित नहीं हुए। इन सभी के मूल में धार्मिक चेतना का खाद विद्यमान है।⁵⁹

मैथिलीशरण गुप्त जी ने अपने युग के धार्मिक विचारों का भली-भाँति अध्ययन किया और यथोचित रूप में अपने काव्यों में उन्हें अंकित करके जन-जीवन में नवीन धार्मिक क्रांति लाने का प्रयत्न किया। गुप्त जी परम वैष्णव थे और मर्यादा-पुरुषोत्तम राम के अनन्य भक्त हैं। उन्होंने अपनी समस्त रचनाएँ राम के मंगलाचरण के साथ ही आरम्भ की हैं। इसका यह तात्पर्य नहीं है कि वे अन्य देवों का स्मरण करते ही नहीं। वे कृष्ण का भी स्मरण कर सकते हैं। किन्तु उनका मन राम की तरह और किसी पर तन्मयता से रमता नहीं है-

निज मर्यादा-पुरुषोत्तम ही मानव का आदर्श,
नहीं और कोई कर पाता मेरा हृदय-स्पर्श।⁶⁰

गुप्त जी ने राम के अवतार के महत्त्व को बतलते हुए दृढ़ कण्ठ से घोषित किया कि भू-लोक में मनुष्यत्व का सफल अभिनय करने, लोक में अलौकिक आदर्श स्थापित करने नर को नारायण बनाने और त्रास-विकल भूतल को स्वर्ग बनाने के लिए ही राम ने जन्म लिया था -

भव में नव वैभव व्याप्त कराने आया,
नर को ईश्वरता प्राप्त कराने आया।
सन्देश यहाँ मैं नहीं स्वर्ग से लाया,
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया।⁶¹

समाज के विभिन्न धर्मावलम्बियों के बीच सहिष्णुता एवं सहयोग भावना होने की आवश्यकता पर भी कवि ने प्रकाश डाला है यथा-

आक्षेप करना दूसरों पर धर्म-निष्ठा है यहाँ,
पाखण्डियों ही की अधिकतर अब प्रतिष्ठा है यहाँ
हम आड़ लेकर धर्म की अब लीन हैं विद्रोह में
मत ही हमारा धर्म है, हम पड़ रहे हैं मोह में।⁶²

भारत की उन्नति के लिए मैथिलीशरण गुप्त ने प्रचलित सभी धर्मों को मानने वाले व्यक्तियों के बीच स्नेह एवं सौहार्द पर अत्यंत बल दिया है। उनका कथन है-

धर्म है सो धर्म है, जो पन्थ है सो पन्थ है,
एक ने सबके लिए भेजें यहाँ निज ग्रंथ है।
बस, उसी के मन्त्र से चलते हमारे यन्त्र हैं,
स्वमत के सम्बन्ध में हम सब समान स्वतन्त्र हैं।⁶³

मैथिलीशरण गुप्त जी देशभक्त कवि है। देशभक्त कवि देश की उन्नति का पूर्ण प्रयत्न करता है तथा देश की उन्नति में बाधक तत्त्वों की भर्त्सना करता है। गुप्त जी ने धर्म को कभी संकीर्णता के दायरे में नहीं लिया। गुप्त जी की कविताओं में धार्मिक सद्भाव एवं साम्प्रदायिक एक्य को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। वे देशवासियों का आह्वान करते हुए कहते हैं -

आओ मिलें सब देश-बान्धव हार बनकर देश के,
साधक बनें सब प्रेम से सुख-शान्तिमय उद्देश्य के,
क्या साम्प्रदायिक भेद से है ऐक्य मिट सकता अहो,
बनती नहीं क्या एक माला, विविध सुमनों की कहो?⁶⁴

गुप्त जी धर्म के आधार पर मानव को विभाजित नहीं होने देना चाहते। उनके लिए सभी धर्म समान हैं-

जाति, धर्म या सम्प्रदाय का नहीं भेद व्यवधान यहां,
राम-रहीम, बुद्ध-ईसा का सुलभ एक-सा ध्यान यहाँ।⁶⁵

गुप्त जी ने एक ईश्वर में सृष्टि विश्वास एवं अटूट आस्था रखने पर बल देते हैं। साथ ही समाज में व्याप्त धार्मिक संकीर्णता का घोर विरोध करते हुए सभी सम्प्रदाय एवं सभी साधना पद्धतियों के प्रति सम्मान प्रकट करने के लिए आग्रह किया और सभी धार्मिक पुस्तकों में व्याप्त सदुपदेशों को ग्रहण करके अपने जीवन को समुन्नत बनाने की सलाह दी। गुप्त जी ने स्पष्ट घोषणा दी कि वेद एवं कुरान सभी धर्म-ग्रंथों में एक जैसा ही सदुपदेश भरा हुआ है। उसने शिक्षा ग्रहण करके लोक कल्याण के मार्ग पर अग्रसर होना चाहिए -

उपदेशक जन जगत में, जितने हुए प्रमाण।
 उन सबका उपदेश है, एक लोक कल्याण
 जहाँ भेद है रीति में, नहीं नीति में भेद।
 सदुपदेश है एक ही, क्या कुरान क्या वेद।⁶⁶

भारत की दो प्रमुख जातियाँ हिन्दू और मुसलमान धर्म के नाम पर परस्पर लड़ती रही और इनमें फूट डालकर अंग्रेज अपनी शासन-सत्ता को सुदृढ़ एवं स्थायी बनाते चले गये। तत्पश्चात् गुप्त जी ने देशभक्ति-भावना को जागृत कर धर्म के नाम पर लड़ने वाले हिन्दू और मुसलमान दोनों को सचेत एवं सावधान किया-

हिन्दू- मुसलमान दोनों अब
 छोड़े वह विग्रह की नीति,
 प्रकट की गई है यह केवल
 अपने वीरों के प्रति प्रीति।⁶⁷

‘सिद्धराज’ में भी हिन्दू-मुसलमानों के पारस्परिक धार्मिक कलह पर क्षुब्ध होकर गुप्तजी ने स्पष्ट घोषणा की है कि ईश्वर एक है, उसे विविध रूपों में पूजा जाता है। अतः ईश्वर के नाम पर कलह करना उचित नहीं, वह तो भक्त के भाव का भूखा है। इसीकारण सिद्धराज मुसलमानों से कह रहा है-

कह दो पुकार कर तुम-वह एक है
 और हम पावे उसे चाहे जिस रूप में,
 ईश्वर के नाम पर कलह भला नहीं,
 देखता है भाव मात्र वह निज भक्त का।⁶⁸

गुप्त जी को अपने धर्म पर गर्व रहा है। परन्तु उनका यह गर्व देशभक्ति अथवा मानव-प्रेम में कहीं भी बाधक नहीं रहा। वह सदैव दूसरों के प्रति उदार एवं सहिष्णु रहे। गुप्त जी की कामना थी कि सम्पूर्ण विश्व के मनुष्यों में भाई चारे और विश्व-बन्धुत्व की भावना पैदा हो। उनके राजा प्रजा काव्य की निम्न पंक्तियों में यही धारणा दिखाई देती है-

किन्तु हमारा लक्ष्य, एक अम्बर, भू, सागर।
 एक नगर-सा बने विश्व, हम उसके नागर।⁶⁹

मैथिलीशरण गुप्त जी की धार्मिक आस्था को डॉ० कमलाकान्त पाठक के शब्दों में इस प्रकार व्यक्त कर सकते हैं- “वे उस सांस्कृतिक धारा के कवि हैं जिसके आरम्भिक छोर पर हिन्दू पुनरुत्थानवाद की जातीय भावना है और अंतिम छोर पर समस्त धर्मों और विविध संस्कृतियों के समन्वय की अवधारणा ?”⁷⁰

‘काबा और कर्बला’ में एक ईश्वर की सन्तान का उद्घोष करते हुए कवि सर्वसमता की बात का दावा करता है-

प्रभु समक्ष, सोचो टुक मौन,
बड़ा कौन छोटा है कौन ?
तने न भौह, न खिंचे कमान,
उसके जन हम सभी समान।⁷¹

कवि दासता से मुक्ति की बात करता है और एक ईश्वर के दास होने की बात करता है, गुप्त जी राष्ट्रीय एकता के सच्चे समर्थक थे जिसमें हिन्दू-मुस्लिम की एकत्व की बात भी प्रकट होती है-

किसी वर्ग के और किसी भी देश के,
बन्धु सभी हम दास एक अखिलेश के।⁷²

गुप्त जी सभी धर्मों के प्रति किसी न किसी रूप में श्रद्धा सम्मान प्रकट किया है। श्रीमद्भगवद् गीता ने उनके व्यक्तित्व को अधिक प्रभावित किया। गीता की सर्वधर्मान्परित्यज्य दिव्य सूक्ति का ‘द्वापर’ में उन्होंने उत्कृष्ट भावानुवाद कर दिया है, यथा-

कोई हो, सब धर्म छोड़ तू
आ, बस मेरा शरण धरे,
डर मत, कौन पाप वह जिससे
मेरे हाथों तू न तरे?⁷³

श्री मैथिलीशरण जी की भागवत चेतना के साथ ही देशभक्ति की भावना भी सस्वर हुई है। उनका देशभक्ति आन्दोलन देश के समग्र व्यक्तित्व की मुक्ति का आन्दोलन है। अर्थात् समग्र विश्व को हैवानियत से छुटकारा दिलाना है। यथा -

तुमको बड़े से बड़ा देखना चाहती हूँ मैं
मेरे जात! सारे जन्तुओं के मुख्य तू ही है
किन्तु छोटा होकर भी कोई बड़ा होता है
मिथ्या दर्प छोड़ने का साहस हो तुझमें
तो व्यक्तित्व अपना समिष्ट मैं मिला दे तू
देश, कुल, जाति किंता वर्गभेद भूलकर
जा तू विश्वमानव हो सेवा कर सबकी
भीति नहीं, प्रीति यथा रीति तेरी नीति हो ।⁷⁴

(पृथ्वीपुत्र)

देशभक्ति का स्वर भारत-भारती के बाद हमें 'मंगलघट' एवं स्वदेश-संगीत में मुखरित हुआ मिलता है। गुप्त जी इस विशाल देश को जगाते हुए कहते हैं-

धर्म राम का, कर्म कृष्ण का, प्रेम बुद्ध का धार
और अहिंसा महावीर की, सर्व समन्वय सार,
X X X
कौन संभाल सकेगा तुझको, स्वयं स्वरूप संभाल
उठ हो बृहद विराट विशाल।⁷⁵

देशभक्त कवि देश की उन्नति का पूर्ण प्रयत्न करता है। तथा देश की उन्नति में बाधक तत्वों की भर्त्सना करता है। गुप्त जी की देशभक्ति स्वाभिमान पराधीनता में भी प्रेरणास्वर है। मंगल-घट में वे कहते हैं -

प्राण बेचे हैं तुम्हें, बेचा न मैंने मान है
धर्म के सम्बन्ध में नृप और रंक समान है।⁷⁶

मैथिलीशरण गुप्त जी युवाजनों को संदेश देकर देशोद्धार में प्रवृत्त करना चाहते हैं किन्तु भागवत धर्माचरण के साथ -

कौमार में ही भागवत धर्माचरण कर लो यहाँ।
नर जन्म दुर्लभ और वह भी अधिक रहता है कहाँ?⁷⁷

मैथिलीशरण गुप्त जी की धर्म सम्बन्धी दृष्टि व्यापक देशभक्ति चेतना का विकास और प्रसार है। यथा-

हिन्दू, मुसलमान, क्रिस्तान
परमपिता की सब सन्तान
सभी बन्धु हैं, लधु या ज्येष्ठ
मन से मनुष्यत्व है श्रेष्ठ
लिखी नहीं माथे पर जाति
गुण-कर्मों से उसकी जाति
सबके दो पद हैं, दो हस्त
सजातीय है मनुष्य समस्त।⁷⁸

मैथिलीशरण गुप्त जी व्यक्ति के रूप में धर्म-समन्वयवादी थे, सामाजिक रूप में राष्ट्रधर्म के प्रवक्ता, कवि के रूप में भारत में प्रचारित सभी धर्मों के स्तुति वादक और राष्ट्र कवि के रूप में राष्ट्रवाणी तथा राष्ट्र-धर्म के महान् उद्गाता थे -

पापी का उपकार करो, हो, पापों का प्रतिकार करो
उत्पीड़न अन्याय कहीं हो, दृढ़ता-सहित विरोध करो
किन्तु विरोधी पर भी अपने, करूणा करो, न क्रोध करो⁷⁹

मैथिलीशरण गुप्त जी वैष्णव कवि थे यही वैष्णवी आस्था अपनी भारत-भूमि के लिए देशभक्ति बन जाती है। मानो एक ही सिक्के के दो पहलू वैष्णवी आस्था और देशभक्ति है। इसीलिए यशोधरा के मंगलाचरण में राष्ट्रकवि ने लिखा है-

राम तुम्हारे इसी धाम में।
नाम-रूप-गुण-लीला-लाम।
इसी देश में हमें जन्म दो।
लो, प्रणाम हे नीरज नाम।⁸⁰

राजनैतिक दशा और देशभक्ति-

मैथिलीशरण गुप्त जी के समय में अंग्रेजों का शासन पूर्ण रूप से स्थापित हो चुका था राजनीतिक क्षेत्र में कांग्रेस अंग्रेजों के दमन-चक्र के विरुद्ध आन्दोलन कर रही थी और स्वतंत्रता-प्राप्ति के लिए भारतवासी गाँधी जी के नेतृत्व में उत्तरोत्तर प्रगति के पथ पर बढ़ते चले जा रहे थे।

गुप्त जी ने सक्रिय राजनीति में तो अधिक भाग नहीं लिया, परन्तु वे भी अप्रैल 1941 ई० में भारत-रक्षा-विधान धारा 129(अ) के अन्तर्गत राज-बन्दी बनाये गए। पहले उन्हें झाँसी जेल में रखा गया और फिर दो माह पश्चात् आगरा केन्द्रीय कारागार में भेज दिया गया। वहाँ से 14 नवम्बर 1941 को उन्हें छोड़ दिया गया। इस 7 महीने के कारावास ने गुप्त जी को राजनीति के क्षेत्र में उतरने के लिए बाध्य तो किया, परन्तु वे अपने साहित्य के माध्यम से ही राजनीति में भाग लेते रहे। गुप्त जी के इन राजनीतिक विचारों की अभिव्यक्ति उनके काव्यों में स्थान-स्थान पर मिलती है।⁸¹

सर्वप्रथम गुप्त जी ने भारत-भारती की रचना करके देशवासियों को पराधीनता की बेड़ियों से मुक्त होने के लिए सचेत एवं सावधान किया और विदेशी सत्ता को उखाड़ फेंकने का आग्रह किया -

शासन किसी परजाति का चाहे विवेक विशिष्ट हो,
सम्भव नहीं है, किन्तु जो सर्वाश में वह इष्ट हो।⁸²

गुप्त जी ने स्वदेश-संगीत में सत्याग्रह, स्वराज्य की अभिलाषा, गाँधी गीत, भारत का झंडा आदि शीर्षकों के अन्तर्गत तत्कालीन आन्दोलनों पर अपनी लेखनी चलाई। गाँधी जी द्वारा प्रवर्तित सत्याग्रह की प्रशंसा करते हुए कवि ने स्पष्ट लिखा-

सत्याग्रह है कवच हमारा कर देखो कोई भी वार।

हार मानकर शत्रु स्वयं ही यहाँ करेंगे मित्राचार।⁸³

ऐसे ही अंग्रेजों की दमन नीति एवं भारतवासियों के अहिंसापूर्ण आन्दोलनों की झाँकी प्रस्तुत करते हुये कवि ने लिखा है -

अस्थिर किया टोप वालों को गाँधी टोपी वालों ने,
शस्त्र बिना संग्राम किया है, इन माई के लालों ने।
अपने निश्चय पर ये दृढ़ हैं, मारो, पीटो, बन्द करो।
अजब बाँकपन दिखलाया है, इनकी सीधी चालों ने।⁸⁴

इस प्रकार पराधीनता अत्यन्त दुःखदायक होते हुए भी एक रक्तरंजित क्रांति के लिए कवि की लेखनी प्रेरणा नहीं प्रदान कर सकती है। उसके देश-प्रेम में राष्ट्रपिता गाँधी जी का आदर्श निहित है। यथा -

हमारी असि न रूधिर-रत हो,
न कोई कभी हताहत हो।⁸⁵

अतः अहिंसा के आधार पर स्वतंत्रता के लिए आन्दोलन किये बिना और कोई चारा नहीं है। यथा-

प्रतिपक्षी भी देख स्वतः बलिदान हमारा,
होकर अवश अवश्य करेगा कुछ निपटारा।⁸⁶

मैथिलीशरण गुप्त जी ने काव्य में राजतंत्र, प्रजातंत्र, साम्यवाद आदि राजनीतिक विचारधाराओं का सामयिक प्रतिपादन किया है। गुप्त जी अपने युग में प्रचलित साम्यवादी विचारधारा से भी प्रभावित हुए और उन्होंने 'साकेत' में राजतंत्र के स्थान पर साम्यवाद की घोषण करते हुए लिखा-

“विगत हों नरपति, रहें नरमात्र
और जो जिसकार्य के हों पात्र
वे रहें उस पर समान नियुक्त,
सब जियें ज्यों एक ही कुलयुक्त”।⁸⁷

अर्थाथ कवि को राजतंत्र अधिक प्रिय है लेकिन यदि राजा राजत्व के आदर्श से गिर जाता है और उससे प्रजा में अव्यवस्था फैलती है, तो ऐसे कुशासन का अन्त कर देना श्रेयस्कर है। इस बात को कवि भरत के मुख से शत्रुध्न को संबोधित कराते हुए कहते हैं-

“अनुज उस राजत्व का हो अन्त,
हन्त! जिस पर कैकेयी के दन्त,
किन्तु राजे राम-राज्य नितान्त-
विश्व के विद्रोह करके शान्त।”⁸⁸

गुप्त जी के आदर्श राज्य में राजा निरंकुश न हो इसके लिए राजा के ऊपर व्यवस्थापिका सभा का नियंत्रण है। राजा इस सभा की पूर्व अनुमति के बिना कोई महत्वपूर्ण कार्य नहीं कर सकता। दशरथ द्वारा राम को वनवास और भरत को राज्य देने के नियम के विरुद्ध निर्णय पर लक्ष्मण क्रोधित होकर राम को इसी व्यवस्थापिका सभा में चलने का अनुरोध करते हुए साकेत में कहते हैं-

“वही होगा कि है कुलधर्म जैसा।
चलो, सिंहासनस्थित हो सभा में,
वही हो जो कि समुचित हो सभा में।”⁸⁹

गुप्त जी राजतंत्र के साथ-साथ प्रजातंत्र के भी समर्थक हैं। वह चाहते हैं कि प्रजा अपना नेता स्वयं चुने। इसी प्रणाली को मानते हुए साकेतवासी राम से आग्रह कर रहे हैं-

राजा हमने राम तुम्हीं को है चुना।
करो न तुम यों हाय! लोकमत अनसुना।⁹⁰

गुप्त जी प्रजा को राज्य का स्वामी मानते थे और राजा को लोकमत का प्रतिनिधि भर वे कहते हैं-

भला वे कौन हैं जो राज्य लेवें,
पिता भी कौन हैं जो राज्य देवें,
प्रजा के अर्थ है साम्राज्य सारा।⁹¹

मैथिलीशरण गुप्त जी महात्मा गाँधी जी की तरह देश में रामराज्य की कल्पना करते थे। गुप्त जी के रामराज्य की कल्पना एकतंत्र के पुनर्स्थापन का सपना न होकर

न्यायपरक सुशासन या सुराज्य का एक स्पष्ट चित्र है। साकेत में अपने राजनैतिक मूल्यों का उल्लेख गुप्त जी ने इस प्रकार किया है-

न्यायार्थ क्यों उससे प्रजा लड़ती नहीं।

X X X

यदि वह प्रजापालक नहीं तो त्याज्य है।⁹²

‘राजा प्रजा’ सन् 1956 में प्रकाशित हुई। यह काव्य मैथिलीशरण गुप्त जी का राजनीतिक विचार ग्रंथ है जिसमें उन्होंने एक ओर राजतंत्र के खतरों से जनता को आग्रह किया है तो दूसरी ओर लोकतंत्र में जो खामियाँ आ सकती हैं। या जो कमजोरियाँ मैथिलीशरण जी देख रहे थे, उनका बड़ी स्पष्टता से उल्लेख किया गया है। गुप्त जी ने राजा के मुख से कहलवाया है-

धन जहाँ, वही जन और देश इनका है,
सब कहीं सुमायामय प्रवेश इनका है।
ये स्थूल रूप हैं सूक्ष्म छलों-छन्दों के,
कब पेट भरे हा! सेठ अमीचन्दों के।⁹³

गुप्त जी जानते थे कि गणतन्त्र-पद्धति में अनेक गुण हैं, क्योंकि इसमें शासन सूत्र कभी एक व्यक्ति के हाथ में नहीं रहता और न कोई उसे अपनी पैतृक सम्पत्ति बना सकता है, अपितु आज जो मजदूर या किसान है, वह भी कल सुयोग्य होकर राष्ट्रपति बन सकता है-

एक श्रमिक जो आज भूमि ही खन सकता है,
कुल सुयोग्य हो वही राष्ट्रपति बन सकता है।⁹⁴

डॉ० सत्येन्द्र के अनुसार गुप्त जी का राजा और कुछ नहीं केवल प्रजा-भाव की मूर्ति है और उसी को उन्होंने राष्ट्रीय स्वतंत्रता माना है।⁹⁵ राज्य-तृष्णा गुप्त जी का कभी मान्य या सामान्य आदर्श नहीं बनी, और उसी प्रकार राजनीतिक अधिकार- लिप्सा भी गुप्त जी को अनुचित प्रतीत हुई, यथा-

प्रजातंत्र के दोष वस्तुतः स्वयं हमारे,
होते हम क्यों पतित न परवशता के मारे।⁹⁶

मैथिलीशरण गुप्त जी राजनीति में तथा लोकतंत्रात्मक शासन में, मानवता की पूर्ण प्रतिष्ठा चाहते हैं। मनुष्यता से श्रेष्ठ और क्या किसने पाया, अतएव उनका यह संदेश है-

बढ़ो बन्धुओ, हीन-भाव से ऊपर उठकर,
 रहो न तुम संकीर्ण वायु-मण्डल में घुटकर।
 निर्मित तुमने यहाँ किए थे कभी तपोवन,
 इसी अवनि पर तुम उतार सकते हो नंदन।⁹⁷

मैथिलीशरण गुप्त जी अपनी देशभक्ति-पूर्ण रचनाओं के कारण विदेशी शासन के कोपभाजन बनकर जेल गए थे। राष्ट्रपिता गाँधी जी इनका सम्मान करते थे। उनके शब्दों में-जैसा मैं चाहता हूँ वैसा वे देश का काम करने को तैयार हैं। गुप्त जी राजनीतिज्ञों की अग्रपंक्ति में भी दिखाई पड़े किन्तु उन्होंने अन्याय और अन्यायी का पक्ष कभी नहीं लिया। यथा -

जनवादी हो तुम क्यों न जनो को जोड़ो,
 क्यों किसी भाँति भी उन्हें न तोड़ो फोड़ो।
 जो प्रकृत रत्न हो भले न गाहक ढूँढ़े,
 पर चतुर वही जो मूढ़ बनाकर मूड़े।
 दल भी यदि अनुमति न दे स्वतंत्र खड़े हो,
 किससे छोटे तुम सभी प्रकार बड़े हो।
 जो संस्था तुमसे बनी तुम्हें न बनावें,
 वह क्यों न शीघ्र से शीघ्र स्वमृत्यु मनावे।⁹⁸

ये पंक्तियाँ कवि की निर्भीकता के साथ-साथ उसे भविष्यद्रष्टा के रूप में भी प्रस्तुत करती हैं। और यह भी व्यक्त करती हैं कि सन् 1955 में भारतीय राजनीति में कुर्सी और पद के लिये जिस तरह की उछल-कूद हो रही थी आज भी देश के राजनीतिक मंच पर वही दृश्य दिखलायी पड़ रहा है।

मैथिलीशरण गुप्त जी ने भारत में देखा कि प्रजातंत्रात्मक प्रणाली के द्वारा देश में अनेक दोष व्याप्त हो गये हैं। व्यस्क मताधिकार मिल जाने से जनता में क्षुद्र स्वार्थ में लिप्त जन ही बार-बार चुनाव में सफल होकर शासन-सूत्र को चलाने के लिए आने लगे हैं; जिससे राष्ट्रीय विकास का द्वार अवरुद्ध होने लगा है और स्वार्थपरता, भ्रष्टाचार तथा कुनबापरस्ती का बोलबाला हो गया है। इसी कारण गुप्त जी ने इस चुनाव पद्धति का विरोध करते हुए स्पष्ट लिखा-

स्वयं श्रेष्ठ को चुन लेने में लोक आज असमर्थ,
 आस-पास के स्वार्थों तक ही लोगों के व्यापार।⁹⁹

मनुष्य को अपने अधिकारों के लिए जागरूक रहना चाहिए। प्रजा-सुख के लिए राज्य से पाप और अत्याचार को मिटाकर न्याय व्यवस्था बनाये रखना आवश्यक होता है। और इसके लिए दण्ड देने का प्रावधान भी रखा गया है। जयद्रथवध में गुप्त जी न्याय की रक्षा के लिए अपने भाई को भी दण्डित करना धर्मसम्मत मानते हैं, यथा-

अधिकार खोकर बैठ रहना, यह महा दुष्कर्म है,
न्यायार्थ अपने बन्धु को भी दण्ड देना धर्म है।¹⁰⁰

मैथिलीशरण गुप्त जी राजतंत्र को अधिक महत्त्व देते रहे हैं, तथापि उन्होंने युग के अनुसार गणतंत्र की पद्धति में भी विश्वास प्रकट किया है-

वे ही हम जो बुद्धि-निधान,
करते थे गणतंत्र विधान।¹⁰¹

राष्ट्रकवि गुप्त जी ने अपने नेत्रों से अंग्रेजों की साम्राज्यवादी नीति के घोर अत्याचार देखे थे। अतः उन्होंने 'द्वापर' में कंस के माध्यम से साम्राज्यवाद की घोर निन्दा की। कंस मत्स्य न्याय का पोषक है और उग्रसेन मत्स्य न्याय की निन्दा करते हुए उसके विनाश की चेतावनी देते हुए कहता है-

ओ सत्ता-मदमत्त! आज भी
आँखें खोल अभागो।
वह साम्राज्य-स्वप्न जाने दे,
जाग, सत्य यह आगे ॥¹⁰²

गुप्त जी ने कहा कि सारा संसार प्रजातंत्र शासन की स्थापना की ओर अग्रसर है। उन्होंने बलराम के माध्यम से अत्याचारी शासन को हर सम्भव उपाय से समाप्त करने की उद्घोषणा की है-

एक-एक, सौ-सौ अन्यायी
कंसों को ललकारों,
अपनी पुण्यभूमि के ऊपर
धन-जीवन सब वारो।¹⁰³

'सिद्धराज' राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त का सुप्रसिद्ध खण्डकाव्य है। इस खण्डकाव्य में कवि ने अपनी राजनीतिक चेतना को भी उजागर किया है। सिद्धराज के

शासन-काल में तीर्थकर लगता है और जो यात्री कर नहीं दे पाते वे महेश के दर्शन किये बिना ही लौट जाते हैं। इस तीर्थकर का विरोध करते हुए राजमाता कहती है-

तब तो जहाँ तहाँ न लेना उसे चाहिए,
डाकिनी नहीं है राजनीति, वह धात्री है,
डाइन भी एक घर छोड़ चली जाती है।¹⁰⁴

“मैथिलीशरण गुप्त जी ने अहिंसक राजक्रांति का लक्ष्य अपने समक्ष रक्खा है। और गांधी जी के रचनात्मक कार्यक्रम के द्वारा देशोन्नति की संभाव्यता में विश्वास प्रकट किया है। हरिजनोद्धार अस्पृश्यता-निवारण, हिन्दू मुसलमानों की सामाजिक एकता, खादी और ग्रामोद्योग आदि कार्यों पर उन्होंने आस्था ही नहीं रक्खी, उनकी काव्यात्मक अभिव्यक्ति भी की। उन्होंने गाँधी जी, श्री विनोबा-भावे, जवाहरलाल जी और स्वर्गीय पटेल का राष्ट्र-प्रतिनिधि के रूप में स्तवन (स्तुति) किया है।”¹⁰⁵

निष्कर्ष-

राजनीति का कार्य समाज की एक ऐसी व्यवस्था कायम करना है। जिसमें मानव सर्वोत्कृष्ट आदर्शों की प्राप्ति कर सके। गुप्त जी के काव्य में राजनीति तथा राष्ट्रनीति प्रजा-पालन, प्रजा-वत्सलता, प्रजा की सम्मति मानना, राजा का प्रजा के सुख-दुःख में समभागी होना, शरणागत वत्सलता, मातृभूमि की रक्षा करना, एकता की भावना आदि के रूप में सर्वत्र दीख पड़ती है।

1. डॉ० आरिफ़ नजीर - राष्ट्रीयता और भारतेन्दु हरिश्चन्द पृ० - 151,
2. वही - पृ० - 152,
3. जगदीश चतुर्वेदी (संपादन) - भारतीय कविता में राष्ट्रीय चेतना पृ० -10,
4. वही, पृ० - 20,
5. वही, पृ० - 62,
6. वही, पृ० - 119,
7. वही, पृ० - 160,
8. वही, - पृ० -296,
9. प्रकाश पंडित(सम्पा०) जोश मलीहाबादी और उनकी शायरी (वतन) पृ० - 67,
10. भारत-भारती (भविष्यत् खण्ड) मैथिलीशरण गुप्त पृ० - 182,
11. वही (अतीत खण्ड) मैथिलीशरण गुप्त पृ० - 11,
12. किसान (प्रत्यावर्तन-प्रसंग) मैथिलीशरण गुप्त पृ० -44,
13. रंग में भंग - मैथिलीशरण गुप्त पृ० -32,
14. नहुष (नहुष-प्रसंग) मैथिलीशरण गुप्त पृ० -15,
15. साकेत (पंचाम-सर्ग) मैथिलीशरण गुप्त पृ० -62,
16. भारत-भारती (अतीत खण्ड) मैथिलीशरण गुप्त पृ० - 28,
17. अर्जन-विसर्जन - मैथिलीशरण गुप्त पृ० - 28,
18. सिद्धराज (द्वितीय-सर्ग) मैथिलीशरण गुप्त पृ० -41,
19. डॉ० आरिफ़ नजीर - राष्ट्रीयता और भारतेन्दु हरिश्चन्द पृ० - 155,
20. भारत-भारती (अतीत, वर्तमान और भविष्यत खण्ड) मैथिलीशरण गुप्त पृ० - 14,95,182,

21. वही, (अतीत खण्ड) पृ० - 59,
22. वही, (वर्तमान खण्ड) पृ० - 95,
23. भारत-भारती (अतीत खण्ड) पृ० - 14,
24. वही, पृ० - 76,
25. वही, पृ० - 51,
26. वही, पृ० - 21,22,23,
27. साकेत (पंचम-सर्ग) मैथिलीशरण गुप्त पृ० -71,
28. वही, (द्वादश -सर्ग) पृ० - 234,
29. वही, (प्रथम-सर्ग) पृ० - 12,
30. वैतालिक - मैथिलीशरण गुप्त पृ० - 7,
31. साकेत (अष्टम-सर्ग) मैथिलीशरण गुप्त पृ० -111,
32. हिन्दू (आशा) मैथिलीशरण गुप्त पृ० -43,
33. वैतालिक मैथिलीशरण गुप्त पृ० -30,
34. सम्मेलन-पत्रिका (त्रैमासिक) सम्पा० - डॉ० प्रेम नारायण शुक्ल - पृ० 128,
35. द्वापर (बलराम)- मैथिलीशरण गुप्त पृ० - 52
36. बकसंहार -मैथिलीशरण गुप्त पृ० 6,
37. डॉ० आरिफ़ नजीर - राष्ट्रीयता और भारतेन्दु हरिश्चन्द पृ० - 161,
38. विजय अग्रवाल (सम्पा०) - राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त पृ० - 65,
39. भारत-भारती (भविष्यत् खण्ड) मैथिलीशरण गुप्त पृ० - 171,
40. डॉ० द्वारिकाप्रसाद सक्सेना - हिन्दी के आधुनिक प्रतिनिधि कवि- पृ० 80,
41. गुरुकुल (उपोद्घात) - मैथिलीशरण गुप्त पृ० -31,

42. जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी - मैथिलीशरण गुप्त की काव्य यात्रा, पृ० -120,
43. भारत-भारती (भविष्यत् खण्ड) मैथिलीशरण गुप्त पृ० - 169,
44. द्वापर (बलराम)- मैथिलीशरण गुप्त पृ० - 64
45. भारत-भारती (वर्तमान खण्ड) मैथिलीशरण गुप्त पृ० - 97,99,
46. वही, पृ० - 104,
47. वही, पृ० - 146,
48. भारत-भारती (भविष्यत् खण्ड) मैथिलीशरण गुप्त पृ० - 184,
49. वही, (वर्तमान खण्ड) पृ० - 154-155,
50. किसान (प्रार्थना) मैथिलीशरण गुप्त पृ० -8,
51. गुरुकुल (बन्दा बैरागी-प्रसंग) मैथिलीशरण गुप्त पृ० -237,
52. शक्ति - मैथिलीशरण गुप्त पृ० -18,
53. जय-भारत (द्रोणाचार्य) - मैथिलीशरण गुप्त पृ० -49,
54. हिन्दू (जाति बहिष्कार) मैथिलीशरण गुप्त पृ० -105,
55. किसान - (प्रार्थना) - मैथिलीशरण गुप्त पृ० -6,7,9,
56. वही, (सर्वस्वान्त) पृ० -23,
57. भारत-भारती (वर्तमान खण्ड) मैथिलीशरण गुप्त पृ० - 149,
58. काबा और कर्बला - मैथिलीशरण गुप्त पृ० - 94,
59. डॉ० आरिफ़ नजीर - राष्ट्रीयता और भारतेन्दु हरिश्चन्द पृ० - 172,
60. पृथ्वीपुत्र (द्वितीयवृत्ति) - मैथिलीशरण गुप्त पृ० - 7,
61. साकेत (अष्टम सर्ग) - मैथिलीशरण गुप्त पृ० - 111,
62. भारत-भारती (वर्तमान खण्ड) मैथिलीशरण गुप्त पृ० - 136,
63. काबा और कर्बला (सफीया) - मैथिलीशरण गुप्त पृ० - 41,

64. भारत-भारती (भविष्यत् खण्ड) मैथिलीशरण गुप्त पृ० - 167,
65. सम्मेलन-पत्रिका (त्रैमासिक) सम्पा० - डॉ० प्रेमनारायण शुक्ल - पृ० 259,
66. डॉ० द्वारिकाप्रसाद सक्सेना - हिन्दी के आधुनिक प्रतिनिधि कवि- पृ० 84,
67. गुरुकुल (उपोद्धात) - मैथिलीशरण गुप्त पृ० - 31,
68. सिद्धराज (पंचम-सर्ग) मैथिलीशरण गुप्त पृ० - 113,
69. सम्मेलन-पत्रिका (त्रैमासिक) सम्पा० - डॉ० प्रेमनारायण शुक्ल - पृ० 259,
70. डॉ० कमलाकान्त पाठक - मैथिलीशरण गुप्त व्यक्ति और काव्य पृ० - 76,
71. काबा और कर्बला (काबा) - मैथिलीशरण गुप्त पृ० - 15,
72. वही (दासता)- मैथिलीशरण गुप्त पृ० - 20,
73. द्वापर (श्री कृष्ण-प्रसंग) मैथिलीशरण गुप्त पृ० - 12
74. डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल (प्रधान सम्पा०) - राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन ग्रंथ पृ० - 460
75. डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल (प्रधान सम्पा०) - राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन ग्रंथ पृ० - 371,
76. डॉ० राघव प्रकाश (सह सम्पा०) - मैथिलीशरण गुप्त और तत्कालीन भारतीय साहित्यिक परिवेश पृ० - 52,
77. भारत-भारती (भविष्यत् खण्ड) मैथिलीशरण गुप्त पृ० - 183,
78. हिन्दू (जाति बहिष्कार) - मैथिलीशरण गुप्त पृ० - 104,
79. अनघ (चबूतरा) - मैथिलीशरण गुप्त पृ० - 63-64,
80. यशोधरा (मंगलाचरण) मैथिलीशरण गुप्त पृ० - 11,
81. डॉ० द्वारिकाप्रसाद सक्सेना - हिन्दी के आधुनिक प्रतिनिधि कवि- पृ०-84-85,
82. भारत-भारती (अतीत खण्ड) मैथिलीशरण गुप्त पृ० - 91,
83. जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी - मैथिलीशरण गुप्त की काव्य यात्रा पृ० -120,

84. वही, पृ० - 121,
85. स्वदेश-संगीत -मैथिलीशरण गुप्त पृ० - 62,
86. अजित - मैथिलीशरण गुप्त पृ० - 88,
87. साकेत (सप्तम-सर्ग)- मैथिलीशरण गुप्त पृ० - 96,
88. वही, पृ० - 96,
89. सम्मेलन-पत्रिका (त्रैमासिक) सम्पा० - डॉ० प्रेमनारायण शुक्ल - पृ० - 261,
90. साकेत (पंचम-सर्ग) - मैथिलीशरण गुप्त - पृ० -60,
91. वही, (तृतीय-सर्ग) पृ० - 39,
92. वकसंहार - मैथिलीशरण गुप्त पृ० - 22,
93. जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी - मैथिलीशरण गुप्त की काव्य यात्रा पृ० - 159,
94. डॉ० द्वारिकाप्रसाद सक्सेना - हिन्दी के आधुनिक प्रतिनिधि कवि- पृ० - 86,
95. डॉ० सत्येन्द्र -गुप्त जी की कला - पृ० - 125,
96. राजा-प्रजा - मैथिलीशरण गुप्त पृ० - 27,
97. वही, पृ० - 48,
98. डॉ० राघव प्रकाश - मैथिलीशरण गुप्त और तत्कालीन भारतीय साहित्यिक परिवेश पृ० - 45,
99. डॉ० द्वारिका प्रसाद सक्सेना - हिन्दी के आधुनिक प्रतिनिधि कवि- पृ० -86,
100. जयद्रथ-वध (प्रथम-सर्ग) मैथिलीशरण गुप्त पृ० -5,
101. हिन्दू (मोह) - मैथिलीशरण गुप्त पृ० - 159,
102. द्वापर - (उग्रसेन) मैथिलीशरण गुप्त पृ० - 109,
103. द्वापर (बलराम) - मैथिलीशरण गुप्त पृ० - 60,
104. सिद्धराज (प्रथम-सर्ग) मैथिलीशरण गुप्त पृ० - 22,
105. डॉ० कमलाकान्त पाठक - मैथिलीशरण गुप्त व्यक्ति और काव्य पृ० -99-100,

सप्तम अध्याय

उपसंहार

उपसंहार

विगत अध्यायों से मैथिलीशरण गुप्त जी की कृतियों में अभिव्यक्त देशभक्ति के विविध पक्षों पर विचार करने से ज्ञात होता है कि देशभक्ति की दृष्टि से मैथिलीशरण गुप्त जी का साहित्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। मैथिलीशरण गुप्त जी हिन्दी साहित्य में उत्कृष्ट देशभक्त के रूप में प्रतिष्ठित हुए। श्री मैथिलीशरण गुप्त जी द्विवेदी-युग के सफल साहित्यकारों में गिने जाते हैं।

भारत की पृष्ठभूमि देखने पर पता चलता है। कि भारत पर कभी मुसलमानों ने अधिपत्य जमाया और कभी अंग्रेजों ने। इसीकारण देश में विविध प्रकार के आन्दोलन चल रहे थे। मध्यकाल में विक्टोरिया शासन की स्थापना बंगभंग आन्दोलन, ईसाई मिशनरियों का आना, वहाबी आन्दोलन आदि जिसके प्रभाव से अंग्रेजों का भारत में छा जाना, इन्हीं सब कारणों से देशभक्ति आन्दोलन को गति मिली।

बीसवीं सदी में भारत ने परतंत्रता की वेदना को सहते हुए आक्रोश की मुद्रा में करवट बदली थी। तिलक, गोखले, लाला लाजपतराय, महात्मा गाँधी आदि राजनैतिक नेताओं के साथ क्रान्तिकारियों का दल भी देश में आज़ादी के लिए उठ खड़ा हुआ था। साहित्यिक क्षेत्र में भी स्वतंत्रता प्राप्ति की लहर सभी भाषाओं के मूर्धन्य कवियों की रचनाओं में लक्षित होने लगी थी। उर्दू शायर इकबाल, बंगला के कवि रवीन्द्रनाथ, तमिल के कवि सुब्रह्मण्य भारती और हिन्दी के राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त इनमें प्रमुख थे। गुप्त जी का क्षेत्र हिन्दी भाषी होने के कारण सबसे विस्तृत था अतः उनका प्रभाव भी अन्य कवियों की अपेक्षा व्यापक जन-मानस को स्पर्श करने वाला बना। इसके सिवा उन्हें सबसे लम्बे समय तक कवि कर्म में लीन रहने का अवसर मिला और स्वाधीन भारत में भी 17 वर्ष तक उन्होंने अपनी वाणी को भारत-जागरण में लगाया। यदि उत्तर भारत के हिन्दी काव्य के नवजागरण का इतिहास लिखा जायेगा तो राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त जी का नाम पहली पंक्ति में, पहले स्थान पर होगा।

हिन्दी साहित्य में देशभक्ति काव्य परम्परा प्राचीन काल से ही विद्यमान है। सर्वप्रथम आदिकालीन हिन्दी साहित्य में देशभक्ति की भावना पर आधारित काव्य देखा

जा सकता है। उस समय भी हमारे देश पर विदेशी मुसलमान आक्रमणकारी निरन्तर आक्रमण कर रहे थे और उनसे लोहा लेने के लिए राजपूत-राजाओं में होड़-सी लगी हुई थी। उन क्षत्रिय-पुत्रों को प्रोत्साहन दिलाने के लिए तथा उन्हें भारत देश की संस्कृति एवं सभ्यता की सुरक्षा हेतु उत्साहित करने के लिए तत्कालीन चारण-कवियों ने अपने ओजस्वी काव्य का निर्माण किया, जिसमें उनकी वीरता एवं पराक्रमशीलता का गुणगान किया गया और शत्रु के विरुद्ध शौर्य एवं पराक्रम दिखाने के लिए उन्हें प्रेरित किया गया।

तत्पश्चात् भक्तिकालीन कवियों के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है। कि उन्होंने भारत की देशभक्ति एवं भावात्मक एकता को मजबूत बनाने के लिए सराहनीय कार्य किया।

हिन्दी साहित्य के रीतिकाल में देशभक्ति काव्य परम्परा का प्रथम उन्मेष हुआ। क्योंकि उस समय भारत देश औरंगजेब जैसे क्रूर, बर्बर एवं आततायी शासन के दमन-चक्र से पिसकर कराह रहा था। वह राष्ट्र की कला-कृतियों को नष्ट कर रहा था। पक्षपात-पूर्ण शासन द्वारा जनता को सता रहा था और अपने क्रूर शासन के बल पर हिन्दू-जनता को धर्म-भ्रष्ट करके उसकी मान-प्रतिष्ठा को भी धूल में मिला रहा था। ऐसे समय में तीन जन-नायकों ने इस क्रूर शासक के विरोध का बीड़ा उठाया। महाराष्ट्र के छत्रपति शिवाजी बुन्देलखण्ड में महाराजा छत्रसाल और पंजाब में गुरु गोविन्द सिंह ने इस क्रूर शासक के विरुद्ध अपनी तलवार उठायी और इनको प्रोत्साहन देने के लिए तत्कालीन कवियों में से भूषण- गोरेलाल एवं सूदन ने अपनी लेखनी उठायी।

रीतिकाल के उपरान्त आधुनिक युग में आकर हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में सर्वप्रथम भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने देशभक्ति भावों से ओत-प्रोत अपनी ओजमयी रचनाएँ प्रस्तुत की। भारतेन्दु के समय में अंग्रेजी राज्य स्थापित हो चुका था। अंग्रेज धीरे-धीरे सम्पूर्ण भारत पर अपना अधिकार जमाते चले जा रहे थे तथा यहाँ का धन लूट-खसोट कर इंग्लैण्ड का कोष भर रहे थे। भारतेन्दु ने उनकी इस कूटनीति की घोर निन्दा की और राजभक्त होते हुए भी जनता की दयनीय दशा को देखकर अंग्रेजों के विरुद्ध आवाज़ उठाई। भारतेन्दु ने ही सर्वप्रथम समाज-सुधार, राष्ट्र-प्रेम, देशभक्ति, नारी शिक्षा एवं भारतीय

संस्कृति के महत्त्व की ओर जनता का ध्यान आकृष्ट किया और अतीत के गौरव का गुणगान करके उनके हृदय में स्वदेश, स्वराष्ट्र एवं स्वभाषा के प्रति तीव्रानुराग उत्पन्न करने का स्तुत्य प्रयास किया।

द्विवेदी-युग में आकर देशभक्ति भावों से भरी हुयी कविताएँ सर्वाधिक मात्रा में लिखी गयी और इसी युग में कवियों के अन्तर्गत देशभक्ति-भावना अत्यधिक सशक्त एवं सबल रूप में दिखाई दी। इसका प्रमुख कारण यह था कि भारतेन्दु युग में तो देशभक्ति के साथ-साथ राज-भक्ति भी मिली हुई थी, किन्तु अब देशभक्ति की ही प्रबलता हो गई। इस युग के कवियों में मैथिलीशरण गुप्त ने अपने काव्यों में देशभक्ति की भावना को सर्वोच्च स्थान प्रदान किया और अपनी कविताओं के माध्यम से राष्ट्रीय भावों का सर्वाधिक प्रचार एवं प्रसार किया।

इसी प्रकार आधुनिक छायावादी कवियों एवं कवयित्रियों ने भी भारत के अतीत गौरव का गुणगान करके जन-जन के हृदय में देशभक्ति, स्वदेशाभिमान राष्ट्र-प्रेम आदि जाग्रत करने का प्रयत्न किया।

इस प्रकार देशभक्ति काव्य परम्परा के क्रमिक विकास का अध्ययन करने पर स्पष्ट ज्ञात होता है। कि हिन्दी के अन्य सभी कवियों की अपेक्षा इस दिशा में सबसे अधिक सराहनीय कार्य मैथिलीशरण गुप्त ने किया है। मैथिलीशरण गुप्त जी की रचनाओं में सर्वाधिक देशभक्ति-भावना एवं राष्ट्रीय जागरण की भावना विद्यमान है।

अतएव हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में जीवन की दिशा को शृंगार के कीचड़ से निकालकर देशभक्ति भावों की पुनीत गंगा की ओर मोड़ने का सर्वाधिक श्रेय श्री मैथिलीशरण गुप्त जी को ही है और इसी कारण मैथिलीशरण गुप्त जी हिन्दी की देशभक्ति काव्य-धारा में मूर्धन्य स्थान पर स्थित हैं।

देशभक्ति की अमर ज्योति जगाने वाले हिन्दी के महान सपूत श्री मैथिलीशरण गुप्त जी का जन्म 3 अगस्त सन् 1886 को चिरगाँव जिला झाँसी में हुआ था। मैथिलीशरण गुप्त जी के पिता सेठ रामचरण जी वैष्णव भक्त थे। कवि श्री मैथिलीशरण गुप्त जी की प्रारम्भिक शिक्षा चिरगाँव में हुयी। प्राइमरी शिक्षा समाप्त होने पर श्री गुप्त जी को झाँसी भेजा गया ।

श्री मैथिलीशरण गुप्त जी के पिता रामचरण जी की यह हार्दिक इच्छा थी कि मैथिलीशरण अंग्रेजी पढ़-लिखकर डिप्टी कलेक्टर हो जाये इसी उद्देश्य से गुप्त जी को मैकडानल हाईस्कूल झाँसी में पढ़ने के लिए भेजा गया। प्रारंभ में गुप्त जी की रुची थोड़ी बहुत पढ़ने में रही पर धीरे-धीरे उनका मन उधर से उचट गया।

मैथिलीशरण गुप्त जी का लेखन-कार्य 1903 से लेकर 1964 तक हिन्दी भाषा और साहित्य का गौरव रहा। मैथिलीशरण गुप्त जी का काव्यारंभ भारतमित्र वैश्योपकारक, पाटलिपुत्र, राघवेन्द्र, मोहिनी, प्रताप, प्रभा, सैनिक और सरस्वती जैसी पत्रिकाओं के माध्यम से हुआ।

मैथिलीशरण गुप्त जी की पहली कविता 1905 ई० में कोलकत्ता से प्रकाशित मासिक पत्रिका 'वैश्योपकारक' में छपी। तत्पश्चात् वे सरस्वती में आये। मैथिलीशरण गुप्त जी सरस्वती के माध्यम से जागरण सुधार युग की चेतना के बीज बोते रहे।

मैथिलीशरण गुप्त जी अपनी कविताओं एवं पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से भारतीय जनता को अंग्रेजों द्वारा किये जाने वाले शोषण के प्रति सचेत किया। उस समय देश की दशा सोचनीय थी। देश के उद्योग धन्धे नष्ट हो रहे थे। भारतीय जनता पैसे-पैसे के लिए मोहताज थी। मैथिलीशरण गुप्त जी ने भारतीयों की इस दशा का जिम्मेदार अंग्रेजी शासन को माना। कवि श्री मैथिलीशरण गुप्त जी ने स्व-रचित साहित्य के द्वारा भारतीयों को जगाने का प्रयास किया। देश-प्रेम की भावना जाग्रत करने का प्रयास मैथिलीशरण गुप्त जी ने 'भारत-भारती' के माध्यम से किया। प्रचार की दृष्टि से यह गुप्त जी की सर्वाधिक सशक्त रचना है। यह काव्य-भारतीय जनता के उद्बोधन के लिए लिखा गया है। इसमें भारत के प्राचीन गौरव, वर्तमान विनम्रता और भविष्य के उद्बोधन का समावेश काव्यात्मक ढंग से किया गया है। देशभक्ति भावना को जाग्रत करने में इस काव्य का महत्त्वपूर्ण योगदान है। मैथिलीशरण गुप्त जी का मानना है कि भारतीयों की आलस्यपूर्ण नीति के द्वारा ही भारत परतंत्रता की स्थिति में है। आज भारतीयों की जो स्थिति है वह भारतवासियों के आलस्यपूर्ण व्यवहार के कारण है। मैथिलीशरण गुप्त जी हिन्दी के ही नहीं, बल्कि हिन्दुस्तान के सच्चे सेवक थे। मैथिलीशरण गुप्त जी एक सच्चे देशभक्त साहित्यकार थे।

मैथिलीशरण गुप्त जी ने अपनी रचनाओं द्वारा देशभक्ति के उदीप्त भावों को जन-जन के हृदय में भरने का स्तुत्य प्रयत्न किया, देशवासियों को अपने गौरवमय अतीत से अवगत कराया, उनकी वर्तमान दुरावस्था के कारुणिक चित्र अंकित किये और उन्हें पराधीनता की बेड़ियों से मुक्त होने के लिए प्रोत्साहित किया। इन्हीं देशभक्ति के पोषक विचारों के कारण सन् 1963 ई० में राष्ट्र-पिता महात्मा गाँधी जी ने गुप्त जी को 'राष्ट्रकवि' की सर्वोच्च उपाधि से विभूषित किया।

मैथिलीशरण गुप्त जी ने युगीन काव्य-परम्परा के सन्दर्भ में अपने साहित्य का समीक्षात्मक अध्ययन किया है। साहित्य के माध्यम से जन-जन तक आसानी से अपनी बात पहुँच जाती है। साहित्य अतीत का भी ज्ञान करता है। साहित्य भविष्य का निर्माण करता है। मैथिलीशरण गुप्त जी हिन्दी साहित्य के निर्माता तथा उसमें संजीवनी शक्ति का संचार करने वाले प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति थे। ब्रिटिश काल में अनेक महापुरुष धार्मिक एवं सामाजिक परिस्थिति को सुधारने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे थे। राजा राममोहन राय उन्हीं महापुरुषों में से एक थे, जो देश से प्रेम करते थे। देश को अंग्रेजों के हाथों से निकालना चाहते थे। राजा राममोहन राय का उद्देश्य हिन्दुत्व का नव-निर्माण करना था। राजा राममोहन राय ने धर्म के क्षेत्र में ब्रह्म समाज के माध्यम से भारतीय जनता को अन्ध-विश्वासों तथा सभी रूढ़ियों से मुक्त किया। राजा राममोहन राय ने भारत देश की पीछड़ी जातियों को सम्मान दिलाने का भी कार्य किया।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने सामाजिक कुरीतियों को दूर करने के लिए आर्य समाज की स्थापना की। उन्होंने देशभक्ति, समाज, धर्म पर खुलकर अपनी मान्यताएँ व्यक्त की। दयानन्द जी ने देश में व्याप्त सामाजिक कुरीतियों, अन्ध मान्यताओं की खुली आलोचना की।

स्वामी विवेकानन्द ने रामकृष्ण मिशन की स्थापना की। स्वामी विवेकानन्द ने देश सेवा को सर्वोत्तम धर्म बताया है। स्वामी विवेकानन्द ने भारतवासियों में आत्म गौरव की भावना को प्रेरित किया।

श्रीमती एनीबेसेण्ट ने थियोसोफिकल सोसाइटी की स्थापना की। विदेशी महिला होते हुए भी वह भारत देश से बहुत प्रेम करती थी और भारतीय संस्कृति पर उसकी अपार

श्रद्धा थी भारतीय संस्कृति का गुणगान कर इन्होंने भारत में देशभक्ति की भावना को बल प्रदान किया। एनीबेसेण्ट ने भारत के राजनैतिक आन्दोलन में भी सक्रिय रूप से भाग लिया।

ब्रिटिश शासन काल में भारत की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी। ब्रिटिश-काल में आकाल बहुत पड़ रहे थे। कर्षण ने भी आर्थिक व्यवस्था नष्ट कर दी थी। किसानों की भी हालत बड़ी दयनीय हो गई थी। किसानों को ना तो भरपेट भोजन मिलता था ना ही पहनने को कपड़े। ब्रिटिश शासन में आर्थिक स्थिति बिगड़ने के कारण देशभक्ति आन्दोलन को सफलता मिली। भारतीय जनता को अभास हो गया था कि देशभक्ति के साथ-साथ देश की आर्थिक स्थिति भी समृद्ध होनी चाहिए।

सन् 1875 ई० में भारत में देशभक्ति का उदय हुआ जिस समय अंग्रेज भारत में आये थे उस समय देशभक्ति का कहीं पता नहीं था। अंग्रेजों की कूटनीति के कारण ही भारतवर्ष में देशभक्ति का उदय हुआ। भारतीय जनता अंग्रेजी शासन के अत्याचार से परेशान थी। भारतवासी अंग्रेजों के अमानवीय व्यवहार से भयभीत थे। अतः भारतीय जनता ने फैसला किया कि हम सब एकजुट होकर अंग्रेजों का सामना करेंगे तथा इन्हें भारत से बाहर निकाल फेंकेंगे। भारतीय जनता अंग्रेजों से लड़ती रही और आन्दोलन होते रहे।

अंग्रेजों ने उस समय 'डिवाइड एण्ड रूल' की नीति अपना रखी थी। मैथिलीशरण गुप्त जी ने भारतीय जनता में एकता की भावना का प्रसार किया। गुप्त जी ने जाति, धर्म, प्रान्त एवं भाषा को भूलकर भारत-देश की सेवा की। मैथिलीशरण गुप्त जी ने वही लिखा जिसकी देश तथा देशवासियों की आवश्यकता थी।

मैथिलीशरण गुप्त जी कवि के रूप में बहुत प्रसिद्ध हुए। उनका काव्य देशभक्ति की दृष्टि से बहुत श्रेष्ठ है। उन्होंने अपनी कविताओं के माध्यम से देश की जनता को जाग्रत करके देशभक्ति को बल प्रदान किया। उन्होंने अपनी राजनैतिक, सामाजिक तथा धार्मिक कविताओं के माध्यम से भारतीय जनता को अंग्रेजी शासन के प्रति सचेत किया था।

मैथिलीशरण गुप्त जी ने अपने तन,मन,धन से हिन्दी की सेवा की। उन्होंने अपने नाटक, निबन्ध गद्य और सरस काव्यों द्वारा हिन्दी भाषा का शृंगार किया।

अनुवाद भी साहित्य का एक अंग है। श्री मैथिलीशरण गुप्त जी ने मौलिक रचनाओं के साथ-साथ अपनी अनूदित कृतियों से भी हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि की है। उन्होंने मुख्यतः अपने रचना काल में संस्कृत, बँगला और अंग्रेजी-फारसी भाषाओं के काव्य और नाट्य अनूदित किये। इसके अतिरिक्त मैथिलीशरण गुप्त जी ने खड़ी बोली गद्य को पद्य-बद्ध भी किया।

मैथिलीशरण गुप्त जी के काव्य में देशभक्ति के विभिन्न रूप मिलते हैं। सुप्रसिद्ध साहित्यकार बंकिमचन्द्र चटर्जी ने भारत की प्रशंसा की है। बंकिमचन्द्र चटर्जी ने 'आनन्द मठ' उपन्यास लिखा जो देशभक्ति से परिपूर्ण था। बंकिमचन्द्र जी में बचपन से देशभक्ति की भावना थी। वह अपनी मातृभूमि से अगाध प्रेम करते थे। बंकिम जी में देश प्रेम की भावना बहुत अधिक थी। उन्होंने अपने उपन्यास 'आनन्द-मठ' में 'वन्दे-मातरम्' गीत भी लिखा है। 'वन्दे-मातरम्' गीत भारत के राष्ट्रीय गीतों में जाना जाता है। हमारे देश के सभी बूढ़े-बच्चे 'वन्दे-मातरम्' गीत से परिचित हैं।

मैथिलीशरण गुप्त जी के काव्य में देशभक्ति और देश प्रेम का स्वर विद्यमान है। मैथिलीशरण गुप्त जी की देशभक्ति का प्रमाण भारतभूमि से प्रेम करना है। श्री मैथिलीशरण गुप्त जी ने सर्वप्रथम 1912 ई० में 'भारत-भारती' लिखकर देशवासियों का ध्यान उनकी वर्तमान दुर्दशा की ओर आकृष्ट किया और अतीत की गौरवमयी झाँकी प्रस्तुत करके उन्हें पराधीनता की बेड़ियों से मुक्त होने के लिए प्रोत्साहित किया। तत्पश्चात् 'वैतालिक' के जागरण गीतों द्वारा उन्होंने भारतवासियों को प्रगति की ओर उन्मुख किया तथा भारतीय संस्कृति का पाश्चात्य संस्कृति के साथ सामंजस्य स्थापित करने का संदेश दिया। किसान नामक काव्य में उन्होंने किसानों की दयनीय दशा पर क्षोभ प्रकट किया और उनके दुःख एवं दारिद्र्य को उत्पन्न करने वाली शोषण-पद्धति को तत्काल समाप्त करने की प्रेरणा प्रदान की। 'स्वदेश-संगीत' के द्वारा परतंत्रता की गहरी निद्रा में सोय हुए भारतवासियों को नवजागरण का सन्देश दिया और हिन्दू काव्य

की रचना करके राष्ट्रव्यापी सामाजिक जड़ता, धार्मिक असहिष्णुता, जातिगत अनुदारता आदि को उतार फेंकने की प्रेरणा प्रदान की। इसी प्रकार मैथिलीशरण गुप्त जी के सम्पूर्ण काव्य में देशभक्ति की सर्वाधिक भावना विद्यमान है। मैथिलीशरण गुप्त जी द्वारा लिखित देशभक्तिपूर्ण साहित्य ब्रिटिश सरकार को खटकते थे।

मैथिलीशरण गुप्त जी हिन्दी ही के नहीं बल्कि भारत के सच्चे सेवक थे। गुप्त जी ने जाति, धर्म, प्रान्त एवं भाषा आदि के भेद को मिटाकर 'भारतवर्ष' की सेवा की। उनके विचार से भारत की वास्तविक प्रगति तभी हो सकती है। जब हम सब एक होकर इसकी सेवा में लग जाएँ।

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त जैसे बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति, महानुभाव किसी भी देश में बार-बार नहीं आते। मैथिलीशरण गुप्त जी भारत देश की जनता का सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक एवं आर्थिक स्तर ऊँचा करने का सदैव प्रयत्न किया। स्त्रियों की दशा को सुधारने के लिए वह सदैव प्रयत्नशील रहे। भारत की भावात्मक एकता को सुदृढ़ बनाने में मैथिलीशरण गुप्त जी का महत्वपूर्ण योगदान है।

परिशिष्ट

सहायक ग्रन्थ की सूची, पत्र-पत्रिकाएँ एवं कोश आदि

सहायक ग्रंथ सूची

- अग्रवाल, घनश्याम - विष्णु प्रिया और उसका कवि, कृष्णा ब्रदर्स प्रकाशक कचहरी रोड अजमेर, दीपावली सं० 2025
- अग्रवाल, वासुदेव शरण - भारत की मौलिक एकता, भारती भण्डार प्रकाशक इलाहाबाद, प्र० सं० - 2011 वि०
- अग्रवाल, वासुदेव शरण - राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन ग्रंथ, राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन समिति-87 विवेकानन्द रोड कलकत्ता-6 (प्रधान सम्पा०)
- अग्रवाल, विजय(सम्पा०) - राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त, प्रकाशन विभाग सूचना और प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार 1994
- अयोध्या सिंह - भारत का मुक्ति संग्राम, प्रकाशक -दि मैकमिलन कंपनी आफ इंडिया लिमिटेड नई दिल्ली, प्रथम संस्करण - 1977
- डॉ० ओमप्रकाश - प्राचीन हिन्दी काव्य, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली 1971
- डॉ० आरिफ़ नज़ीर - राष्ट्रीयता और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, साहित्य प्रकाशन आगरा प्रथम संस्करण 1993
- डॉ० आरिफ़ नज़ीर - हिन्दी में शोध और विकास के आयाम, विश्वविद्यालय प्रकाशन केन्द्र जी०टी० रोड अलीगढ़ प्रथम संस्करण 2006
- आशिस नंदी - राष्ट्रवाद बनाम देशभक्ति (रवीन्द्रनाथ ठाकुर और इयत्ता की राजनीति) अनुवाद - अभय कुमार दुबे, वाणी प्रकाशन 21 ए, दरियागंज नई दिल्ली, पहला संस्करण - 2005
- डॉ० उमाकान्त - गुप्त जी की काव्य-साधना, नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली, तृतीय संस्करण - 1966
- डॉ० उमाकान्त - मैथिलीशरण गुप्त कवि और भारतीय संस्कृति के अख्याता, नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली, द्वितीय संस्करण - 1964
- डॉ० एल० सुनीता - मैथिलीशरण गुप्त का काव्य, हिन्दी विभाग कोचिन विश्वविद्यालय, 22, दिसम्बर 1984
- कु० विनोद धम - मैथिलीशरण गुप्त के विरह काव्य, सन्मार्ग प्रकाशन दिल्ली-7, संस्करण - 1971
- कुलकर्णी राम - मैथिलीशरण गुप्त के पात्रों का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन, सरस्वती प्रकाशन 128/106 जी- ब्लॉक किदवई नगर कानपुर, प्रथम संस्करण जून 1987

- कौशिक, वीरेन्द्र - द्विवेदी युग की पृष्ठभूमि और नाथूराम शंकर, अनुराधा प्रकाशन मेरठ 1977 ।
- गुप्त, मन्मथनाथ - राष्ट्रीय आन्दोलन का इतिहास, शिवपाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी लिमिटेड, पुस्तक प्रकाशन तथा विक्रेता आगरा, प्रथम संस्करण सितम्बर 1984
- गुप्त, मैथिलीशरण - रंग में भंग, साहित्य-सदन चिरगाँव (झाँसी) 2019 वि०
- गुप्त, मैथिलीशरण - जयद्रथवध, साहित्य-सदन-चिरगाँव (झाँसी) 40 वाँ संस्करण 2012 वि०
- गुप्त, मैथिलीशरण - पद्य-प्रबंध, साहित्य-सदन-चिरगाँव (झाँसी)
- गुप्त, मैथिलीशरण - भारत-भारती, साहित्य सदन चिरगाँव (झाँसी) 40 वाँ संस्करण 2002
- गुप्त, मैथिलीशरण - शकुन्तला, साहित्य सदन चिरगाँव (झाँसी) 13 वाँ संस्करण 2013 वि०
- गुप्त, मैथिलीशरण - तिलोत्तमा, साहित्य सदन चिरगाँव (झाँसी)
- गुप्त, मैथिलीशरण - चन्द्रहास, साहित्य सदन चिरगाँव (झाँसी)
- गुप्त, मैथिलीशरण - पत्रावली, साहित्य सदन चिरगाँव (झाँसी) 2013 वि०
- गुप्त, मैथिलीशरण - वैतालिक, साहित्य सदन चिरगाँव (झाँसी) 2008 वि०
- गुप्त, मैथिलीशरण - किसान, साहित्य सदन चिरगाँव (झाँसी) 2013 वि०
- गुप्त, मैथिलीशरण - अनद्य, साहित्य सदन चिरगाँव (झाँसी) पंचमावृत्ति 2005
- गुप्त, मैथिलीशरण - पंचवटी, साहित्य सदन चिरगाँव (झाँसी) 69 वाँ संस्करण 2033 वि०
- गुप्त, मैथिलीशरण - स्वदेश संगीत, साहित्य सदन चिरगाँव (झाँसी)
- गुप्त, मैथिलीशरण - हिन्दू, साहित्य सदन चिरगाँव (झाँसी) चतुर्थावृत्ति 2013 वि०
- गुप्त, मैथिलीशरण - शक्ति, साहित्य सदन चिरगाँव (झाँसी) 2012 वि०
- गुप्त, मैथिलीशरण - सैरन्ध्री - साहित्य सदन चिरगाँव (झाँसी)
- गुप्त, मैथिलीशरण - वनवैभव, साहित्य सदन चिरगाँव (झाँसी) 2005 वि०
- गुप्त, मैथिलीशरण - वकसंहार, साहित्य सदन चिरगाँव (झाँसी) 2007 वि०

- गुप्त, मैथिलीशरण - विकट भट्ट, साहित्य सदन चिरगाँव (झाँसी) चतुर्थवृत्ति 2003 वि०
- गुप्त, मैथिलीशरण - गुरुकुल, साहित्य सदन चिरगाँव (झाँसी) 2004 वि०
- गुप्त, मैथिलीशरण - झंकार, साहित्य सदन चिरगाँव (झाँसी) द्वितीया वृत्ति 2007वि०
- गुप्त, मैथिलीशरण - साकेत, साहित्य सदन (झाँसी) 30प्र० से प्रकाशित सम्बत् 2048 वि०
- गुप्त, मैथिलीशरण - यशोधरा, साहित्य सदन चिरगाँव (झाँसी) चतुर्थावृत्ति 1997
- गुप्त, मैथिलीशरण - द्वापर, साहित्य सदन चिरगाँव (झाँसी) 2012 वि०
- गुप्त, मैथिलीशरण - सिद्धराज, साहित्य सदन चिरगाँव (झाँसी) 13 वाँ संस्करण 2011 वि०
- गुप्त, मैथिलीशरण - मंगल-घट, साहित्य सदन चिरगाँव (झाँसी)
- गुप्त, मैथिलीशरण - नहुष, साहित्य सदन चिरगाँव (झाँसी) द्वितीयावृत्ति 2000 वि०
- गुप्त, मैथिलीशरण - कुणाल-गीत, साहित्य सदन चिरगाँव (झाँसी) 2013 वि०
- गुप्त, मैथिलीशरण - अर्जन और विसर्जन, साहित्य सदन चिरगाँव (झाँसी) द्वितीयावृत्ति 2003 वि०
- गुप्त, मैथिलीशरण - काबा और कर्बला, साहित्य सदन चिरगाँव (झाँसी) संस्करण -3 वि० 2012
- गुप्त, मैथिलीशरण - विश्व-वेदना, साहित्य सदन चिरगाँव (झाँसी) चतुर्थ संस्करण सं० 2011
- गुप्त, मैथिलीशरण - अजित, साहित्य सदन चिरगाँव (झाँसी)
- गुप्त, मैथिलीशरण - प्रदक्षिणा, साहित्य सदन चिरगाँव (झाँसी) 11 वाँ संस्करण सं०- 2013
- गुप्त, मैथिलीशरण - पृथ्वीपुत्र, साहित्य सदन चिरगाँव (झाँसी)
- गुप्त, मैथिलीशरण - हिडिम्बा, साहित्य सदन चिरगाँव (झाँसी) प्रथम संस्करण सं०- 2007
- गुप्त, मैथिलीशरण - अंजलि और अर्ध्य, साहित्य सदन चिरगाँव (झाँसी)
- गुप्त, मैथिलीशरण - जय-भारत, साहित्य सदन चिरगाँव (झाँसी) द्वितीयावृत्ति 2014 वि०

- गुप्त, मैथिलीशरण - युद्ध, साहित्य सदन चिरगाँव (झाँसी) प्रथम संस्करण 2009 वि०
- गुप्त, मैथिलीशरण - राजा-प्रजा, साहित्य सदन चिरगाँव (झाँसी)
- गुप्त, मैथिलीशरण - विष्णु-प्रिया, साहित्य सदन चिरगाँव (झाँसी) द्वितीयावृत्ति 2015 वि०
- गुप्त, हनुमानदास(लेखक)- मैथिलीशरण गुप्त और साकेत, मंजु प्रकाशन 76 चौपटिया रोड लखनऊ -3 संस्करण प्रथम - 1970 ।
- गुलाबराय बाबू - राष्ट्रीयता, प्रकाशन - नई दिल्ली, किताब घर अंसारी रोड दरियागंज - 1996 ।
- गुलाबराय बाबू - हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल पुस्तक प्रकाशन एवं विक्रेता, आगरा-3
- गोस्वामी तुलसीदास - विनय पात्रिका, सम्पा० राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी, हरीश प्रकाशन मंदिर, आगरा
- चतुर्वेदी, जगदीश(सम्पा०)- भारतीय कविता में राष्ट्रीय चेतना, प्रकाशक- केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम् नई दिल्ली।
- चतुर्वेदी, जगदीश प्रसाद - मैथिलीशरण गुप्त की काव्य-यात्रा, साहित्य संगम इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1986
- छाबड़ा, गोविन्द लाल - गुप्त और उनका सिद्धराज, अशोक प्रकाशन नई सड़क दिल्ली-6 प्रथम संस्करण - 1969
- डॉ० जहाँआरा जैदी - हिन्दी कृष्ण भक्ति काव्य पराम्परा में भारतेन्दु का योगदान, विश्वविद्यालय प्रकाशन केन्द्र अलीगढ़, प्रथम संस्करण 2006
- जैसवाल, प्रतापचन्द्र (सम्पा०) - साकेत दर्शन, सरस्वती पुस्तक सदन आगरा-3 प्रथम संस्करण - 1000,2024 वि०
- जोश मलीहाबादी (शिकस्ते-जिदौं) - प्रकाश पंडित (सम्पा०), राजपाल एण्ड संस कश्मीर गेट दिल्ली, संस्करण 2002
- तिवारी, पूनम चन्द्र - द्विवेदी युगीन काव्य, प्रकाशक - मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी 97, मालवीय नगर भोपाल-3 प्रथम संस्करण- 1972
- तिवारी, मंजू लता - मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में नारी, सुलभ प्रकाशन अशोक मार्ग लखनऊ प्रथम संस्करण - 1997

- दीक्षित, आनन्द प्रकाश - मैथिलीशरण गुप्त, वसुमती प्रकाशन 602, दारागंज इलाहाबाद-6
प्रथम संस्करण - 1972
- देसाई, ए० आर० - भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, प्रकाशन-दि
मैकमिलन कंपनी आफ इंडिया लिमिटेड नई दिल्ली, प्रथम
हिन्दी संस्करण -1976, द्वितीय हिन्दी संस्करण - 1977
- द्विवेदी, सोहनलाल - (सम्पा०) राकेश गुप्त, ग्रंथायन अलीगढ़ प्र० सं० 1986
ग्रन्थावली
- द्विवेदी हजारी प्रसाद - कबीर, राजकमल प्रकाशन, छात्र संस्करण-1990, आठवी
आवृत्ति- 2000
- डॉ० नगेन्द्र - मैथिलीशरण गुप्त पुनर्मूल्यांकन, प्रभात प्रकाशन चावड़ी
बाजार दिल्ली, प्रथम संस्करण - 1987
- डॉ० नगेन्द्र - साकेत एक अध्ययन, नेशनल पब्लिशिंग हाउस 2/35,
अन्सारी रोड दरियागंज दिल्ली-6 संस्करण- 1970
- डॉ० नगेन्द्र - हिन्दी साहित्य का इतिहास, मयूर पेपर बैक्स ए-95,
सेक्टर-5 नोएडा, प्रथम संस्करण 1973, 27 वाँ पुर्न मुद्रित
संस्करण-2000
- पांडेय, सुधाकर - राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त शती समारोह, नागरी प्रचारिणी
सभा, वाराणसी 27 जून 1987
- पाण्डेय, सुधाकर - हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास (नवम् भाग), प्रकाशन-
(सम्पा०) नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, संस्करण प्रथम, 2600
प्रतियाँ सं० 2034 वि०
- पाठक, कमलाकान्त - मैथिलीशरण गुप्त व्यक्तित्व और काव्य, रणजीत प्रिंटर्स
एण्ड पब्लिशर्स 4872, चाँदनी चौक दिल्ली -6 प्रथम
संस्करण जनवरी 1960
- पाठक, दानबहादुर 'वर' - मैथिलीशरण गुप्त और उनका साहित्य, विनोद पुस्तक
मन्दिर आगरा प्रथम संस्करण - 1969
- पाठक, दानबहादुर 'वर' - साकेत एक अध्ययन, विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा प्रथम
संस्करण - 1969
- पालीवाल, कृष्णदत्त - मैथिलीशरण गुप्त प्रासंगिकता के अन्तः सूत्र वाणी प्रकाशन
21 ए दरियागंज नयी दिल्ली प्रथम संस्करण - 1987 वाणी
संस्करण -2004

- प्रभाकर माचवे - मैथिलीशरण गुप्त, नई दिल्ली राजपाल एण्ड संस 1993
- प्रसाद, जयशंकर - चन्द्रगुप्त नाटक द्वितीय अंक, लोकभारती प्रकाशन 15-ए महात्मा गांधी मार्ग इलाहाबाद संस्करण 1915
- मणि, के० एस० - मैथिलीशरण गुप्त और वल्लात्तोल का तुलनात्मक अध्ययन, नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली -7 प्रथम संस्करण अगस्त - 1966
- मधूसूदनदत्त, माइकेल - मेघनाद वद्य (अनुवादक) मधुप, साहित्य सदन चिरगाँव (झाँसी) तृतीयावृत्ति - 2013 वि०
- मधूसूदनदत्त, माइकेल - विरहिणी ब्रजांगना (अनुवादक) मधुप, साहित्य सदन चिरगाँव (झाँसी) 2006 वि०
- मधूसूदनदत्त, माइकेल - वीरांगना (अनुवादक) मधुप, साहित्य सदन चिरगाँव (झाँसी) तृतीयावृत्ति - 2013 वि०
- डॉ० मलिक मोहम्मद (सम्पा०) - अमीर खुसरो भावनात्मक एकता के अग्रदूत, राजपाल एंड संस दिल्ली सं० 1975
- राघव प्रकाश (सह-सम्पा०) - मैथिलीशरण गुप्त और तत्कालीन भारतीय साहित्यिक परिवेश, राजकीय महाविद्यालय झालावाड़ (राजस्थान) नवम्बर - 1987
- रामदुलारी देवी - मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में नीति तत्त्व, कल्पकार प्रकाशन, लखनऊ-6 प्रथम संस्करण - 1977
- डॉ० रवेलचन्द आनन्द/ डॉ० सुषमारानी गुप्ता - प्राचीन प्रतिनिधि कवि, सूर्य भारतीय प्रकाशन नई सड़क दिल्ली प्रथम संस्करण 2002 ई०
- वर्मा, सहदेव (लेखक) - मैथिलीशरण गुप्त का खड़ी बोली के उत्कर्ष में योगदान, आदर्श साहित्य प्रकाशन दिल्ली-7, प्रथम संस्करण-1971
- वाजपेयी, आचार्य - आधुनिक साहित्य, इलाहाबाद भारतीय भण्डार, चतुर्थ संस्करण 2022 वि०
- विवेक निशु (संग्रहकर्ता)- भक्ति के तराने (प्रेरक राष्ट्रगीतों का तराना) परमहंस प्रकाशन, मथुरा 1996
- शर्मा, ब्रजमोहन - कविवर मैथिलीशरण गुप्त और साकेत, जयपुर पुस्तक सदन, प्रथम संस्करण अगस्त - 1975
- शर्मा, भक्ताराम - द्विवेदी युगीन काव्य पर आर्य समाज का प्रभाव, वाणी प्रकाशन 61-एफ, कमलानगर दिल्ली, संस्करण अगस्त 1973

- शर्मा, भगवती प्रसाद - नव जागरण और प्रताप नारायण मिश्र, राधा पब्लिकेशन नई दिल्ली - 1994, प्रथम संस्करण 1998.
- शर्मा, राजकुमार - मैथिलीशरण गुप्त और साकेत, पदम बुक कम्पनी जयपुर, प्रथम संस्करण - 1969
- शर्मा, राजशेखर - मैथिलीशरण गुप्त विचार और अनुभूति, तारा मण्डल 398, आवास-विकास कॉलोनी, सासनीगेट अलीगढ़, प्रथम संस्करण 1989 ।
- शर्मा, राधेश्याम - मैथिलीशरण गुप्त, मंगल प्रकाशन जयपुर, प्रथम संस्करण - 1975
- शर्मा, रमेशकुमार - रीतिकाल और आधुनिक हिन्दी कविता, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा प्रथम संस्करण 1967
- शर्मा, शंकर दयाल - देशमणि, दिल्ली प्रभात प्रकाशन -1995
- शर्मा, शिवकुमार - हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ, अशोक प्रकाशन 2615, नई सड़क दिल्ली -6, 8वाँ संस्करण 2003
- शुल्क, आचार्य रामचन्द्र - चिन्तामणि (तीसरा भाग) सम्पा0 नामवर सिंह, नई दिल्ली राजकमल प्रकाशन, 1983
- शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र- हिन्दी साहित्य का इतिहास, प्रकाशक- नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी+ नई दिल्ली, 38 वाँ संस्करण सं0 2057 वि0
- शुक्ल, गोवर्धनाथ - विष्णुप्रिया अनुशीलन, आर्य-बन्धु प्रिंटिंग प्रेस अलीगढ़, 1964
- श्री निवास दास - परीक्षा गुरू, (सम्पा0), सत्येन्द्र, कांचनमणि, कैलाश पुस्तक सदन, भोपाल - 1976
- डॉ0 सत्येन्द्र - (सम्पा0), कांचनमणि, कैलाश पुस्तक सदन, भोपाल - 1976
- डॉ0 सुरेन्द्र माथुर - आधुनिक हिन्दी साहित्य, विश्लेषण और प्रकर्ष, यंग एशिया पब्लिकेशन D/305, डिफेन्स कालोनी नई दिल्ली-3 प्रथम संस्करण 1 मार्च 1969
- सक्सेना, द्वारिका प्रसाद - साकेत में काव्य, संस्कृति और दर्शन, विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा, द्वितीय संस्करण - 1973

- सक्सेना, द्वारिका प्रसाद - हिन्दी के आधुनिक प्रतिनिधि कवि, विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा-2 नवीनतम् संस्करण।
- सक्सेना, द्वारिका प्रसाद- हिन्दी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा, नवीनतम् संस्करण
- डॉ० सत्येन्द्र - गुप्त जी की कला, साहित्य रत्न भण्डार आगरा, षष्ठम संस्करण-1959
- साहा, अर्जुन शतपथी - राष्ट्रीय चेतना के कवि मैथिलीशरण गुप्त, दिल्ली पराग मधुसूदन (सम्पा०) प्रकाशन 1987
- सिंह, इलारानी (सम्पा०) - मैथिलीशरण गुप्त एक पुनर्मूल्यांकन, हनुमान साहित्य संस्थान कलकत्ता, प्रथम संस्करण 1986ई०
- सिंह, उदयभानु - महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग, लखनऊ विश्वविद्यालय, संवत् 2008 वि०
- सिंह, ठाकुर - गांधी जी की सूक्तियाँ, हिन्द पाकेट बुक्स प्रा०लि०, राजबहादुर (सम्पा०) दिलशाद गार्डन जी०टी०रोड दिल्ली, संस्करण -2001
- सिंह, शंकर दयाल - भारत छोड़ो आन्दोलन, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, प्रथम सं० -1995. द्वितीय सं० -1987 तृतीय सं० -1992
- सेन, नवीन चन्द्र - पलासी का युद्ध, (अनुवादक) मधुप, साहित्य सदन चिरगाँव (झाँसी) तृतीय संस्करण - 2028 वि०
- हरिऔध, महाकवि - 'हिन्दी काव्य की कोकिलाएँ' आदि ग्रंथों के रचयिता श्री गिरजा दत्त शुक्ल 'गिरीश' - गुप्त जी की काव्य धारा, प्रकाशक- छात्रहितकारी पुस्तकमाला दारागंज, प्रयाग- 1948

अप्रकाशित शोध प्रबंध

- समीना वहाब - देशभक्ति आन्दोलन के परिप्रेक्ष्य में बालमुकुन्द गुप्त के साहित्य का मूल्यांकन, हिन्दी विभाग अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय

कोश

- मानक हिन्दी कोश - सम्पा० रामचन्द्र वर्मा, हि०सा०सम्मेलन प्रयाग - 1965 । (खण्ड तीसरा),
- शब्द परिवार कोश - सम्पा०-डॉ० बदरीनाथ कपूर, इलाहाबाद रचना प्रकाशन-1986।

- समाज विज्ञान कोश - ओम प्रकाश गावा, वी० आर० पब्लिकेशन कॉर्पोरेशन
विवेकानन्द नगर दिल्ली- 1984 ।
- हिन्दी भाषा कोश - सम्पा० रामशंकर शुक्ल रसाल, भ 11क 491.433 ।
- हिन्दी विश्व कोश (खण्ड-घ) - सम्पा० फुलदेव सहायक वर्मा, प्रधान सम्पा०- राम प्रसाद
त्रिपाठी, नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी, प्रथम संस्करण
सं० - 2021 वि०
- हिन्दी शब्द सागर (भाग-5),
पत्रिकाएँ - मूल सम्पा०- श्यामसुन्दर दास, नागरी प्रचारणी सभा
वाराणसी।
- अतएव (पत्रिका) - सम्पा० विनोद चन्द्र पाण्डेय, 30 प्र० हिन्दी संस्थान
लखनऊ।
- रसंवती (पत्रिका) - सम्पा० प्रेमनारायण टंडन, रसवंती कार्यालय लखनऊ,
अंक-3 मार्च 1964, ।
- राष्ट्रवाणी (पत्रिका) - सम्पा० गो० पे० नेने, महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा पूना, अंक-5
नवंबर - 1966,
- राष्ट्रभारती (पत्रिका) - प्रकाशन तिथि- 2.4.1967, राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा,
अप्रैल -1967
- वार्षिक संदर्भ ग्रंथ - भारत 2006, प्रकाशन विभाग सूचना और प्रसारण मंत्रालय,
भारत सरकार 2006
- सम्मेलन (पत्रिका) - सम्पा० रामप्रताप त्रिपाठी, शास्त्री, हिन्दी साहित्य सम्मेलन
प्रयाग, भाग-45, सं०-1
- सम्मेलन(पत्रिका-त्रैमासिक)- सम्पा० डॉ० प्रेमनारायण शुक्ल, हिन्दी साहित्य सम्मेलन
प्रयाग-12, सम्मेलन मार्ग-इलाहाबाद, भाग-72, संख्या
3-4, शक, 1909,
- सरस्वती (पत्रिका) - प्रकाशन- इलाहाबाद इण्डियन प्रेस+नागरी प्रचारिणी सभा
काशी

English Book

Clifford Hawkins and marco sorgi - Research How to plan, speak and write about it, Narosa publishing House New Delhi, Madra, Bombay, Culcutta, First narosa Publishing house reprint 1987, second reprint-1990.

Encyclopaedia Britannica - Vol, 16, 1965.

Jawahar Lal Nehru - The Discovery of India, 1956.